श्रीरामकृष्ण परमहंस

(सचित्र)

लेखक—

स्वामी श्रीचिदात्मानन्दजी

It isn't cover ebookspdf.in

श्रीरामकृष्ण परमहंस

(सचित्र)

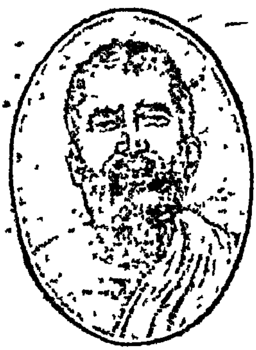

लेखक—

स्वामी श्रीचिदात्मानन्दजी

मुद्रक तथा प्रकाशक
घनश्यामदास जालान
गीताप्रेस, गोरखपुर

सं० १९८९ प्रथम संस्करण ५२५०
सं० १९९२ द्वितीय ,, ५०००

मूल्य ।≡) सात आना

पता—गीताप्रेस, गोरखपुर ।

बड़ा सूचीपत्र मुफ्त मँगाइये ।

विषय-सूची

विषय		पृष्ठ-संख्या
१—विषय-प्रवेश	... ...	१
२—कुलपरिचय और बाल्यकाल, अनोखी घटना, जन्म और बाल्यकाल, पढ़ना-लिखना, पिताका परलोकगमन, उपनयन-संस्कार	... ...	१०
३—कौमारावस्था, भाईके साथ कलकत्तेमें, रानी रासमणिसे मुलाकात	... ...	२०
४—साधनाका आरम्भ, हृदयराम, श्रीराधाकृष्णकी पूजा, काली-मन्दिरकी पूजा	... ...	२६
५—साधना समाप्त	... ...	३७
६—माँ ! माँ !, विवाह	... ...	४६
७—पुनः कलकत्तेमें, भैरवी ब्राह्मणी और तान्त्रिक साधना, संत-समागम	... ...	५५
८—रामलला, निर्विकल्प समाधि और तोतापुरीजी द्वारा संन्यास-दीक्षा	...	६२
९—शुद्ध ब्रह्मका ध्यान, तोतापुरीजीका परिचय, अन्य धर्मोंके अनुसार साधन	... ...	७०
१०—ठाकुरका निश्चय, भाई और माताका देहान्त, ब्राह्म-समाजके नेता श्रीकेशवचन्द्र सेनसे परिचय	...	७८
११—शिष्योंका समागम, रामचन्द्र दत्त, लाटू, राखाल	...	८९
१२—नरेन्द्रनाथ दत्त, अन्य शिष्य	...	९७
१३—महेन्द्रनाथ गुप्त, पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागरसे वार्तालाप	...	१०४
१४—कलकत्तेके अन्यान्य सज्जनोंका समागम, गिरीशचन्द्र घोष		
१५—दुर्गाचरण नाग	... ...	

१६—पं० शशधर तर्कचूड़ामणिसे वार्तालाप, शिष्य-महिलाएँ,
श्रीरामकृष्णकी शिक्षा-प्रणाली १३५
१७—कण्ठ-रोग, महासमाधि १५४

परिशिष्ट

१८—परमहंसदेवके उपदेश ... १६९–२४३

चित्र-सूची

नाम चित्र — पृष्ठ-संख्या
१—श्रीरामकृष्ण परमहंस (तिरंगा) ... १
२—श्रीदक्षिणेश्वरी काली
(परमहंस श्रीरामकृष्णकी इष्टदेवी) (एकरंगा) ५०
३—माता श्रीशारदामणि
(परमहंस श्रीरामकृष्णकी धर्मपत्नी) (,,) ५१
४—श्रीदक्षिणेश्वर-मन्दिर
(गंगातटपर रानी रासमणिके बगीचेमें)(,,) १०२
५—स्वामी श्रीविवेकानन्द ... (,,) १०३

पहले संस्करणकी भूमिका

महापुरुषोंकी महिमा कौन गा सकता है? वे वस्तुतः भगवद्रूप ही होते हैं, बल्कि संसार-ताप-तप्त जीवोंके लिये तो भगवान्‌से भी बढ़कर उनको समझना चाहिये। संसारके जीव भगवान्‌को नहीं देख पाते, उनके चरणोंमें उपस्थित होकर उनकी सेवा नहीं कर सकते, उनसे साक्षात् उपदेश ग्रहण नहीं कर सकते, उनके प्रत्यक्ष आचरणों और व्यवहारोंको अपनी आँखों-से देखकर उनका अनुसरण नहीं कर सकते, परन्तु महापुरुष उन्हीं-जैसे शरीरधारी और उन्हींके जगत्‌में उनके सामने प्रत्यक्ष रहते हैं, इससे सभी लोग चाहें तो उनसे पूरा लाभ उठा सकते हैं। भगवान् हमारी आँखोंसे छिपे रहते हैं, परन्तु महापुरुष तो प्रत्यक्ष मूर्तिमान् भगवान् हैं। भगवान्‌ने स्वयं यह स्वीकार किया है कि मुझमें और मेरे प्रेमी भक्तोंमें वास्तवमें कोई अन्तर नहीं है, जो मैं हूँ सो वे हैं और जो वे हैं सो मैं हूँ। देवर्षि नारद घोषणा करते हैं 'तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात्' भगवान्‌में और उनके जनोंमें कोई भेद नहीं है। वे भगवान्‌के मूर्तस्वरूप हैं। उनके दर्शन, स्पर्श, भाषणकी बात तो दूर रही, उनके स्वरूप और आचरणोंके स्मरणमात्रसे ही हृदयमें पवित्रताका सञ्चार होता है और मन बरबस भगवान्‌की ओर दौड़ने लगता है। ऐसे महापुरुषोंके प्रकट होनेसे ही भगवान्‌की लीलाका जगत्‌में विस्तार हो रहा है, यही लोग प्रभुके सच्चे सन्देशवाहक हैं

प्रतिनिधि होते हैं। जिस भूमिपर ऐसे लोग प्रकट होते हैं, वह भूमि पवित्र हो जाती है, जहाँ ये विचरते हैं, वह स्थल शुद्ध हो जाता है, जहाँ ये निवास करते हैं, वहाँका वातावरण पवित्र हो जाता है, जिन स्थानोंमें ये भगवदाराधन करते हैं वे स्थान पातकियोंको पावन करनेवाले तीर्थ बन जाते हैं, जिस ग्रन्थको ये पढ़ते हैं, वह जगत्का आदर्श धर्म-ग्रन्थ बन जाता है, ये जो कुछ उपदेश करते हैं वही शास्त्र बन जाता है, ये जैसा आचरण करते हैं, वैसा ही वहाँके लोगोंका आचार बन जाता है। इनका प्रकाश इतना प्रखर होता है कि दूर-दूरतक पाप-तापरूपी अन्धकार नहीं रह सकता। आनन्द और शान्तिकी शीतल प्रफुल्लतामयी चाँदनी सर्वत्र छिटकी रहती है। जो इनके चरणोंका आश्रय ले लेते हैं, वही तर जाते हैं और जगत्को तारनेवाले बन जाते हैं। श्रीमद्भागवतमें भगवान् कहते हैं—

यथोपश्रयमाणस्य भगवन्तं विभावसुम्।
शीतं भयं तमोऽप्येति साधून्संसेवतस्तथा॥
निमज्ज्योन्मज्जतां घोरे भवाब्धौ परमायनम्।
सन्तो ब्रह्मविदः शान्ता नौर्दृढेवाप्सु मज्जताम्॥
अन्नं हि प्राणिनां प्राण आर्तानां शरणं त्वहम्।
धर्मो वित्तं नृणां प्रेत्य सन्तोऽर्वाग् बिभ्यतोऽरणम्॥
सन्तो दिशन्ति चक्षूंषि बहिरर्कः समुत्थितः।
देवता बान्धवाः सन्तः सन्त आत्माहमेव च॥

जिस प्रकार अग्निका आश्रय लेनेपर शीत, भय और अन्धकार तीनोंका नाश हो जाता है, उसी प्रकार साधु महापुरुषोंके सेवनसे पाप, संसृतिका भय और अज्ञान आदि नष्ट हो जाते हैं। जलमें डूबते हुए लोगोंको जैसे नौका उबार लेती है, वैसे ही इस भयानक संसार-सागरमें गोते खाते हुए मनुष्योंके लिये ब्रह्मवेत्ता और शान्तचित्त महापुरुष परम अवलम्ब हैं। जैसे प्राणियोंका अन्न ही प्राण है, मैं भगवान् ही आर्त-दुखियोंका आश्रय हूँ और परलोकमें जैसे धर्म ही मनुष्यका धन होता है, उसी प्रकार संसार-भयसे व्याकुल मनुष्योंके लिये सन्त महापुरुष ही परम आश्रय होते हैं। आकाशमें उदय हुआ सूर्य मनुष्यको केवल बाह्य नेत्र ही देता है परन्तु सन्त महापुरुष तो उसे ज्ञानरूपी आन्तरिक नेत्र प्रदान करते हैं। ऐसे महापुरुष सन्तजन ही देवता, बन्धु सबके आत्मा और साक्षात् मेरे (भगवान्के) स्वरूप हैं।

ये महापुरुष ही जगत्के आधार होते हैं और यही जगत्-रूपी आकाशकी परम प्रकाशमयी उज्ज्वल ज्योति होते हैं, इनकी त्यागमयी प्रतिभा सर्वथा वन्दनीय होती है।

श्रीपरमहंसदेव वर्तमान समयके एक आदर्श महापुरुष थे, उनके पवित्र जीवनपर जितना ही अधिक मनन किया जाता है, उतनी ही अधिक उनपर श्रद्धा-भक्ति बढ़ती है। आज भारत और विदेशोंके लाखों नर-नारी उनके आदर्श चरित्रकी पूजा करते हैं और उनकी महान् शिक्षासे लाभ उठा रहे हैं। श्रीपरमहंसदेवने जो कुछ किया और कहा, उसमें कहीं भी किस

को कोई दिखावटकी बात नहीं दीख पड़ी। उनकी शिक्षा इतनी सरल और स्वाभाविक है, मानो उनका हृदय ही वाणी बनकर सबके सामने आ जाता है। उसमें पाण्डित्य नहीं, पर अनुभवकी वह अनोखी छटा है जिसके सामने बड़े-बड़े पण्डित सिर झुकानेको बाध्य होते हैं। ऐसे महापुरुषका जीवन-चरित्र हिन्दीमें लिखकर स्वामी श्रीचिदात्मानन्दजीने बड़ा उपकार किया है। मेरी पाठकोंसे करबद्ध प्रार्थना है कि वे इस चरित्रको ध्यान देकर पढ़ें और महापुरुषकी वाणी और उनके चरित्रका यथाधिकार अनुकरणकर सच्ची शान्ति और परम आनन्दके पथपर उत्तरोत्तर आगे बढ़ते रहें।

गोरखपुर, ज्येष्ठ शुक्ल ६
सं० १९८९ वि०

हनुमानप्रसाद पोद्दार
कल्याण-सम्पादक

प्रकाशकका निवेदन

जिस समय सर्वत्र परमहंसदेवकी जयन्ती मनायी जा रही है, ठीक उसी समय यह दूसरा संस्करण निकल रहा है। बड़ी ही प्रसन्नताकी बात है कि जगत्के लोग परमहंसदेवके प्रभावको जान रहे हैं। आशा है पहले संस्करणसे भी अधिक इस दूसरे संस्करणका शीघ्र प्रचार होगा। और हिन्दीभाषाभाषी जनसमुदाय इससे विशेष लाभ उठावेंगे, क्योंकि इस समय परमहंसदेवकी ओर जनताकी दृष्टि विशेषरूपसे आकर्षित है।

श्रीरामकृष्ण परमहंस

श्रीहरिः

(१)

विषय-प्रवेश

धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्थाः ।

भगवान् श्रीरामकृष्ण परमहंसदेवके चरणकमलोंमें विनय और प्रेमसहित साष्टांग प्रणाम कर उन महापुरुषकी अनुपम जीवन-लीलाके सम्बन्धमें कुछ कहनेका साहस कर रहा हूँ। यद्यपि उनके चरित्रोंको भलीभाँति समझना मुझ-जैसे मनुष्यकी शक्तिसे परे है और यद्यपि महापुरुष ही महापुरुषकी महिमाको भलीभाँति समझ सकते हैं, तथापि अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार महान् आत्माओंकी जीवनयात्राका बारंबार स्मरण करना सबके लिये [illegible] हुआ करता है। ऐसा करते रहनेसे उनके अद्भुत

चरित्रोंकी छाप आत्मापर अंकित हुए बिना नहीं रह सकती। इसीलिये मैं अपने एवं पाठकोंके कल्याणके निमित्त इस परम सारगर्भित लीलाके वर्णन करनेका किञ्चित् प्रयास करता हूँ।

महान् पुरुषोंका जगत्में अवतीर्ण होना नौकारूढ़ दिग्भ्रम-विमूढ़ और प्रचण्ड वायुपीड़ित यात्रियोंके लिये ज्योतिःस्तम्भ (Light house) रूपसे सहायक हुआ करता है। इनके सहारेसे और इनके पथप्रदर्शनसे अनेक पथभ्रष्ट जीवोंका उद्धार होता है। इनकी सहज सरल अमृतवाणी सुननेवालोंके मुरझाये हुए हृदयोंको प्रफुल्लित कर हरा-भरा कर देती है, ज्ञानभक्तिरूपी पुष्प-फलोंसे सुसज्जित हो हृदय अद्भुत शान्ति और सुखका अनुभव करता है। विद्याबुद्धिविहीन मनुष्य, जिसे न तो तपका बल और न त्यागका ही सहारा होता है, यदि इस विकट संसार-महार्णवको इन महात्माओंके सहारे 'गोपद इव' पार कर जाय तो क्या आश्चर्य है? इनके चरित्रोंके स्मरणसे अनेक जीव पार हो गये हैं और अनेक जीव और भी भवसागरसे तर जायँगे—यह निश्चित है।

यह जगत् ऐसा विकट और अगाध महासागर है कि इसका थाह पाना साधारण जीवोंके लिये कठिन ही नहीं, असम्भव है। फिर कामादि प्रचण्ड वायुके थपेड़े प्राणीका होश बिगाड़ देते हैं। विषय-तृष्णा और अज्ञानके घोर अन्धकारमें मनुष्यको अपना-पराया, शुभ-अशुभ कुछ नहीं सूझता, उसपर मोह-मदिराका नशा तो रहे-सहे होशको और भी चौपट कर देता है। ऐसी अवस्थामें यदि परमहंसदेव-जैसे अहैतुक कृपासिन्धु इस पृथ्वीपर अवतीर्ण होकर इस प्रकारकी दुरवस्थामें पड़े हुए मनुष्योंका कर्णधार बनकर उद्धार न करें तो और कौन कर सकता है? जब-जब

धर्मकी ग्लानि होती है, मनुष्य राग, द्वेष, हिंसादि दुष्कर्मोंमें प्रवृत्त हो जाते हैं, सत्यपरायणता लुप्त हो जाती है और मनुष्योंका जीवन केवल पशुवत् विषयभोगोंमें ही लिप्त होने लगता है, तब भगवान् सच्चिदानन्द पृथ्वीतलपर अवतीर्ण होकर मनुष्योंको सत्य-मार्ग दिखलाकर धर्मकी स्थापना करते हैं, जगत्में शान्तिका पुनरुत्थान होता है, विषय-वासनाके गंदे कुण्डमें पड़े हुए दुखी जीव स्वात्मानन्दकी पवित्र गंगामें विहार करने लगते हैं। सृष्टिका कुछ ऐसा ही नियम है। धर्म-अधर्मके ज्वार-भाटे आते ही रहते हैं और श्रीभगवान् भी जीवोंपर करुणा कर समय-समयपर धर्मका पुनरुद्धार कर शान्ति स्थापन करते रहते हैं। भगवान्‌की अचिन्त्य मायासे मोहित जीव विचारशून्य हो किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाया करता है, उसका धर्माधर्मविवेक नष्ट हो जाता है, नाना शास्त्रोंके गोरखधन्धेमें फँसा हुआ मनुष्य उसीको ध्येय समझ बैठता है, वाद-विवादसे ही सन्तुष्ट हो उसीको ज्ञानोपलब्धि मान लेता है, परन्तु इस उपायसे वास्तविक ज्ञान और शान्तिकी प्राप्ति नहीं हो सकती, अनेक शास्त्रोंके विचारसे प्रायः भ्रम उत्पन्न हो जाया करता है। सत्यकी खोज केवल ग्रन्थोंके बलसे कभी नहीं हो सकती, वह तो आत्मनिष्ठ अनुभवपूर्ण गुरुद्वारा ही हुआ करती है, दूसरा कोई उपाय नहीं है।

श्रीरामकृष्ण-जैसे महापुरुष जगद्गुरुरूपसे संसारमें प्रकट होते हैं। इनके वाक्योंका प्रभाव किसी विशेष जाति वा देशमें ही सीमाबद्ध नहीं रहता, वह तो समस्त जगत्में अपना प्रभाव डालता है।

ऐसे ही महापुरुषोंसे धर्मकी स्थापना हुआ करती है।

साधारण मनुष्य केवल बुद्धि-बल और वाक्पटुतासे धर्मका प्रचार करते हैं, परन्तु फल कुछ नहीं होता। यह वक्ता और श्रोता दोनोंके लिये केवल दो घड़ीका विलासमात्र होता है परन्तु आत्मनिष्ठ महात्माके साधारण सरल वाक्य हृदयमें प्रवेश कर जाते हैं और तत्काल जीवनको पलट देते हैं। ऐसे महानुभाव जो कहते हैं उसे अपने जीवनमें चरितार्थ करके भी दिखाते हैं, जिससे मनुष्योंपर उसका अटल प्रभाव पड़ता है। धर्मराज युधिष्ठिरने यक्षके प्रश्नका उत्तर देते हुए धर्ममार्गका इस प्रकार वर्णन किया था—

वेदा विभिन्नाः स्मृतयो विभिन्नाः नासौ मुनिर्यस्य मतं न भिन्नम्।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्थाः॥

अर्थात् वेद भिन्न-भिन्न हैं, स्मृतियाँ भी अनेक हैं, मुनियोंके भी मत अनेक हैं, धर्मका तत्त्व बड़ा गूढ़ है, इसलिये महापुरुष जिस मार्गसे जाते हैं वही मार्ग भला है। लक्ष्य-स्थानपर पहुँचनेके लिये जैसे गहन वनमें मार्ग खोजना अनभिज्ञ मनुष्यके लिये असम्भव-सा होता है, परन्तु वही मार्ग जाननेवालेके पथप्रदर्शनसे सुगम हो जाता है, वैसे ही नाना शास्त्रोंके विकट वनमें प्रवेश कर अपने ध्येयको पा लेना महापुरुषकी सहायताके विना असम्भव है। केवल शास्त्रपाण्डित्यसे ही वास्तविक ज्ञान नहीं हुआ करता, वह तो बुद्धिविलासमात्र है। विना तत्त्वज्ञ गुरुकी कृपाके वास्तविक ज्ञान होना कठिन है। अनेक मत-मतान्तरोंके परस्पर वाद-विवाद और लड़ाई-झगड़े इसीलिये होते हैं कि मनुष्योंको तत्त्व-वस्तुका ज्ञान नहीं होता, केवल कुछ बुद्धिगम्य जानकारी होती है। जो मनुष्य सत्य पदार्थका अनुभव कर लेता है उसे वृथा विवाद

करना अच्छा नहीं लगता । परमहंसदेव कहा करते थे कि 'जब-तक लोग भोजन करना आरम्भ नहीं करते तभीतक आपसमें बात-चीत करते हैं, जहाँ भोजन करना आरम्भ हुआ कि सारा शोर-गुल आप-से-आप बन्द हो जाता है ।' ऐसे ही आत्मानुभवी महात्मा शब्दजालमें वृथा समय नहीं खोते, उन्हें भगवत्-स्मरणके अमृत-पानमें ही आनन्द मिलता है । नाना मतावलम्बियोंके आपसके झगड़े अज्ञान और अहंकारके कारण ही होते हैं । दूसरे मतोंको सहानुभूतिके साथ भलीभाँति समझे बिना झगड़ोंका मिटना असम्भव है । सभी धर्ममार्ग अपने-अपने स्थानपर सत्य हैं । यह आग्रह करना कि केवल अमुक धर्म ही सत्य है, सत्यका गला घोंटना है । परमात्मासे मिलनेके अनेक मार्ग हैं, जो जिसे प्रिय और सुलभ: प्रतीत हो उसके लिये वही हितकर है । यदि यह भाव लोगोंमें दृढ़ हो जाय तो आज ही परस्परकी कलह मिट जाय और जगत्‌में शान्ति स्थापित हो जाय । परमहंसदेवका संसारके कल्याणके हेतु यह परम हितकर आविष्कार था कि 'सब धर्म सत्य हैं ।' यह उनका अपना अनुभव था, क्योंकि उन्होंने कई मतोंकी सत्यताकी उन्हींके उपायोंका अवलम्बन करके परीक्षा की थी, जिससे उनको दृढ़ विश्वास हो गया था कि प्रत्येक धर्म सत्यकी नींवपर खड़ा है । जो जिस मार्गसे अनन्यचित्त होकर और उदारभावसे दृढ़तापूर्वक चलेगा वह सत्य वस्तुकी उपलब्धि अवश्य कर लेगा । हिन्दूको सच्चा हिन्दू बनकर अपने धर्मपर अविचलित रूपसे दृढ़ रहना चाहिये । मुसलमानके लिये निष्कपटभावसे पक्का मुसलमान बने रहना ही श्रेयस्कर है । ऐसे ही ईसाई आदि अन्य मतावलम्बियोंके लिये अपने-अपने धर्मके

अनुकूल शुद्ध भावसे धर्म-पालन करना ही श्रेष्ठ है। सर्व-धर्म-समन्वय-प्रवर्तक श्रीरामकृष्ण परमहंसका आविष्कृत यह ज्ञान बड़े ही महत्त्वका है और इसीको आदर्श मानकर स्वामी विवेकानन्दने जगत्‌में धर्म-प्रचार किया था। बहुधा धर्म-प्रचारक लोग अन्य धर्मोंपर कुत्सित आक्षेप कर कलहाग्निमें आहुति डाल उसे प्रचण्ड कर देते हैं, जिससे शान्ति भंग होती है, आपसमें घृणा बढ़ती है और दुराग्रहकी वृद्धि होती है। धर्मका प्रचार शान्ति और परस्पर प्रेम फैलानेके लिये है, घृणापूर्ण कटाक्षोंसे तो उलटा वैमनस्य और विरोध बढ़ता है।

भगवत्-प्राप्ति वा आत्मसाक्षात्कारके लिये विषयपरायणता और विषयासक्ति एक भयंकर बाधा है। विषयोंमें सबसे अधिक दृढ़ पाश कामिनी और काञ्चन हैं। इनके फंदेसे छूटे बिना कभी कल्याण नहीं होता। परम पदपर पहुँचनेके लिये इनका त्याग करना परम आवश्यक है। ठाकुर श्रीरामकृष्ण इस त्यागके परम उज्ज्वल आदर्श हैं। आपने परम सुन्दरी सहधर्मिणी भार्याका पाणिग्रहण करके भी कभी कामचेष्टाकी ओर रुचि नहीं की। क्योंकि आप स्त्रीमात्रको जगज्जननी माताका रूप समझते थे। ऐसे दृढ़ विश्वासके साथ काम-वासनाका कहाँ सम्बन्ध रह सकता है? उनके सामने सोना और मिट्टी दोनों समान थे और यह भाव कुछ ऐसा दृढ़ हो गया था कि धातुका स्पर्शमात्र ही उनके शरीरमें जलन पैदा कर देता था। इसीलिये वह धातुका स्पर्श ही नहीं करते थे। कामिनी और काञ्चनके त्यागकी यह परमावधि है। संसारकी साधारण धन-सम्पत्तिकी प्राप्तिके लिये भी जब महान् परिश्रम करना पड़ता है, एक प्रकारसे तन्मय हो

जाना पड़ता है, मन-बुद्धिको उसी चेष्टामें लगाये बिना सफलता नहीं होती, तो भगवत्-प्राप्ति-जैसी दुष्प्राप्य वस्तुका लाभ करना सहज काम कैसे हो सकता है? इस ध्येयकी प्राप्ति सब प्रकारकी विषयलोलुपताको तिलाञ्जलि दिये बिना सम्भव नहीं है। सांसारिक पदार्थोंकी लालसा विषवत् त्यागे बिना अमृतत्वको प्राप्त करना असम्भव है। विषय-त्यागके साथ-साथ जब ठाकुरकी तरह जगन्माताके दर्शनके लिये व्याकुलता तीव्र भावसे बढ़ जाती है, जब बिना साक्षात्कार किये जीवन भार प्रतीत होने लगता है और जब भूख-प्यासकी चिन्ता भी उनके मिलनेकी इच्छामें विलीन हो जाती है, तब कहीं उनकी प्राप्ति सम्भव होती है। विषयासक्ति और भगवत्-प्राप्ति साथ-साथ नहीं रह सकती।

जहाँ काम तहँ राम नहिं, जहाँ राम नहिं काम।
तुलसी कबहुँ कि रहि सकै, रवि-रजनी इक ठाम॥

वास्तवमें इन्द्रियोंके वशीभूत जीवोंके लिये भगवत्-प्राप्तिका वह अपरिमित सुख दुराराध्य है। मनको सब प्रकारकी वासनाओंसे शून्य करना परम पुरुषार्थ है, इसके बाद अहंकार भी धीरे-धीरे क्षीण होने लगता है। अहंकार ही अज्ञानका मूल है। इसीसे परम तत्त्वका ज्ञान ढका रहता है। श्रीरामकृष्णका जीवन अहंकारशून्य बालककी भाँति सरल और निर्मल था। यही उनके ब्रह्मसाक्षात्कारका कारण था। हृदय एक दर्पण है, निर्मल रहनेसे ही उसमें मुखका प्रतिबिम्ब पड़ता है। सब तरहकी वासनाओं और अहंकारसे मन-बुद्धि तथा हृदयको साफ किये बिना सर्वव्यापक भगवान्‌का साक्षात्कार नहीं हो

सकता । अनुभवी महापुरुषमें केवल शरीर-धारणके अभिप्रायसे अहंकारका किञ्चित् आभासमात्र रहना स्वाभाविक है। थोड़ा-सा अहंकार रहे बिना शरीरकी स्थिति रह नहीं सकती और महापुरुष जगत्‌के कल्याणके लिये ही अवतीर्ण होते हैं, इस हेतु उन्हें शरीर धारण करना पड़ता है। ठाकुरका कथन था कि 'माँने अपने कार्यकी सिद्धिके लिये सूक्ष्म-सा अहंभाव इस शरीरमें रख छोड़ा है, वह इससे जैसे काम कराती है, मैं वैसे ही करता हूँ।' ऐसे बालक-भाव और सरल धारणाके होनेपर अविच्छिन्न ज्ञानधाराका प्रवाहित रहना निश्चित है। भगवान् श्रीकृष्ण भी गीतामें कहते हैं—

> अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ।
> तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥

'जो सदैव अनन्यचित्त होकर मुझे निरन्तर स्मरण करता है उस नित्ययुक्त योगीके लिये मैं अति सुलभ हूँ।' तैलधारावत् नित्य भगवत्-चिन्तन करना और अपनी व्यक्तिको उन्हींका आधारमात्र समझना—यही ज्ञान है; ऐसी धारणामें अज्ञानमूलक अहंकार नहीं ठहर सकता ।

जगत्‌की मोहमयी प्रचण्ड ज्वालासे विदग्ध मनुष्यो ! यदि तप्त हृदयकी दाहको शान्त करना चाहते हो और यदि सांसारिक सुखोंकी मृगतृष्णाके पीछे भटकते-भटकते मृतप्राय हो रहे हो तो जाओ किसी अनुभवी महापुरुषकी शरणमें ! उनके अमृत-तुल्य वाक्य तुम्हारे संकटको दूर कर देंगे । तुम्हारा जीवन तभी सुखमय बन सकेगा जब उनकी अनन्यशरण होकर अपने ध्येयकी प्राप्तिके

लिये कटिबद्ध हो जाओगे। 'न खुदा ही मिला न विसाले सनम' वाली दशामें जीवन नष्ट करना कौन-सी बुद्धिमत्ता है ? विषयोंकी लालसाको एकदम छोड़कर सच्चिदानन्दकी खोजमें अपने समस्त पुरुषार्थको लगा देना ही श्रेयस्कर है। इस अचिन्त्य मायासे पार पाना असम्भव है। परमहंसदेवकी तरह माँकी गोदमें बैठकर उनकी लीलाका आनन्द लूटो! परन्तु उनकी तरह तुम्हें भी अहङ्कार-पिशाचको भगा देना होगा। अपने व्यक्तित्वको उनमें ही विलीन कर देना होगा। शरीर-मन-बुद्धिको वासनाओं और अहङ्कारसे शून्य कर जगन्माताका क्रीड़ा-स्थल बना दो। सब कुछ उन जगज्जननीकी इच्छापर छोड़ दो। यन्त्रमात्र बनकर संसारमें कर्म करो। यदि ऐसा कर सकोगे तो सच्चे मनुष्यत्वके अधिकारी बनोगे। भगवान् श्रीरामकृष्णके चरित्रोंसे शिक्षा ग्रहणकर उनके पथप्रदर्शनके अनुयायी बनकर जीवनको सार्थक करो। उनके चरित्रोंको केवल कहानीकी तरहसे पढ़ लेनेसे कुछ लाभ नहीं हो सकेगा, जबतक कि इस अपूर्व जीवनके गूढ़ तत्त्वको अपने हृदयमें धारण कर उसके अनुसार अपने समस्त जीवनको अर्पित न कर दोगे। जगत्में जीव मायासे पीड़ित हो रहे हैं और सुखकी वहाँ तलाश करते हैं जहाँ उसका नाम-निशान भी नहीं है। भगवत्-कृपासे सद्गुरुद्वारा जब कभी सत्यमार्ग प्राप्त हो जाता है तब मनुष्यका जीवन सार्थक होने लगता है और तभी दुःखोंसे छुटकारा मिलता है। जगन्नियन्ता भगवान्से हार्दिक प्रार्थना है कि—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत्॥

(२)

कुलपरिचय और बाल्यकाल

बङ्गाल प्रान्तके हुगली जिलेमें देरीपुर एक ग्राम है। वहाँ एक सत्यपरायण धर्मनिष्ठ ब्राह्मणकुल निवास करता था, जो चटर्जीके नामसे प्रसिद्ध था। इस कुलमें खुदीराम चटर्जी नामक एक साधारण सम्पत्तिवान् ब्राह्मण थे और चन्द्रमणि देवी उनकी धर्मपत्नी थीं। यही दम्पति श्रीरामकृष्णके जन्मदाता थे। असाधारण महापुरुषोंकी इहलौकिक सम्भूतिका आधार भी साधारण नहीं हुआ करता। श्रीरामकृष्ण-जैसे महान् आत्माका इस पृथ्वीपर, इस

कुलमें अवतीर्ण होना सूचित करता है कि यह कुल वास्तवमें परम योग्य था। दोनों पति-पत्नी बड़े धर्मपरायण और भगवद्भक्त थे, इनका आचार-व्यवहार बड़ा धार्मिक और सरल था। इन्हें शास्त्रोंमें पूर्ण श्रद्धा और विश्वास था। पैत्रिक सम्पत्ति पर्याप्त थी, जिससे निष्कण्टक जीवन व्यतीत होता था। परन्तु दिन सदा एक-से नहीं रहते, मनुष्यका जीवन सुख-दुःखका ही घर है और प्रारब्धानुकूल इनका आना-जाना लगा ही रहता है। खुदीरामको भी दुःखका सामना करना पड़ा। उस ग्रामका एक मुख्य धनी जमींदार बड़े ही क्रूर स्वभावका और मदोन्मत्त था, 'प्रभुता पाय काहि मद नाहीं।' किसी प्रकारके भी अन्यायका आचरण करनेमें उसे किञ्चित्-मात्र भी सङ्कोच नहीं होता था। एक बार उसने एक झूठे मुकद्दमेमें खुदीरामसे गवाही देनेको कहा। यह बेचारे बड़े सङ्कटमें पड़े। गवाही देते हैं तो असत्य आचरणसे आत्महनन तथा महा पाप होता है और नहीं देते हैं तो यह डर है कि वह ग्राममें उन्हें चैनसे नहीं रहने देगा। सत्यपर आरूढ़ पुरुष जगत्के नाशवान् पदार्थोंपर इतना अचल मोह नहीं रखते, जितना धर्मपर रखते हैं। अतएव धर्मात्मा खुदीरामने जमींदारके उस अन्यायपूर्ण कर्ममें सहयोग देना अनुचित समझ साहसके साथ साफ इन्कार कर दिया। मदोन्मत्त और अनीतिपरायण धनी जमींदार खुदीरामके इस साहसको कैसे सहन कर सकता था? उसने निरपराधी ब्राह्मणको एक झूठे मामलेमें फँसाकर अदालतके चक्करमें डाल उसका सर्वनाश कर दिया। खुदीरामकी सारी सम्पत्ति नष्ट हो गयी, यहाँतक कि उनके रहनेको एक मँढैयातक नहीं बची। परन्तु धर्मपर आरूढ़ और अपने इष्टदेव भगवान् श्रीरामचन्द्रपर पूरा

भरोसा रखनेवाले खुदीरामने सम्पत्तिके नाशकी कुछ भी परवा न की और भगवान्‌की इच्छा शिरोधार्य कर निकटके एक ग्राम कामारपूकुरकी ओर प्रस्थान किया। वहाँ उनके एक मित्रने उन्हें रहनेको एक झोंपड़ी और निर्वाहके लिये थोड़ी-सी जमीन दे दी, जिसमें खेती करके वह एक समय भोजन करनेयोग्य अन्न पैदा कर लिया करते।

इस दुर्घटनासे खुदीरामकी जगत्‌के पदार्थोंपर और भी अधिक अरुचि बढ़ गयी। अब वह अपना बहुत-सा समय भगवान्‌के आराधनमें ही बिताने लगे। इस समय इनके एक रामकुमार नामक पुत्र और एक कन्या थी। थोड़ी-सी भूमिसे जो अन्न प्राप्त होता, उससे एक ही समय भोजन कर सन्तोषी ब्राह्मण ईश्वरको धन्यवाद देते। खुदीरामका अधिक समय भगवद्भजनमें ही बीतता था, कभी-कभी तो वह ऐसे तल्लीन हो जाते कि सारा दिन ही बीत जाता। चन्द्रमणि घरके काममें लगी रहतीं, पति और सन्तानकी सेवा तथा उनके भोजनादिका प्रबन्ध करती रहती थीं। चन्द्रमणि साक्षात् देवी थीं। पातिव्रत, दया और उदारताकी मानो वह जीती-जागती मूर्ति थीं। पतिको ईश्वर समझ उनकी तन-मनसे सदा सेवा करतीं। कोई भूखा-प्यासा घरसे निराश होकर नहीं जाता, जो कुछ भी रूखा-सूखा अन्न घरमें होता उसीसे उसका सत्कार करके अपनेको धन्य मानतीं। स्वयं विना खाये रह जातीं, परन्तु अन्न रहते भिखारीको निराश करना वह सहन नहीं कर सकती थीं। उन्हें किसी वस्तुकी लालसा न थी, सदैव निःस्पृहभाव रखती थीं। चन्द्रमणिका हृदय इतना विशाल था कि ग्रामके बालकोंको वह अपनी सन्तानके तुल्य समझतीं और सभी गाँवके रहनेवालोंको

अपने बन्धु-बान्धव मानती थीं। ग्रामकी स्त्रियाँ अपने सब कामोंमें उनसे परामर्श लेतीं और सब कठिनाइयोंमें उनसे सहायता और सान्त्वना पातीं। सरलता, निष्कपटता और सत्यपरायणता ही उनके आभूषण थे। पति-पत्नीके ऐसे सद्भावोंसे यह परिवार ग्राम-भरमें सबका प्रेमपात्र और सम्मानास्पद बन गया था।

कामारपुकुरमें रहते छः वर्ष बीत गये। खुदीरामने लड़के-लड़कीके विवाह भी कर दिये। रामकुमार संस्कृत पढ़कर विद्वान् हो गये और पूजा-पाठसे कुछ धन उपार्जन करने लगे। उनकी कमाईसे कुटुम्बका निर्वाह सुखपूर्वक होने लगा। रामकुमारकी सहायतासे खुदीरामके कुटुम्बपालनका भार हल्का हो गया। इस कारण अब वह अपना सभी समय भगवद्भजनमें ही बिताने लगे, भगवान् श्रीराममें उनकी श्रद्धा और प्रेम दिनोंदिन बढ़ता गया। कभी-कभी तो वह भगवत्-चिन्तनके आनन्दमें तल्लीन हो जाया करते थे। अब उनकी इच्छा तीर्थयात्रा करनेकी हुई। उन्हें दृढ़ विश्वास था कि ऋषि-मुनियोंके पदार्पणसे तीर्थभूमि पवित्र हो गयी है। शास्त्रोंने भी तीर्थोंकी बहुत महिमा गायी है, इस कारण वहाँ जानेसे भगवान्के दर्शन होना सुलभ है। इस विचारसे उन्होंने सन् १८२४ ई० में श्रीरामेश्वरकी यात्राके लिये प्रस्थान किया। अपने इष्टदेव भगवान् श्रीरामचन्द्रके लङ्का जाते समय शिवपूजन करनेके कारण इस तीर्थमें खुदीरामकी अत्यन्त श्रद्धा थी। रास्तेमें जगह-जगह अन्यान्य तीर्थोंके दर्शन करते हुए श्रीरामेश्वरतक १५०० मीलकी पैदल यात्रा कर लगभग एक वर्षमें खुदीराम सकुशल घर वापस आये। इस यात्राके एक वर्ष पीछे एक पुत्र पैदा हुआ जिसका नाम रामेश्वर रक्खा गया। ग्यारह

वर्ष पीछे उनकी इच्छा पितृऋणसे मुक्त होनेके लिये गया जानेकी हुई। यद्यपि उनकी आयु अब साठ वर्षके करीब हो गयी थी, फिर भी उत्साहपूर्वक पैदल चलकर दो सौ मीलकी यात्रा करनेके अभिप्रायसे वह घरसे चल पड़े। गया पहुँचकर उन्होंने महीनेभर वहाँ रहकर शास्त्रविधिके अनुसार समस्त पितृकर्म पूरा किया। इससे उन्हें बड़ा आनन्द और सन्तोष हुआ। पितरोंको तृप्त करनेसे उन्होंने अपने जीवनको सार्थक समझा। जिन परमात्माकी कृपासे यह शुभ कर्म सम्पन्न हुआ, उनको वह बार-बार धन्यवाद देने लगे।

अनोखी घटना

रात्रिको उन्हें एक अद्भुत स्वप्न दिखायी दिया। स्वप्नमें उन्होंने देखा कि वह भगवान् गदाधर (विष्णु) के मन्दिरमें बैठे हैं और उनके सामने उनके पितर बड़े आनन्दसे उनके द्वारा समर्पित अन्नका भोजन कर रहे हैं। इतनेमें सारा मन्दिर अपूर्व ज्योतिसे जगमगा उठा और अकस्मात् भगवान् श्रीकृष्णकी परम मनोहर छवि उन्हें दिखायी पड़ी। खुदीरामने यह दिव्य दृश्य देखकर विस्मित हो अत्यन्त प्रेमसे भगवान्के चरणोंमें प्रणाम किया। भगवान् बोले कि 'हे महाभाग! तेरे भक्तिभावसे मैं अति प्रसन्न हूँ; इसलिये तेरे घरमें जगत्के हितार्थ जन्म लूँगा।' खुदीराम यह सुनकर अवाक् हो गये और हाथ जोड़कर कहने लगे—'भगवन्! मैं तुम्हारे योग्य नहीं हूँ, मेरे घरमें तुम्हारी सेवा-शुश्रूषाके योग्य कुछ भी सामग्री नहीं है।' भगवान्ने कहा—'तू इस बातकी चिन्ता न कर।' प्रातःकाल जगनेपर खुदीराम आनन्दमें मग्न हो गये

और उन्हें यह निश्चय हो गया कि भगवान् मेरे घर अवतीर्ण होकर हमारे कुलको पवित्र करेंगे। इधर चन्द्रमणिको भी विचित्र दर्शन होते थे। एक दिन वह मन्दिरमें गयीं और भगवान्‌के दर्शन करने लगीं कि अकस्मात् मूर्ति दिव्य ज्योतिर्मयी हो गयी और एक अपूर्व प्रकाशने उन्हें आच्छादित कर लिया। उनका बाह्यज्ञान लुप्त हो गया और वह बेसुध हो पृथ्वीपर गिर पड़ीं। लोगोंने उन्हें उठाकर घर पहुँचा दिया। जब होशमें आयीं तो उन्होंने अपने हृदयमें अद्भुत पवित्रता और आनन्दका अनुभव किया। खुदीरामने घर लौटकर अपनी भार्यासे गयामें भगवत्-दर्शन होनेका सारा वृत्तान्त कह सुनाया और चन्द्रमणिने भी इधरकी सब घटना पतिसे कह दी। दम्पतिको अब यह पूर्ण विश्वास हो गया कि भगवान् अवश्य हमारे कुलको पवित्र करेंगे।

जन्म और बाल्यकाल

इस घटनाके उपरान्त पति-पत्नी दोनों अपने-अपने नित्य-कर्ममें लग गये। खुदीराम स्वाध्याय और भगवत्-पूजामें तथा चन्द्रमणि अपने गृहकार्यमें आनन्दपूर्वक समय बिताने लगीं। कुछ समय बाद सन् १८३६ के फरवरी मासकी १८ तारीखको चन्द्रमणिके पुत्र उत्पन्न हुआ। बालकका जन्म-लग्न विचारनेसे खुदीरामको वह मुहूर्त बहुत उत्तम जान पड़ा, जिससे उन्हें बालकका भविष्य अत्यन्त प्रतिभाशाली प्रतीत हुआ। अन्य विख्यात ज्योतिषियोंने भी यही निश्चय किया कि निःसन्देह बालक कोई असाधारण व्यक्ति है। बालकका नाम गदाधर रक्खा गया। गदाधरके जन्मके सम्बन्धमें बहुत-सी दन्तकथाएँ प्रचलित हैं; वे कहाँतक सच हैं यह निश्चय करना कठिन है। गदाधर बचपनसे

ही सबको अति प्रिय लगता था। जो उसे देखता वही प्यार करता। उसका शिशुकाल विचित्र था। एक समय जब वह केवल छः-सात वर्षका था, बच्चोंके साथ गाँवके बाहर घूम रहा था। इतनेमें उसने नीलाकाशमें सुन्दर पक्षियोंकी कतार उड़ती देखी। कुञ्ज-पक्षी प्रायः एक लंबी टेढ़ी कतारमें मालाकी तरह इकट्ठे होकर उड़ा करते हैं। मालाकार श्वेतवर्ण पक्षीसमूहको नीलाकाशमें उड़ते देखकर गदाधरको वनमालाधारी श्रीकृष्णका स्मरण हो आया और वह समाधि-अवस्थामें बाह्यज्ञानशून्य होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। बचपनसे ही उसकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण थी। एक बार जो बात सुन लेता वह कभी न भूलता। शास्त्रोंका श्रवण उसे सदा प्रिय था और साधुओंसे तो उसे बड़ा ही प्रेम था। जहाँ कहीं शास्त्रकथा या साधु-समागम होता, गदाधर अवश्य वहाँ जाता और सत्सङ्गमें घंटों बैठा रहता। कभी-कभी साधुओंसे ऐसी बातें करता कि वह लोग चकित हो जाते और उसे आशीर्वाद देते। बङ्गालमें गायकमण्डली जिसे 'यात्रादल' कहते हैं, एक ग्रामसे दूसरे ग्राममें कीर्तन करते फिरा करती हैं। ऐसी मण्डलियाँ कामारपूकुरमें भी आया करती थीं। जब कभी कोई मण्डली वहाँ आती तो गदाधर जरूर वहाँ पहुँचता और बड़े ध्यानसे उनका गान तथा हाव-भाव देखता रहता, फिर घर आकर उसी ढंगसे अनुकरण कर गाता, जिससे सुननेवाले विस्मित हो जाते।

सन् १८३९ में चन्द्रमणिके एक कन्या पैदा हुई, जिसका नाम 'सर्वमंगला' रक्खा गया।

पढ़ना-लिखना

लगभग पाँच वर्षकी अवस्थामें गदाधरको पाठशालामें भर्ती किया गया। वहाँ वह सहजहीमें अपने सहपाठी बालकोंका तथा

गुरुजीका प्रेमपात्र बन गया। उसका ढंग ही कुछ ऐसा था कि कोई उससे प्रेम किये बिना नहीं रह सकता था। स्मृति ऐसी अद्भुत थी कि एक बार पढ़ने-सुननेसे ही कण्ठस्थ कर लेता था। पिता चाहते थे कि गदाधर अच्छी तरह विद्योपार्जन कर अपनी आजीविकाके निमित्त धन कमाने लगे। परन्तु वह जगत्‌में इस कार्यके लिये थोड़े ही आया था कि केवल उदरपूर्ति करनेमें ही जीवन नष्ट कर दे। उसे जगत्‌का कल्याण अभीष्ट था, जगद्‌गुरु बनकर संसारके माया-मोहमें फँसे हुए जीवोंका उद्धार करना था। इसलिये ऐसी विद्यासे उसे कुछ प्रयोजन नहीं था जो केवल सांसारिक विषयोंका ज्ञान दे सकती है। वह उस पराविद्याका इच्छुक था, जिससे तत्त्व-ज्ञानकी प्राप्ति होती है। इस कारण गदाधरने कभी आजीविका चलानेवाली विद्याकी ओर रुचि नहीं की। वह प्राचीन सत्-शास्त्रोंमें वर्णित महापुरुषोंके चरित्रोंको ध्यानपूर्वक पढ़ता-सुनता था। जब कभी वह इन कथाओं-को गाँवके रहनेवाले लोगोंको पढ़कर सुनाता तो अत्यन्त प्रेममें मग्न होकर तन्मय हो जाता और अपने व्यक्तित्वको भी भूल जाता था। सुननेवालोंको इस नन्हें बालकके भावोंपर बड़ा आश्चर्य होता। वह सदा निर्भय रहता था। दूसरे बालक जहाँ जानेसे डरते वहाँ वह निडर होकर चला जाता। 'होनहार बिरवानके होत चीकने पात' इस उक्तिके अनुसार गदाधर बचपनसे ही अद्भुत चरित्रका बालक था, असाधारण प्रकृति और प्रिय-दर्शन होनेसे वह सभीके प्रेमकी सामग्री बन गया था।

पिताका परलोकगमन

[illegible] था कि एक शोकजनक

दुर्घटनाने सारे चटर्जी-परिवारको दुःखित कर दिया। सन् १८४३ में गदाधरके पिताको उदररोगने सताया, उनको भयानक संग्रहणी-रोग हो गया और उसी रोगने उनके प्राण हरण कर लिये। अन्त समय अपने इष्टदेव श्रीरघुवीरका पवित्र नाम उच्चारण करते-करते वह इस असार संसारसे विदा हो गये। इस दैवी आपत्तिसे शोकाकुल तो सारा ही कुटुम्ब था, परन्तु चन्द्रमणिके हृदयमें जो वेदना थी उसका वर्णन नहीं हो सकता। हिन्दू-महिलाके लिये एक पति ही सर्वस्व है, वही इष्टदेव है, वही जीवन-आधार है। हिन्दू-स्त्री बिना पतिके अपने शरीरको जीवित ही नहीं समझती। चन्द्रमणिने समस्त सुखोंको और वस्त्राभूषणोंको, जो कुछ थोड़े-बहुत उनके पास थे, तिलाञ्जलि दे दी और वह निरन्तर भगवत्-स्मरणमें अपना शेष जीवन बिताने लगीं। वह यही बाट देखती रहतीं कि शरीर छूटे तो प्रियतमसे मिलन हो। खुदीरामके स्वर्ग-वास होनेसे अब कुटुम्ब-पालनका सारा भार रामकुमारके सिर आ पड़ा। विधवा माताकी सेवा और भाइयोंको पढ़ा-लिखाकर योग्य बनाना उन्हींपर निर्भर करता था। गदाधरके चित्तमें भी पिताके देहान्तसे बड़ा शोक हुआ। वह कुछ अनमना-सा रहने लगा और प्रायः श्मशानमें या कहीं एकान्त स्थानमें जाकर ध्यान करने लगा। माताको शोकाकुल देखकर अब वह बहुत समय उनके पास ही रहा करता था। इससे चन्द्रमणिको बहुत धैर्य और सन्तोष मिलता था।

उपनयन-संस्कार

गदाधरकी आयु अब नौ वर्षकी हो गयी। इसलिये रामकुमार-ने उसके उपनयन-संस्कारके लिये प्रबन्ध करना शुरू किया।

क्योंकि ब्राह्मण-बालकके लिये इस आयुमें यज्ञोपवीत-संस्कार होना शास्त्रोंके आदेशानुसार परमावश्यक है। मित्रोंकी सहायतासे योग्य प्रबन्ध हो गया। संस्कार समाप्त होनेपर बालकको अपनी जातिकी किसी वृद्धा स्त्रीसे पहिली भिक्षा माँगनी होती है, इसलिये गदाधरसे भी पूछा गया कि तू किससे भिक्षा माँगेगा। उसने एक लुहारकी स्त्री 'धनी' का नाम ले दिया। ब्राह्मण-जातिके नियम-विरुद्ध इस बातको कौन मानने लगा था? किसीने गदाधरकी बात स्वीकार नहीं की। यद्यपि 'धनी' अपने सद्‌व्यवहार और धर्म-परायणताके कारण ग्राममें सब लोगोंकी माननीय थी, परन्तु शूद्रा होनेसे ब्राह्मणोंने गदाधरसे यह कह दिया कि तुम उससे भिक्षा नहीं ले सकते। इसपर गदाधर रूठकर कहीं जा छिपा और उसने अन्न-जल त्याग दिया।

उसका यह हठ देख रामकुमारने सान्त्वना देकर उसे सन्तुष्ट करनेके लिये उसकी बात स्वीकार कर ली। इस घटनासे गदाधरके उदारभाव और विशाल हृदयका परिचय मिलता है जो उसके भविष्य जीवनमें परिपक्व होता गया है। उपनयन-संस्कारके बाद अब गदाधरको कुलके इष्टदेव भगवान् श्रीरामचन्द्रकी पूजा करनेका अधिकार मिल गया। इससे वह बड़े चावसे प्रेमपूर्वक भगवान्‌की पूजा करने लगा। उसकी दृष्टिमें वह पाषाण-विग्रह नहीं था। वह उनको साक्षात् सृष्टिके कर्ता, पालक और संहारकर्ता परमेश्वर ही मानता था। घंटों उनके ध्यानमें बैठा रहता। प्रेमवश कई बार भगवान्‌ने उसे अपने दिव्य दर्शन भी दिये।

(३)

कौमारावस्था

एक समय कामारपूकुरमें एक यात्रामण्डली आयी। गदाधर इस समय बारह वर्षका हो गया था। लोगोंने भगवान् शिवका अभिनय कराना निश्चय किया। अभिनयका सब प्रबन्ध हो गया था कि अकस्मात् वह व्यक्ति, जिसे शिव बनना था, बीमार हो गया। इस कारण शिवका पार्ट करनेके लिये सर्वसम्मतिसे गदाधर ही योग्य समझा गया। उसको शिवरूपमें सजाया गया। सिरपर जटाजूट, अङ्गमें विभूति, हाथमें त्रिशूल, कमरमें कौपीन आदि धारण कर शिवके वेषमें जब वह मञ्चपर आया तो लोग उसे देखकर स्तम्भित हो गये। सबको वह साक्षात् महादेव ही जँचने लगा। गदाधर जब शिवरूप बनकर मञ्चपर खड़ा हुआ तब उसके हृदयमें शिवका अभिनिवेश हो आया, उसकी आँखोंसे

अश्रुधारा बहने लगी और समाधि-अवस्थामें अचेत होकर वह मञ्चपर गिर पड़ा। लोगोंको यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने उसे घर पहुँचा दिया। गदाधरकी इस प्रकारकी भावा-वस्था बचपनसे ही हो जाया करती थी जो आगे चलकर उसकी युवा और वृद्धावस्थामें क्रमशः प्रबल होती गयी। पहले तो उसकी माँ और स्वजनोंको इस भावावेशसे चिन्ता होती थी, परन्तु जब इससे गदाधरके शरीरमें कोई हानि प्रतीत नहीं हुई तब क्रमशः उनकी चिन्ता जाती रही। किसी भी देवताका आराधन करते या भजन सुनते ही उसकी बाह्य-चैतन्यता जाती रहती और वह तुरन्त ही अन्तर्मुख हो जाया करता। लोगोंके पूछनेपर कहता कि समस्त देवताओंके आकारके पीछे एक अखण्ड परमेश्वर विद्यमान है और उसी सत्यरूपका मुझे दर्शन होता है। गदाधरको जब कभी मौका मिलता, अपने मित्रोंको साथ लेकर किसी आमके बगीचे-में जाकर रामायण या महाभारतके किसी भागका खेल खेलता और भजन-संकीर्तन किया करता। भगवान् श्रीकृष्ण और श्रीमती राधाकी लीलाका अभिनय उसको सबसे अधिक प्रिय था। जब वह स्वयं श्रीकृष्ण बनकर गान करता या राधाका भाग लेता तो तुरन्त ही भावमें अन्तर्मुख हो बाह्यज्ञानशून्य हो जाया करता।

इस प्रकार उसका चित्त ज्यों-ज्यों भगवान्के अनन्त लीला-चिन्तनमें आसक्त होता गया, त्यों-ही-त्यों पढ़ने-लिखनेमें उसकी रुचि कम होती गयी। उसके भाई रामेश्वरका विवाह हो चुका था और वह बड़ी कठिनाईसे अपना निर्वाह करते थे। सर्वमंगला भी व्याही जा चुकी थी। बड़े भाई रामकुमारकी स्त्रीके पुत्र हुआ और [illegible] देहान्त हो गया। इधर

रामकुमारकी आजीविका भी कम हो गयी थी। चन्द्रमणिको फिर कष्टका सामना करना पड़ा। पुत्रवधूके घर रहनेपर वह गृहकार्यकी चिन्तासे मुक्त हो गयी थीं, परन्तु उसकी मृत्युसे अब घरका सारा भार फिर उन्हींपर आ पड़ा। इन दुर्घटनाओंसे गदाधरके चित्तमें संसारकी असारताका भान होने लगा। पठन-पाठन तो अब केवल नाममात्र ही रह गया था। वह अपना अधिक समय भगवत्-चिन्तनमें ही व्यतीत करने लगा। इसके बाद रामकुमार आजीविकाके निमित्त कलकत्ते चले गये और वहाँ संस्कृत-पाठशाला स्थापित कर कुछ धनोपार्जन करने लगे। इधर कामार-पूकुरमें रहकर गदाधर माँके गृहकार्यमें सहायता देता और माता तथा ग्रामकी स्त्रियोंको, जो गदाधरको बहुत प्यार करतीं और प्रति-दिन सन्ध्या-समय चन्द्रमणिके घर आया करती थीं, भजन सुना-सुनाकर आह्लादित किया करता था।

पहले कह आये हैं, कि गदाधरको श्रीराधा-कृष्णके अद्भुत प्रेम और माधुर्यका भाव बड़ा रुचिकर था। अब वह इसी भावमें निमग्न रहने लगा। समय-समयपर गोपी-भावमें प्रेम-निमग्न हो जाया करता था। कभी-कभी गोपी-वेष धारण कर गागर सिरपर रख तालाबमें जल भरने जाता और कभी राधाका भाव लेकर श्रीकृष्ण-विरहमें हृदय हिलानेवाला गान गाता, जिससे सुननेवालोंका हृदय करुणासे भर जाता था। अब उसकी रुचि पढ़नेसे बिल्कुल उठ गयी और उसने पाठशाला जाना छोड़ दिया।

भाईके साथ कलकत्तेमें

रामकुमार कलकत्तेमें विद्यार्थियोंको पढ़ाकर और एक देवालय-में पूजा-कार्य कर जो कुछ कमाते, उसीसे कुटम्बका निर्वाह हो

जाता था। एक बार जब रामकुमार मातासे मिलने कामारपुकुर आये तो उन्होंने गदाधरको पढ़ना छोड़कर बेकार फिरते देखा, इसलिये वह उसे कलकत्ते ले गये। उन्होंने विचार किया कि वहाँ यह अच्छी तरह संस्कृत भी पढ़ लेगा और साथ ही पाठशालाके कार्यमें भी सहायता मिलेगी। गदाधर भाईके साथ कलकत्ते आ गया और उन्हींके पास रहने लगा। एक दिन वह पाठशालाके बरामदेमें बैठा था, इतनेमें एक विद्यार्थी हाथमें कुछ पैसे और फल लेकर आया। गदाधरके पूछनेपर उसने कहा कि, 'पड़ोसके एक परिवारमें पूजन करानेसे उसे यह दक्षिणा मिली है।' गदाधरने कहा, 'बस, इतने वर्ष विद्याध्ययनका यही फल है?' इतना कहकर गदाधरने पुस्तक रख दी। इसी समयसे विद्योपार्जनसे उसका मन बिल्कुल हट गया। विद्यार्थियोंको पढ़ाकर और लोगोंके घरोंमें पूजाकार्य करके भी कलकत्तेमें रामकुमारकी आमदनी पर्याप्त नहीं थी, वह गदाधरको इसीलिये लाये थे कि वह अच्छी तरह पढ़-लिखकर कुछ कमाने लगे, जिससे कुटुम्ब-पालनमें सहारा मिले। परन्तु गदाधरकी रुचि विद्याध्ययनकी ओर न देखकर एक दिन रामकुमारने उससे कहा कि 'तुम्हें इस प्रकार समय नष्ट करना उचित नहीं, अब तुम बड़े हो गये हो, अच्छी तरह पढ़-लिखकर कुटुम्बका पालन-पोषण करना चाहिये। विद्या-लाभ करनेसे भविष्य-जीवन भी सुधरेगा और आनन्दसे आजीविका भी चलेगी।' गदाधरके मनपर इस बातका कुछ भी असर नहीं हुआ। उसने भाईसे कहा कि 'दादा! मुझे ऐसी विद्या पढ़नेकी इच्छा नहीं जो केवल पेट भरनेके लिये ही काममें आवे; मैं तो वह विद्या प्राप्त करना चाहता हूँ जिससे नित्य तृप्तिकी प्राप्ति हो।' रामकुमारने

निराश होकर गदाधरको इस विषयमें अधिक कहना बंद कर दिया। उनकी आजीविका दिनोंदिन घटती गयी, परन्तु श्रीरघुवीर-पर भरोसा करके वह अपना काम करते रहे। जब आर्थिक दशा बहुत शोचनीय हो गयी, तब भगवान्‌की कृपासे आप ही एक ऐसा बानक बना जिससे उनकी चिन्ता बहुत कुछ कम हो चली और गदाधरके जीवनका भविष्य अपूर्व सारगर्भित हो गया।

रानी रासमणिसे मुलाकात

कलकत्तेमें रानी रासमणि नामक एक धनी विधवा रहती थीं; उनके पास बहुत बड़ी सम्पत्ति थी। पतिके देहान्त होनेपर उन्होंने बड़ी योग्यतासे अपनी जायदादका प्रबन्ध किया। वह स्वभावसे ही परम उदार और दयाशीला थीं। उनकी स्वधर्ममें बड़ी निष्ठा थी। भगवती कालीमें तो उनकी अटल श्रद्धा और प्रेम था। रासमणिने बड़े उत्साहसे कालीजीका एक विशाल मन्दिर बनवाया, लाखों रुपये खर्च हुए। यह मन्दिर कलकत्तेके उत्तरकी ओर भागीरथीके तटपर है। यही स्थान श्रीरामकृष्णकी जीवन-लीलाका मुख्य केन्द्र है। मन्दिर बन गया; रानीको विशाल मन्दिरकी अपूर्व शोभा देखकर बड़ा आनन्द हुआ; परन्तु देव-मन्दिरमें प्राण-प्रतिष्ठा हुए बिना वह बिना जीवकी देह-सा था। इसीलिये प्रतिष्ठाकी परमावश्यकता थी। वेदमन्त्रोंद्वारा शास्त्रविधिसे बहुत-से विद्वान् ब्राह्मण कई दिनोंमें इस कार्यको सम्पन्न करते हैं। पर रानी जाति-से शूद्र थीं, अतः कोई भी ब्राह्मण इस कार्यके लिये तैयार नहीं हुआ। रानीको इससे बड़ी चिन्ता हुई; इस विपत्तिके समय रामकुमार-ने रानीकी सहायता की; उन्होंने शास्त्रोंके अनेक प्रमाण देकर ब्राह्मणोंको समझा-बुझाकर प्रतिष्ठा करानेके लिये सहमत कर लिया।

प्रतिष्ठा पूरी हो गयी। रानीने बड़े आनन्द और श्रद्धासे इस कार्य-को सम्पन्न किया। लाखों रुपये खर्च किये गये; प्रचुर दान दिया गया। रानीकी परम अभिलाषा पूर्ण हुई। अब एक अड़चन और आयी। प्रतिष्ठा तो हो गयी, परन्तु पुजारीका काम कौन करे? कोई भी ब्राह्मण इस कार्यको स्वीकार नहीं करता था। आखिर रामकुमारसे ही प्रार्थना की गयी कि वही इस कार्यको भी स्वीकार करें। रामकुमारने स्वीकार कर लिया और देवपूजनका भार अपने ऊपर लेकर काम करने लगे। गदाधर भी भाईके साथ प्रायः दक्षिणेश्वर जाया करता था। रानी राशमणिके जामाता मथुराबाबू बड़े श्रद्धालु और उदार सज्जन थे, वह गदाधरको प्रायः वहाँ देखा करते थे। उनका मन उसकी ओर बहुत आकर्षित हुआ और उन्होंने चाहा कि गदाधर भी रामकुमारके साथ पूजा-कार्यमें सहयोग दे। पहले तो गदाधर इन्कार करता रहा, परन्तु शेषमें रामकुमारके समझानेसे वह सहमत हो गया। अब वह बड़े प्रेमसे 'माँ काली' की सेवा करने लगा। वह ऐसी निष्ठा और तन्मयतासे भगवतीकी पूजा करता कि देखनेवाले लोग चकित हो जाते। गदाधर 'माँ काली' की मृन्मयी मूर्तिको साक्षात् चिन्मय आद्या शक्ति ही मानता था, उसके चित्तमें वह निर्जीव विग्रह नहीं थी। वास्तवमें अटल विश्वास ही सफलताका बीज होता है, बिना पूर्ण श्रद्धा और विश्वासके कोई भी कार्य पूरा नहीं हुआ करता। यह ठीक है कि विश्वास बड़े भारी पर्वतको भी अपनी जगहसे हिला सकता है। महान् पुरुषोंने जो कुछ प्राप्त किया है और जो कुछ कर दिखाया है वह उनके अपूर्व विश्वासका ही चमत्कार है।

साधनाका आरम्भ

गदाधरकी साधना यहींसे आरम्भ होती है और यहींसे अब हम उन्हें श्रीरामकृष्णके नामसे सम्बोधन करेंगे। अब वह तन-मनसे भगवती कालीकी सेवामें तत्पर हो गये। प्रातःकाल उठकर वह माँके लिये बगीचेसे उत्तम-उत्तम पुष्प चुनकर इकट्ठे करते और गंगाजल भरकर लाते। चन्दन घिसकर तैयार करते, कर्पूर आदि पूजाकी सारी सामग्री सजाकर मन्दिरमें रख देते। वह कालीविग्रह-को साक्षात् चिन्मय आद्या शक्ति ही समझते थे। इसलिये बड़े चाव और प्रेमसे माँकी सेवा किया करते थे। तत्त्वको न जानने-वाले श्रद्धाविहीन मनुष्य इस प्रकारके विश्वासको अन्ध-विश्वास कहते हैं, पर साथ ही, आश्चर्य है, कि वे भगवान्‌को सर्वव्यापक भी बतलाते हैं। जान पड़ता है कि उनका यह व्यापकताका भाव केवल कथन ही है; यदि इसमें विश्वास होता तो एक विग्रह ही क्यों, वे समस्त विश्वको ही भगवत्-सत्तासे पूर्ण समझते। आँखें चाहिये। आवश्यकता है अन्तर्दृष्टिकी। फिर तो सारा जगत् चिन्मय प्रतीत होगा, यह सकल दृश्य भगवान्‌की अचिन्त्य लीला जान पड़ेगा, वही विश्वत्राता सब समय, सभी ठौर खेलते दिखायी देंगे। सबसे पहले विश्वासकी जरूरत है। गुरु और शास्त्रमें श्रद्धा चाहिये। फिर कार्यमें तल्लीन हो जाना ही सफलता-

प्राप्तिका एकमात्र उपाय है। कोई भी कार्य किया जाय, वह इसी क्रमसे पूरा होता है। ऐसे श्रद्धालु मनुष्योंने ही कुछ सिद्धि प्राप्त की है, ऐसे ही महापुरुष जगत्‌के पथ-प्रदर्शक हो गये हैं। इसी विश्वासको लेकर श्रीरामकृष्णने भी साधन आरम्भ किया और 'माँ काली' की सेवा-पूजामें वह ऐसे निमग्न हो गये कि कभी-कभी तो बाह्यज्ञानके अभावसे वह पूजाका क्रम ही भूल जाते, कभी आरती करनेमें समयका विस्मरण हो जाता और घंटों आरती ही करते रहते। कभी माँको पुष्प समर्पण करते समय कालीका विग्रह सामनेसे अन्तर्हित हो जाता और अपने ही भीतर उसका अनुभव कर वह अपने ही सिरपर पुष्पाञ्जलि चढ़ा लेते। कभी ध्यानमें ऐसे तल्लीन हो जाते कि पूजा करना भूल जाते। इस प्रकारके आचरणोंसे अन्य ब्राह्मण पुजारी बहुत अप्रसन्न होते, वे सब रामकृष्णको धमकाते। रामकुमारको भी उनका यह आचरण अच्छा नहीं लगता, वह भी उन्हें समझानेका प्रयत्न करते। केवल रानी राशमणि और मथुराबाबू ही उनके इस भावको समझ सके थे। जब सब लोग उन्हें पागल समझकर घर भेज देनेको कहते तब रानी कहतीं कि 'रामकृष्ण भगवतीके प्रेममें पागल है, उसे यहाँ ही रहना होगा।' रानीकी ओरसे उन्हें पूरी स्वतन्त्रता दे दी गयी और वह अपने भावके अनुसार पूर्ववत् कार्य करते रहे।

हृदयराम

इस समय श्रीरामकृष्णकी फुफेरी बहिनका लड़का हृदयराम, जो उनका समवयस्क था, मन्दिरमें देवपूजाके लिये नियुक्त हो गया था। दोनोंमें आपसमें बड़ी प्रीति थी, बचपनसे ही साथ

रहनेके कारण परस्पर स्वाभाविक ही प्रेम-भाव था। हृदयराम अबसे बराबर श्रीरामकृष्णके साथ रहा और उसने उनके भविष्य जीवनमें बहुत सहायता की।

श्रीराधाकृष्णकी पूजा

एक समय श्रीराधाकृष्णके मन्दिरके पुजारीके हाथसे भगवान्‌की मूर्तिका चरण खण्डित हो गया। इसपर रानीको बड़ी चिन्ता हुई, क्योंकि भगवान्‌की मूर्तिका खण्डित हो जाना कुलके लिये अशुभ माना जाता है। विद्वान् पण्डितोंको बुलाकर उन लोगोंसे राय ली गयी। सबने एकमत होकर यही कहा कि इस मूर्तिको गंगामें बहाकर नयी मूर्तिकी स्थापना करनी चाहिये। रानी रासमणिका भगवान्‌की इस मूर्तिके प्रति बड़ा आदर और प्रेम था। इसलिये उन्होंने इस सम्मतिसे सन्तुष्ट न हो श्रीरामकृष्णसे पूछा। उन्होंने कहा कि 'यदि रानीके जामाताका पैर टूट जाय तो क्या रानी उनके पैरकी चिकित्सा न कर कोई दूसरा जामाता बना लेगी?' इस उत्तरसे सब विस्मित हो गये और यही निश्चय हुआ कि ठाकुरका चरण जोड़ दिया जाय और मन्दिरमें यही विग्रह स्थापित रहे। चरण जोड़नेका काम श्रीरामकृष्णके सुपुर्द किया गया, वह इस काममें बड़े निपुण थे। विग्रह जब ठीक करके दिखाया गया तो यह पता नहीं लग सका कि जोड़ कहाँ है। अबसे श्रीराधा-कृष्णकी पूजाका कार्य श्रीरामकृष्णको ही सौंपा गया और हृदयरामको रामकुमारकी सहायताका भार दिया गया।

श्रीरामकृष्ण अब राधा-गोविन्दके मन्दिरमें पुजारीका काम करने लगे। अन्य ब्राह्मणोंकी भाँति जातिका अभिमान उन्हें तनक

न गया था, इसीलिये प्रचलित जाति-व्यवस्थाके विरुद्ध वह शूद्रके देवालयमें भगवत्-सेवाके कार्यमें लग गये । देवालयकी अधिकारिणी रानी राशमणि बड़ी श्रद्धालु और भक्त महिला थीं । यद्यपि जातिकी शूद्रा थीं, परन्तु उदारचित्त, कोमलहृदय और भगवती कालीमें अनन्यभावसे अनुरक्ता थीं । ऐसी सुयोग्य देवीस्वरूपा महिलाके मन्दिरका जाति-अभिमानके कारण निरादर करना रामकृष्ण-जैसे विशालहृदय पुरुषके लिये असम्भव था । जो समस्त जगत्को परमेश्वरका ही रूप समझे, उसके हृदयमें इस प्रकारके क्षुद्र भाव कैसे स्थान पा सकते हैं ? महान् आत्माओंके भाव भी महान् होते हैं । रामदास, एकनाथ, कबीर, नानक, तुलसीदास, सूरदास आदि महापुरुषोंने जगत्के माया-मोहसे ग्रसित मनुष्योंके कल्याणार्थ अपने आदर्श जीवन तथा सार्वभौम उपदेशोंसे यह सिद्ध कर दिया है कि—

जात पाँत पूछे ना कोई । हरिको भजे सो हरिका होई ॥

—जो लोग जाति-अभिमानके नशेमें मतवाले होकर दूसरी जातिके लोगोंको घृणा-दृष्टिसे देखते हैं वे वास्तवमें धर्मके तत्त्वसे अनभिज्ञ हैं । घृणा, द्वेष और अभिमान जीवके महान् शत्रु हैं । ये मनुष्यको परमार्थ-साधनमें अग्रसर होने ही नहीं देते । जिन महानुभावोंके हृदयसे इन दुष्ट भावोंका सर्वथा वहिष्कार हो चुका है, वे ही सत्य-धर्मके अधिकारी कहे जा सकते हैं । जातिव्यवस्था समाजको नियमबद्ध रखने तथा परस्पर शान्तिस्थापन करनेके अभिप्रायसे ही निश्चित की गयी थी; व्यक्तिगत आध्यात्मिक उन्नतिसे इसका क्या सम्बन्ध ? अपने आत्माको बन्धनमुक्त करनेके साधनोंपर मनुष्यमात्रका समान अधिकार है । ब्राह्मण हो या शूद्र, क्षत्रिय हो

या वैश्य, धर्मपरायण वही कहा जा सकता है जो उदार हो, प्राणीमात्रसे आत्मवत् प्रीति रखता हो, अणु-अणुमें भगवान्का रूप—भगवान्की सत्ता समझकर सबका आदर करता हो। तुलसीदासजी एक जगह कहते हैं—

सीय राममय सब जग जानी। करौं प्रनाम जोरि जुग पानी॥

हमारे चरित्रनायक श्रीरामकृष्णके निर्मल हृदयमें जाति-अभिमानके ये संकुचित भाव कैसे रह सकते थे? वह तो विश्वभरको विश्वम्भरका ही स्वरूप मानते थे। इसी उदारताके कारण श्रीरामकृष्णको रानीके मन्दिरमें पूजाकार्य करनेमें ज़रा-सा भी संकोच नहीं हुआ। वह भगवान्की पूजा मन लगाकर भक्ति-भावसे करने लगे। महापुरुषोंमें यही विशेषता होती है कि वे जो भगवत्-कार्य प्रारम्भ कर देते हैं उसमें तल्लीन हो जाते हैं। वास्तवमें विना एकाग्रताके कोई भी कार्य सफल नहीं हुआ करता, मनोवृत्तियोंके बिखरे रहनेसे सभी काम अधूरे रह जाते हैं। श्रीरामकृष्ण राधा-गोविन्दकी प्रतिमामें साक्षात् चिन्मय, सर्वव्यापक परमात्माकी ही भावना करते थे। वह ध्यानकी मग्नतामें वहिर्ज्ञानशून्य घंटों निश्चेष्ट बैठे रहते; इस अवस्थामें वह अपूर्व ज्योतिका दर्शन करते, अपने चारों ओर देदीप्यमान प्रकाशके फैल जानेसे नानात्वके तिरोभावका अनुभव करते। जो लोग भगवान्के दर्शन करने मन्दिरमें आते, वे श्रीरामकृष्णके चेहरेपर चमकते हुए अद्भुत प्रकाश और उनकी ध्यानमग्न अवस्थाको देखकर चकित हो जाते।

काली-मन्दिरकी पूजा

रामकुमारको रामकृष्णके कार्यसे बड़ा सन्तोष था। वह समझने लगे कि अब रामकृष्ण देवार्चनका कार्य भलीभाँति करने

लगेगा और उन्हें गृहस्थीका प्रवन्ध करनेके लिये कुछ अवकाश मिल जायगा। वृद्धावस्थाके कारण उनका शरीर भी शिथिल होता जा रहा था, इसलिये वह चाहते थे कि रामकृष्णको काली-मन्दिर-की पूजाका भार सौंप दें। परन्तु विना दीक्षित हुए यह कार्य करना शास्त्र-विरुद्ध है; इसलिये उन्होंने एक भक्तिमान् दक्ष ब्राह्मण-से रामकृष्णको दीक्षित करा दिया। अब वह रामकृष्णको कभी-कभी भगवतीकी पूजामें नियुक्त कर दिया करते और स्वयं राधा-गोविन्दकी पूजा करने लगते। मथुरावावू रामकृष्णके पूजा-कार्यसे बड़े प्रसन्न थे। जब रामकुमारकी इच्छा घर जानेकी हुई, तो उन्होंने रामकृष्णको अपनी जगह नियुक्त कर दिया। 'हृदय' भी उनका सहायक रहता था। घर चले जानेके वाद रामकुमारका देहान्त हो गया। इस दुर्घटनासे रामकृष्णको अत्यन्त दुःख हुआ, क्योंकि पिताके देहावसानके उपरान्त वह अपने ज्येष्ठ भ्राताको ही पितातुल्य समझकर उनमें बड़ा प्रेम और आदर-भाव रखते थे। अब उनके चित्तपर जगत्के क्षणभंगुर होनेका भाव दृढ़तासे अङ्कित हो गया। इसलिये वह उस अजर-अमर वस्तुकी खोजमें दिन-रात लीन रहने लगे जो अपरिवर्तनशील, सदा एकरस और आनन्दमय है। एकाग्रचित्त हो भगवतीकी सेवामें ही अब वह अपना सारा समय व्यतीत करने लगे। दीक्षित होनेके वाद भगवती काली ही उनकी इष्टदेवी हो गयी। वह काली-विग्रहको निर्जीव पाषाणमूर्ति नहीं मानते थे, उनके विचारमें वह साक्षात् जगद्धात्री माँ ही थी। वही जगत्-पालक, वही जगत्-विनाशक शक्ति थी। उसीके चरणोंमें उन्होंने अपना तन-मन पूर्णतया अर्पण कर दिया था। छोटा वालक जिस प्रकार अनन्य भावसे माँसे ही प्रेम करता है,

उसीको एकमात्र आश्रय मानता है, दूसरेको जानता ही नहीं, उसी प्रकार रामकृष्णके हृदयमें अपनी माँ कालीके सिवा अन्य किसीके लिये स्थान नहीं था। संसारी मनुष्योंके समागमसे उन्हें बड़ी विरक्ति हो गयी और अपना समय एकान्त स्थानमें बिताना ही उन्हें प्रिय लगने लगा। वह निर्जन वनमें अथवा श्मशान-भूमिमें जाकर रातभर ध्यानमग्न रहा करते और जब सवेरे वहाँसे लौटते तो उनकी आँखें सूजी हुई देखकर लोगोंको बड़ी ही चिन्ता और आश्चर्य होता। 'हृदय' इसका कारण पूछता तो वह कुछ उत्तर न देते। उनके मौनसे 'हृदय' चिन्तित होकर इस भेदकी खोजमें लग गया। वह उनसे बड़ा प्रेम करता था, सदैव उनकी देख-भाल रखता था। रामकृष्णको खाने-पीनेकी भी सुध न थी, उसपर सारी रात विना सोये बाहर रहनेसे उनके स्वास्थ्यका विगड़ जाना अवश्यम्भावी था। इसलिये स्वास्थ्यबाधक रहस्यका पता लगानेके विचारसे एक रातको वह चुपचाप उनके पीछे हो लिया। आगे जाकर जब देखा कि वह घने जंगलमें घुस रहे हैं तो उसका साहस उस विकट जंगलमें घुसनेका न हुआ। वह पीछे ही ठहर गया और पत्थर फेंकने लगा जिससे रामकृष्ण डरकर बाहर निकल आवें। परन्तु उन्हें कुछ भी भय न लगा, वह रातभर वहीं रहे। प्रातःकाल जब लौटे तो 'हृदय' ने उनसे पूछा कि 'सारी रात जंगलमें क्या करते थे'? उन्होंने कहा कि 'वहाँ एक आँवलेका वृक्ष है, उसीके नीचे बैठकर ध्यान किया करता हूँ, वहाँ ध्यान खूब जमता है।' उसने उनसे बहुत कुछ निवेदन किया कि 'आप वहाँ जाना छोड़ दें, यहाँ मन्दिरमें ही बैठकर ध्यान किया करें।' परन्त वह किसीकी क्यों सनने लगे ?

नित्य आरती धुनमें मग्न रातभर वहां पड़े रहते। 'हृदय'ने जब समझा कि वह किसी प्रकार मानते ही नहीं तो 'हृदय' स्वयं एक रातको अत्यन्त साहसपूर्वक जंगलमें घुस गया। वह क्या देखता है कि रामकृष्ण आंवलेके पेड़-तले सारे कपड़े उतारकर बिल्कुल नंगे ध्यानमग्न बैठे हुए हैं। उसने उस समय उनसे पूछा कि 'चचा! यह क्या अवस्था है? इस तरह जनेऊ और कपड़े उतारे क्यों बैठे हो?' परन्तु वह ध्यानमें ऐसे तल्लीन थे कि उन्हें कुछ भी सुन न पड़ा। कुछ देर पीछे जब उन्हें चेत हुआ तो 'हृदय' ने फिर वही प्रश्न किया। तब वह बोले कि 'परमात्माका चिन्तन समस्त बन्धनोंको छोड़कर ही करना चाहिये। जन्म-कालसे आठ प्रकारके बन्धन जीवको जकड़े हुए हैं—घृणा, लज्जा, कुलाभिमान, विद्याभिमान, जात्यभिमान, भय, ख्याति और अहङ्कार। मैं प्रतिष्ठित घरानेका हूँ, ब्राह्मण हूँ, सब वर्णोंसे ऊँचा हूँ—माँका आराधन करनेके लिये इन सब कुभावोंका परित्याग कर देना उचित है। ध्यानके बाद मैं फिर कपड़े पहन लूँगा।' यह सुनकर 'हृदय' चुपचाप वापस चला आया।

सच्चे जिज्ञासु और मुमुक्षुके हृदयमें जब इस भावके साथ भगवत्प्राप्तिकी उत्कट इच्छा पैदा होती है तभी उस परात्पर सर्वान्तर्यामी प्रभुके दर्शन होते हैं, अन्यथा नहीं। हमलोग जन्मभर पूजा-पाठ, जप-ध्यानादिका ढोंग करते हैं परन्तु 'ढाकके वही तीन पात'—वाली कहावतके अनुसार हमें कुछ प्राप्त नहीं होता। कारण यही है कि मन विषय-वासनाओंसे ठसाठस भरा रहता है, भगवत्प्राप्तिकी लगन कैसे लगे? परिश्रम करनेका साहस नहीं, सहजमें ही सफलता चाहते हैं। सारा समय तो संसारके विषय-

भोगोंके चिन्तनमें बीतता है, घड़ी-आधघड़ीके लिये भगवत्-स्मरणके बहाने जब पूजामें बैठते हैं तो मन अपनी वही उधेड़-बुन लगाये रहता है। ऐसी अवस्थामें भगवदाराधन विडम्बना-मात्र नहीं तो और क्या है? मिथ्या मोह-मायासे वास्तवमें दुखी होकर मनुष्य जबतक श्रीरामकृष्णकी भाँति आर्त्त हो एकाग्रचित्तसे भगवान्‌को नहीं पुकारता, तबतक वह आशुतोष पतितपावन प्रभुका सान्निध्य नहीं प्राप्त कर सकता। रामकृष्णके हृदयमें तो माँके दर्शनकी ही एकमात्र लालसा थी। वह खाना, पीना, सोना सब भूल गये थे! उन्हें तो थी बस, रात-दिन उन्हींके मिलनकी चिन्ता, उन्हींकी मनमोहनी छटाके दर्शनकी चाह! रामप्रसाद, कमलाकान्त-जैसे भक्तोंके भजन सुनते ही उनकी आँखोंसे अश्रुधारा बह निकलती और वह आर्त्त हो पुकारने लगते 'माँ! तू कहाँ है? मुझे दर्शन क्यों नहीं देती? रामप्रसाद इत्यादिको तूने दर्शन दिया, क्या मैं ही तेरा अभागा पुत्र हूँ जो मुझसे छिपी रहती है? मुझे जगत्‌के वैभवकी कुछ भी चाह नहीं है, मैं तो एकमात्र तुझे ही चाहता हूँ।' इस तरह रोते-रोते जब सारा दिन बीत जाता तो फिर व्यथित हो चिल्ला उठते 'माँ! इस थोड़े-से जीवनका एक दिन और बीत गया, परन्तु तेरा दर्शन नहीं हुआ।' फिर वह कालीकी प्रतिमाके सामने बैठकर कहते 'माँ! क्या तू सत्य है या मनुष्योंकी केवल कल्पना है? यदि तू वास्तवमें सत्य है तो मुझे तेरा दर्शन क्यों नहीं होता? जीवन बीत रहा है, दिनोंदिन मैं मृत्युकी ओर जा रहा हूँ, परन्तु तुझसे नहीं मिल पाता। शास्त्र कहते हैं कि जीवनका एकमात्र उद्देश्य भगवान्‌का साक्षात्कार करना ही है, नहीं तो जीवन वृथा है। माँ! उस जीवनसे क्या

लाभ जो तेरे भवभयहारी दर्शनके विना नष्ट हो जाय ?' ऐसे विचारोंके निरन्तर प्रवाहसे उनके मनमें विरहाग्नि प्रचण्ड हो उठती थी। वह बेचैन और पागल-से होकर महान् मनोवेदनाका अनुभव करते थे। उन्हें भगवान्के अस्तित्वमें रत्तीभर भी अविश्वास न था, यह शङ्का ही न थी कि न जाने वह हैं वा नहीं। वास्तवमें इस पथमें एक विश्वास ही सफलताका कारण है, जिसे विश्वास है वह सब कुछ कर सकता है।

भगवतीके वियोगकी असह्य वेदनाकी चर्चा करते हुए वह प्रायः कहा करते थे कि 'उस विरहकी दुःख-दशाका वर्णन नहीं किया जा सकता। मेरी ठीक वैसी ही अवस्था है, जैसी उस चोरकी होती है जो एक बार घरमें घुस बैठा हो, पासकी ही दूसरी कोठरीमें धनके होनेका उसे निश्चय हो और बीचमें एक पतली-सी दीवार पड़ती हो। उस समय चोरके मनमें केवल धनके पानेकी ही लगन रहती है! उसे नींद कहाँ, चैन कहाँ? जिस प्रकार प्रत्येक सम्भव उपायोंसे वह उस भीतको तोड़नेकी चेष्टा करता है, उसी प्रकार मैं जानता हूँ कि माँ जो सच्चिदानन्दमयी है, मेरे अत्यन्त निकट है, इस अवस्थामें मैं उससे मिले विना कैसे निश्चिन्त रह सकता था? उसे ढूँढ़नेके लिये मैं पागल हो गया।' इस अवस्थामें वह खाना, पीना और सोना बिल्कुल भूल गये थे। 'हृदय' कभी-कभी उनके मुँहमें दूध डाल दिया करता और उसे पीनेके लिये उन्हें बाध्य करता था, माँकी ही चिन्तामें वह बहिर्ज्ञानशून्य हो गये थे। भगवतीकी आरतीके समय घण्टे-घड़ियालके शब्द थोड़ी देरके लिये उन्हें कभी-कभी सावधान कर

देते परन्तु फिर अत्यन्त वेदनाके कारण अपना सिर धरतीपर पटक-पटककर वह कहते 'माँ! अभीतक नहीं आयी?' फिर यह विचारते कि शायद मुझमें जाति-अभिमान बाकी है जो माँसे मुझे अलग किये हुए है। इस हेतु उसे जड़से उखाड़नेके लिये वह पड़ोसमें रहनेवाले किसी अन्त्यज-जातिके घरमें घुसकर उसके दालानको झाड़ूसे बुहारकर साफ करते। वापस आकर फिर माँसे कहते कि 'माँ! अब भी तू नहीं आयी?' इसके उपरान्त यह सोचते कि शायद काञ्चनकी वासना मनसे सर्वथा नष्ट न होनेके कारण ही माँसे वियोग हो रहा है। अतः इसे जड़से उखाड़नेके अभिप्रायसे वह गङ्गातटपर जा एक हाथमें रेणुका और दूसरे हाथमें पैसा लेकर दोनोंको जाँचते और कहते कि 'मिट्टीसे ही सब भोज्य-पदार्थ पैदा होते हैं और धनसे उन पदार्थोंको मोल लेते हैं। यदि मिट्टीसे पदार्थ न उपजें, तो मोल ही किसे लें? इसलिये मिट्टी ही धनसे श्रेष्ठ है; मिट्टीको फेंकना और धनको चाहना बड़ी मूर्खता है।' फिर वह दोनोंको गङ्गामें फेंक देते। इन विचारोंसे उनके हृदयमें काञ्चनकी लालसा सर्वथा निर्मूल हो गयी। यहाँतक अवस्था हुई कि यदि उनके अङ्गसे कोई धातुकी वस्तु स्पर्श कर जाती तो वह अङ्ग ऐंठ जाता! लोभ भी नष्ट हुआ पर फिर भी माँका दर्शन नहीं हुआ, यह चिन्ता करते-करते विचार उठा कि शायद काम-वासना ही माँसे वियोगका कारण हो। इसे नष्ट करनेके लिये वह गङ्गा-तटपर जा फूट-फूटकर रोने लगे। घंटों रोये, यहाँतक कि अश्रुप्रवाहके जलने हृदयको कामवासनासे भी सर्वथा शून्य बना दिया। फिर भी माँका दर्शन नहीं हुआ।

(५)

साधना समाप्त

श्रीरामकृष्णके हृदयमें माँ कालीके दर्शनकी अत्यन्त तीव्र उत्कण्ठा जाग्रत् हो उठी। अब वह उन्हींकी चिन्तामें मग्न हो गये और यहाँतक मग्न हुए कि भगवतीकी पूजाके नियम और विधि भी भूल गये। आरती आरम्भ करते तो आरती ही करते रह जाते। किस कार्यमें कितना समय व्यतीत हो चुका इसकी सुधि भी उन्हें न रहती। पुष्पार्पण करते समय ऐसे भेदभावशून्य हो जाते कि पुष्पोंको अपने मस्तकपर चढ़ा लेते। कभी नैवेद्य भेंट देकर भगवतीके मुँहकी ओर इस भावनासे टकटकी लगाये

बैठे रहते मानो वह उन्हें वास्तवमें भोजन करते हुए देख रहे हैं। साधारण मनुष्योंकी दृष्टिमें रामकृष्णके ये कार्य पागलपनके अतिरिक्त और कुछ भी न थे, परन्तु मथुराबाबू उनके इन प्रेमोन्मत्त भावों-पर मुग्ध थे और उनकी बड़ी प्रशंसा किया करते थे। जब अपने हृदयकी वेदना श्रीरामकृष्णके लिये अत्यन्त असह्य हो गयी तो वह एक दिन अत्यन्त कातर और करुणस्वरमें माताके सम्मुख जा रुदन करते हुए बोले—'माँ! तू मेरे सम्मुख क्यों नहीं आती? तेरे दर्शन बिना यह जीवन ही व्यर्थ है। पल-पल यों ही बीतते चले जा रहे हैं। इस जीवनसे ही क्या लाभ जो इसमें तेरी दिव्य ज्योतिके दर्शन न हुए।' इन्हीं विचार-तरङ्गोंमें मग्न थे कि अचानक उनकी दृष्टि मन्दिरके एक खड्गके ऊपर जा पड़ी। झट् उसे उठाकर ज्यों ही उन्होंने अपना शिर काटना चाहा कि तत्क्षण ही उन्हें माँ भगवतीकी अपूर्व ज्योतिके दर्शन हुए। राम-कृष्ण निश्चेष्ट हो पृथ्वीपर गिर पड़े। इस मनोवाञ्छित दर्शनका वृत्तान्त वह स्वयं इस प्रकार कहा करते थे कि उस अपूर्व अवसर-पर घर, द्वार, मन्दिर आदि समस्त द्रष्टव्य वस्तुएँ मेरी आँखोंके सामनेसे लोप हो गयी थीं और उनके स्थानपर एक अपूर्व आलोक, एक अनन्त, अखण्ड एवं देदीप्यमान दिव्य ज्योति दीख रही थी। जहाँतक दृष्टि जाती थी वहाँतक उसी ज्योतिका अनन्त सागर तरङ्गित होता हुआ मेरी ओर बढ़ रहा था। देखते-देखते उस ज्योतिने मुझे आच्छादित कर मानो अपनेमें लीन कर लिया और मैं मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। कुछ समय बाद जब मुझे अपनी सुधि हुई तो मैं 'माँ! माँ!' पुकारने लगा।

जगदम्बिकाका यह अपूर्व दर्शन पाकर श्रीरामकृष्णके हृदय-कपाट खुल गये। जगत्के समस्त जीव-जन्तु उन्हें कठपुतली-सरीखे प्रतीत होने लगे। उनकी दृष्टिमें सत्य वस्तु यदि कोई थी तो वही जगदम्बिका थीं। इस दिव्य-दर्शनके बादसे वह एक अबोधशिशु-से बन गये। जैसे बालक केवल अपनी माताहीमें ममता रखता है, उसीसे वार्तालाप करके सन्तुष्ट होता है, जगत्की किसी वस्तुको वह माँके समान प्रिय नहीं समझता, बस, ठीक यही अवस्था, यही मनोभावना 'माँ काली' के प्रति श्रीरामकृष्णकी हो गयी। माँ कालीके अतिरिक्त शेष समस्त जगत् उन्हें तुच्छ दिखायी देने लगा। इस घटनाके बाद, उनके मनकी सारी शङ्काएँ निवृत्त हो गयीं। श्रुति कहती है—

तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरा-
स्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम्॥
भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे॥
(मुण्डक० २। २। ८)

वह माँका दर्शन ध्यानावस्थामें सदैव पाते थे, परन्तु इतनेहीसे उन्हें तृप्ति नहीं होती थी। उनकी इच्छा यह थी कि माँकी वह अलौकिक छटा निरन्तर अखण्डभावसे सब अवस्थाओंमें उनकी दृष्टिमें समायी रहे और उन्हें सदैव जगदम्बाका दर्शन मिलता रहे। वह रात-दिन माँसे यह प्रार्थना करते थे कि 'माँ! तेरा वियोग मेरे लिये असह्य है।' उनका यह दृढ़ विश्वास था कि किसी-न-किसी दिन दयामयी उनकी पुकार सुनकर इच्छा पूर्ण करेंगी। उनकी नित्यकी केवल यही एक प्रार्थना थी कि, 'माँ!

मेरे अहङ्कारको समूल नष्ट करके मेरा व्यक्तित्व अपनेमें लीन कर ले, जिससे मेरा ममत्व नष्ट हो और मैं पूर्णतया तेरा ही हो जाऊँ।' इस प्रकार पूर्ण आत्मसमर्पण कर वह सन्तुष्ट हो गये। उनका कहना था कि माँ मुझसे जो कहलाती हैं वही कहता हूँ, जो कराती हैं वही करता हूँ। 'मैं नहीं, मैं नहीं, एक तू ही तू ही है'—यही उनके हृदयोद्गार थे। जगज्जननीकी ज्योतिमें रामकृष्णने अपने आत्माको इतना तल्लीन कर दिया कि वर्षों उन्हें जगत्‌के अस्तित्वका कुछ भान ही नहीं रहा। उनके आठों पहर ध्याना-वस्थामें ही व्यतीत होने लगे। खाने-पीने और पहनने-ओढ़नेकी सारी सुध-बुध जाती रही। खाने बैठते तो उन्हें यह सुधि नहीं रहती कि कितना खा गये। जब कोई दूसरा कहता कि बहुत खा गये तो खाना बन्द करते। सूर्यास्त और सूर्योदय कब हुआ इसका भी ध्यान उन्हें नहीं रहता था। कभी-कभी तो अवस्था यहाँतक पहुँच जाती कि श्वासोच्छ्वास ही बन्द हो जाता था। जब पार्श्ववर्ती लोग उन्हें सावधान और सतर्क करते तो श्वास चलने लगता। इस बहिर्ज्ञानशून्यावस्थामें उन्हें निरन्तर तैलधारावत् जगन्माताका साक्षात् अनुभव था। मन्दिरस्थित भगवतीकी प्रतिमा उन्हें पाषाणमय या मृन्मय नहीं दीखती थी। अब तो मूर्तिके स्थानमें उन्हें साक्षात् जगज्जननी दिखायी पड़ती थीं। पूजाक्रम और पूजाविधिकी बात अब जाती रही, माताके प्रति बालक-जैसा सहज सरल व्यवहार होने लगा। जैसे बालक माताके निकट मान-मर्यादाका कोई विचार नहीं रखता, ठीक वैसे ही वह भी निःसंकोच व्यवहार करते थे। विधि-निषेधके गोरखधन्धेमें जकड़े

हुए मन्दिरके अन्य कर्मचारी इस आत्मीय तल्लीनताको नहीं समझते, फलतः उनकी दृष्टिमें रामकृष्णका यह व्यवहार निरा पागलपन था। उन लोगोंने मथुराबाबूसे इस बातकी शिकायत की कि कालीकी पूजा-अर्चा अब विधिपूर्वक नहीं होती। मथुराबाबूने कहा कि 'तुम उन्हें कुछ न कहना, मैं स्वयं आकर देख लूँगा।' एक दिन जब वह चुपकेसे मन्दिरमें गये तो रामकृष्णको भगवतीकी पूजामें इतना तल्लीन पाया कि वह अवाक् होकर देखते ही रह गये। इतना और ऐसा प्रेमभाव उन्होंने कभी नहीं देखा था। धीरेसे वह बाहर निकल आये। रामकृष्णको अपनी तन्मयतामें उनके आने-जानेकी कुछ खबर न थी। तत्पश्चात् मथुराबाबूने सबको सचेत कर दिया कि इनकी पूजा-विधिमें कोई किसी प्रकारकी बाधा न डाले। वह अपने-आपको धन्य मानते थे और अपने भाग्यकी प्रशंसा करते थे। वह समझते थे कि रामकृष्ण-सरीखे अनुपम महात्माके संसर्गसे काली-मन्दिर बनानेका उद्योग सफल हो गया।

जब प्रेमाभक्तिसे हृदय परिपूर्ण हो जाता है उस समय वैधी भक्तिके विधि-विधानके लिये स्थान नहीं रह जाता। एक दिनकी बात है, श्रीरामकृष्ण भगवतीके सामने स्तोत्रपाठ कर रहे थे, तन्मयता इतनी बढ़ गयी थी कि उन्हें बाहरका कुछ ज्ञान ही न था। आँखोंसे अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। इस दशामें लोग उन्हें पागल समझकर बाहर ले जानेकी चेष्टा कर ही रहे थे कि इतनेमें अकस्मात् मथुराबाबू आ पहुँचे। उन लोगोंकी इस धृष्टताको देखकर उन्होंने तुरन्त सबको उनका शरीर स्पर्श

करनेसे रोक दिया और स्वयं अत्यन्त श्रद्धा और विनयके साथ उनकी इस अद्भुत अवस्थाको रोमाञ्चित होकर देखते रहे। जब रामकृष्णको चेतनता प्राप्त हुई और उन्होंने मथुराबाबूको अपने सम्मुख खड़ा देखा तो वह पूछने लगे कि 'महाशय! मुझसे कुछ अनुचित व्यवहार तो नहीं हुआ?' मथुराबाबूने कहा—'भगवन्! मैं आपकी शरीररक्षाके लिये ही खड़ा था।'

श्रीरामकृष्णके ऊपर रानी राशमणिका आदर और प्रेम मथुराबाबूसे भी अधिक था। वह सदैव उनके अलौकिक ज्ञान और भक्तिपर मुग्ध रहती थीं। रामकृष्ण भी रानीको सदा सम्मान-दृष्टिसे देखते थे। कभी रानीसे कुछ भूल-चूक होती तो वह निःसंकोच उन्हें फटकार देते थे। एक दिन रानी श्रीकाली-जीकी पूजा कर रही थीं। उनका ध्यान माताकी आराधनासे हटकर किसी सांसारिक विषयकी ओर लग गया। अपनी अन्त-र्दृष्टिसे रानीकी इस मानसिक अवस्थाको जानकर रामकृष्णने उनकी पीठपर ऐसा हस्त-प्रहार किया कि रानी सावधान होकर फिर भगवतीके ध्यानमें मग्न हो गयीं। यह घटना देखकर 'हृदय' बड़ा भयभीत हो गया और सोचने लगा कि न जाने इस बातको लेकर रानी क्या करेगी। कहीं ऐसा न हो कि चचा इस आजीविकासे वञ्चित कर दिये जायँ। उधर रानीका विश्वास था कि भगवती कालीने ही रामकृष्णद्वारा प्रहार करके मेरे हृदयको पवित्र किया है। 'हृदय' बेचारेको इस रहस्यका क्या पता था!

जब रानी राशमणिका देहान्त हो गया और मथुराबाबू सारी सम्पत्तिके स्वामी हुए तब एक दिन उनकी इच्छा हुई

कि श्रीरामकृष्णको एक बड़ी सम्पत्ति सौंप दी जाय; किन्तु जब मथुराबाबूने रामकृष्णके सम्मुख अपना यह प्रस्ताव उपस्थित किया तो वह बोले कि 'क्या तुम मुझे संसारके मायाजालमें फँसाना चाहते हो ?' इसी प्रकार एक दिन मथुराबाबूने उन्हें एक बहुत बढ़िया ऊनी शाल लाकर दिया। रामकृष्णने उसे रख तो लिया किन्तु उसका व्यवहार वह बड़ी लापरवाहीसे करने लगे। इसपर 'हृदय' से न रहा गया। उसने कहा, यह शाल बहुत मूल्यवान् है, इसको सावधानीसे रखना चाहिये। रामकृष्णने उत्तर दिया कि 'क्या मैं अपने मनको भगवान्‌से हटाकर इस तुच्छ शालके पीछे लगाऊँ और अपना जीवन नष्ट करूँ ?' इतना कहकर उन्होंने शालके एक कोनेको अग्निसे जला दिया और फिर 'हृदय' से बोले कि 'अब इसकी बहुमूल्यता जाती रही, इसलिये अब बिना संकोच लापरवाहीसे इसे बरतूँगा।'

मथुराबाबू श्रीरामकृष्णके प्रेमोन्मत्त-भावको बड़े सम्मान और श्रद्धाकी दृष्टिसे देखा करते थे। उनके निर्मल और अद्वितीय चरित्रको देखकर उनकी श्रद्धा उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती थी। जब कभी हृदयमें किसी बातपर शङ्का उत्पन्न होती तो वह जी खोलकर उस विषयपर श्रीरामकृष्णसे विनीत वाद-विवाद करते थे। स्वामी विवेकानन्द महाराजकी शिष्या अमेरिकन महिला श्रीमती निवेदिता अपनी अंग्रेजीकी एक पुस्तकमें एक स्थानपर लिखती हैं—'एक बार मथुराबाबूने कहा कि परमात्मा अपने रचित नियमोंमें परिवर्तन नहीं कर सकते।' इसपर ठाकुर (श्रीरामकृष्ण) ने कहा कि 'जो भगवान् निर्माण करता है वह परिवर्तन भी कर सकता है।' मथुराबाबूने कहा कि 'क्या परमात्मा लाल फूलवाली लतामें श्वेत पुष्प उत्पन्न कर सकते

हैं ?' श्रीरामकृष्णने कहा कि 'वह सब कुछ कर सकते हैं ।' उस दिन तो मथुराबाबूको इस बातपर विश्वास न हुआ, परन्तु दूसरे ही दिन जब लाल फूलोंसे युक्त एक लतामें खिले हुए एक श्वेत पुष्पको लाकर श्रीरामकृष्णने दिखाया तो वह मन्त्र-मुग्ध-से हो गये ।

श्रीरामकृष्णको अब हम 'ठाकुर' ही लिखेंगे । क्योंकि उनके शिष्य-वर्ग तथा अनुयायियोंमें यही नाम प्रचलित है । यद्यपि ठाकुरको भगवतीका साक्षात् दर्शन हो चुका था, परन्तु उनकी साधना बराबर जारी रही । उनका उद्देश्य विश्वात्मा भगवान्के विविध स्वरूपोंको स्वयं अनुभव करनेका था । सार्वभौम धर्मका स्पष्ट समन्वय कर देना ही ठाकुरके जीवनका सारगर्भित महत्त्व था । प्रत्येक मुख्य धर्मका गूढ़ तत्त्व समझनेके लिये उन्होंने कई प्रकारकी साधनाओंका साधन किया और उनमें उन्हें सफलता भी प्राप्त हुई । वह निश्चित रूपसे यह जान गये कि यद्यपि धर्म-पथ अनेक हैं, किन्तु लक्ष्य सबका एक ही है । भगवान् श्रीकृष्णके शब्द हैं—'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्' जिस साधकको जो मार्ग प्रिय है वही उसके लिये उपयुक्त है । एकमात्र अपने ही धर्मको सर्वोत्तम समझकर दूसरे धर्म तथा उनके अनुयायियोंसे घृणा करना धार्मिकता नहीं, प्रत्युत हठधर्मी है, उदारता नहीं, किन्तु संकुचित हृदयके क्षुद्र भाव हैं । ठाकुरने सर्वप्रथम हिन्दू-धर्मके पञ्चधा भक्ति शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य भावोंकी साधना उन्हींकी रीति-नियमानुसार पृथक्-पृथक् की और उनकी सत्यताका अनुभव एवं उनका रसास्वादन किया । दासभावकी साधनामें महावीर हनूमान्‌जीको उन्होंने अपना आदर्श बनाया । यही कारण था कि उन्होंने भगवान्

श्रीरामचन्द्रकी सेवा करनेके अभिप्रायसे अपना चरित्र हनूमान्जीके ढंगपर बनाकर भगवान्का साक्षात् दर्शन किया। उनका सारा व्यवहार ही हनूमान्जीके समान हो गया। वही फल-मूलका आहार और वैसे ही उन्होंने वृक्षोंपर अपना निवासस्थान बना डाला। वह कभी इधर-उधर कूदते-फाँदते कभी कपड़ेकी एक पूँछ बना लेते। इस प्रकार समस्त व्यवहार वानरका-सा बनाकर 'रघुवीर! रघुवीर!' पुकारा करते थे। इस अनन्यभक्तिके कारण उन्हें जगन्माता जानकीके साक्षात् दर्शन हुए। जाग्रत्-अवस्थामें ही खुली आँखोंके सामने उन्हें एक अपूर्व ज्योतिर्मयी देवीके दर्शन हुए। यह जानकर कि जगज्जननी ही *सीता*रूपमें प्रकट हुई हैं, प्रेमसे विह्वल हो जैसे ही उनके चरणोंमें दण्डवत् करनेको नतमस्तक हुए कि वह ज्योति उन्हींके शरीरमें लीन हो गयी। वह अचेत होकर पृथ्वीपर गिर पड़े।

सच्चे और अनन्यमनसे जो जिस भावसे भगवान्की आराधना करता है, उसीसे उसे सफलता मिलती है। किसी कार्यमें जबतक अपने समस्त जीवनको सर्वांशमें समर्पण नहीं किया जाता तबतक सफलताकी आशा करना दुराशामात्र है। महान् पुरुषोंकी महत्ता और उनकी सफलताका रहस्य इसी बातमें है कि वे अपने कार्योंके समारम्भमें एकाग्रता और तन्मयता-को प्रधान स्थान देते हैं। इस प्रकार श्रीरामकृष्णने पञ्चधा भक्तिके प्रत्येक रसका उन्हींकी रीति और भावोंसे अनुभव किया। सन् १८५५ से १८५८ तक साधनाका यह चार वर्ष श्री-रामकृष्णके जीवनमें बड़े ही महत्त्वका समय है।

(६)

माँ ! माँ !

पहले इस बातका उल्लेख किया जा चुका है कि मथुराबाबूको ठाकुरमें अगाध श्रद्धा और प्रेम हो गया था। यहाँतक कि वह उन्हें गुरु मानने लगे थे। उग्र साधनाओंके निरन्तर अभ्याससे ठाकुरका शरीर दुर्बल होता जा रहा था, अतएव मथुराबाबू उनकी इस शारीरिक अवस्थाको देखकर चिन्तित रहते थे। वह समझते थे कि नैष्ठिक ब्रह्मचर्यके कारण ही उनका शरीर क्षीण हो रहा है। अपने स्वभावकी सरलता और ठाकुरकी हितकामनासे प्रेरित होकर मथुराबाबूने उनके ब्रह्मचर्यको खण्डित करना ही उपयुक्त समझा, परन्तु प्रत्यक्ष कोई समुचित उपाय न देखकर वह बिना जनाये ही ठाकुरको एक दिन एक वेश्याके घर ले गये। श्रीरामकृष्णको वहीं वेश्याओंके निकट छोड़कर मथुराबाबू चुपके-से दूसरे कमरेमें जा बैठे। अपने-आपको इस अवस्थामें पाकर ठाकुर शिशुभावसे माँ! माँ! पुकारने लगे। इस अद्भुत भावको देखकर उन युवती वेश्याओंके हृदयपर बड़ा विचित्र प्रभाव पड़ा। वे उनके चरणोंपर गिरकर क्षमाकी भिक्षा माँगने लगीं! उनकी इन सब बातोंको सुनकर मथुराबाबूसे अब न रहा गया। वह तुरन्त वहाँ जा पहुँचे और जो विचित्र दृश्य उन्होंने वहाँ देखा उससे चकित हो गये

एवं शीघ्रतापूर्वक ठाकुरको साथ लेकर बाहर निकल आये। इस अद्भुत मनोनिग्रह और भगवद्भक्तिको प्रत्यक्ष अपनी आँखोंसे देखकर वह ठाकुरका अधिकाधिक सम्मान करने लगे। यथार्थ बात तो यह है कि जिसने भगवान्‌की ही शरण ले ली है, जो अपना सर्वस्व उनके चरणोंमें समर्पित कर चुका है और जिसने उस पतितपावन प्रभुको ही अपना एकमात्र आधार मान लिया है, उस अनन्यभक्तको चिन्ता क्या है ? सर्वाधार जगदीश्वर सदैव अपने सच्चे भक्तोंकी रक्षा करते हैं। वह अहैतुक कृपासिन्धु हैं, अपने आश्रितोंको कभी कुमार्गकी ओर जाने नहीं देते। हाँ, भक्तके हृदयमें परमात्मापर अटल विश्वास और आत्मसमर्पणकी सच्ची भावना होनी चाहिये। बस, फिर कुछ चिन्ता नहीं। अनन्यभक्त सब कुछ जगदात्माको सौंपकर निर्द्वन्द्व हो जाता है। उसे किञ्चिन्मात्र भी चिन्ता नहीं रह जाती। फारसीके एक कविकी सूक्ति है—

सुपुर्दम ब तो मायये खेशरा, तो दोनी हिसाबे कमो बेशरा।

अर्थात् हे भगवन् ! मैं तो अपना सर्वस्व तुझे सौंप चुका हूँ। अब तू ही उसकी कमी-बेशीका लेखा-जोखा कर।

उन्हीं दिनों ठाकुरके चचेरे भाई हलधर आजीविकाके लिये दक्षिणेश्वर आये। वह वैष्णव थे, विद्वान् थे, वेदान्त आदि शास्त्रोंको भलीभाँति समझते थे। मथुराबाबूने आग्रह करके उन्हें काली-मन्दिरका पुजारी नियुक्त तो कर दिया, किन्तु हृदयमें वैष्णवभाव विद्यमान रहनेके कारण उन्हें शक्तिपूजामें आनन्द नहीं आता था। फलतः कुछ दिनों बाद उन्हें राधागोविन्दके मन्दिरका पूजा-कार्य सौंपा गया। हलधरने बहुतेरे शास्त्रियोंकी भाँति कोरी

विद्या ही पढ़ी थी। उन्हें शास्त्रोंके सिद्धान्तका कुछ भी अनुभव न था। वेदान्तके 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' इत्यादि मन्त्रोंको अपने जीवनमें चरितार्थ करनेका उन्होंने कभी प्रयत्न नहीं किया था। प्राचीन रूढ़ियोंमें फँसे रहने और संकुचित भावोंमें बँधे रहनेके कारण वेदान्तके उदार और गम्भीर आशय हलधरके जीवनको उन्नत और परिष्कृत न बना सके थे। दक्षिणेश्वरमें प्रतिदिन भूखे एवं दरिद्र भिक्षुकोंको भोजन कराया जाता था। एक दिनकी बात है, ठाकुरने उन भिखारियोंको नारायण-रूप समझकर प्रीतिपूर्वक उनका उच्छिष्ट भोजन कर लिया। इसपर हलधर बहुत क्रोधित हो उठे। वह रामकृष्णसे कहने लगे कि 'तुम जातिसे च्युत हो गये। अब तुम्हारी सन्तानोंका विवाह आदि भी कोई न करेगा।' ठाकुरने कुछ तीखे स्वरसे कहा—'दुष्ट! तू सर्वदा 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' की रट लगाये रहता है। दूसरोंको भी यही उपदेश दिया करता है। क्या तू समझता है कि मैं भी ऐसे ही मिथ्याचार और कपटका व्यवहार करके लोगोंको तो जगत्की निस्सारता समझाऊँ और स्वयं सन्तान भी उत्पन्न करता रहूँ? धिक्कार है तेरी ऐसी विद्यापर!'

माँके चरणोंमें श्रीरामकृष्णकी अलौकिक भक्ति, अनन्य प्रेम और अद्भुत श्रद्धा देखकर हलधरको भी अब उनपर बड़ी श्रद्धा होने लगी। यह श्रद्धा कभी-कभी यहाँतक बढ़ जाती कि उनमें सनातन ब्रह्मका ही आभास उन्हें दिखायी देने लगता। परन्तु जब कभी उनको अपने शास्त्र-अध्ययन और पाण्डित्यका अभिमान हो जाता तो श्रद्धाके वे भाव नष्ट हो जाते और ठाकुरके प्रति पुनः पूर्ववत् अश्रद्धा उत्पन्न हो जाती थी। हलधर

कहने लगते थे कि 'ब्रह्म' बुद्धिगम्य वस्तु नहीं और इसलिये रामकृष्णके लिये ब्रह्मदर्शन एक असम्भव बात है। इन बातोंको देख-सुनकर ठाकुरके मनमें यह दृढ़ निश्चय हो गया कि वास्तवमें ग्रन्थोंके अध्ययनसे मनकी ग्रन्थियाँ सुलझती नहीं, बल्कि उलटी उलझती जाती हैं।

विवाह

सन् १८५५ ई० में श्रीरामकृष्णने दक्षिणेश्वर ठाकुरबाड़ीमें पूजा-कार्य स्वीकार किया था। इसके एक वर्ष बाद उन्हें भगवतीका साक्षात्कार हुआ जिससे उनका जीवन-स्रोत दूसरी ही ओर प्रवाहित हो चला और वह सदैव भगवद्भक्तिमें प्रमत्त-से होकर बाह्यज्ञानशून्य रहने लगे। रामकृष्णकी माता चन्द्रमणिको जब अपने पुत्रकी इस दशाका समाचार लोगोंसे ज्ञात हुआ तो वह बहुत चिन्तित हुईं। वह घंटों अपने कुलदेवकी आराधना करतीं और भगवान्‌से उनका शुभ फल चाहती थीं। निदान माताकी ममता पुत्रके प्रति इतनी प्रबल हो उठी कि उसने रामकृष्णको बुलवा भेजा। माताका आदेश पाकर ठाकुर तुरन्त कामारपूकुर चले आये। वहाँ भी उनकी वही अवस्था रही। यह देखकर माता और बड़े भाई रामेश्वरको बड़ी चिन्ता हुई। ग्रामके लोगोंने समझा कि हो-न-हो रामकृष्णको किसी पिशाचने ग्रस लिया है। अतएव गाँवके सयानोंकी झाड़-फूँक भी करायी गयी, किन्तु फल कुछ न हुआ। भला, भगवत्-प्रेमोन्मत्तको ये जादू-टोने क्या लाभ पहुँचा सकते हैं? भक्तके लिये तो एकमात्र भगवान् ही सयाने वैद्य हैं।

उन्हींके दर्शनसे उसे शान्ति और सुखकी प्राप्ति होती है। एक फारसीके कविकी कितनी सुन्दर उक्ति है—

अज सरे बालीने मन बरखीज ऐ नादां तबीब।
दर्दमन्दे इश्करा दारूं बजुज दीदार नेस्त॥

'अरे मूर्ख वैद्य! उठ जा मेरे सिरहानेसे। प्रेमके बीमारके लिये प्यारेके दर्शनके अतिरिक्त और कोई औषध ही नहीं है।'

कामारपूकुरमें भी ठाकुर सदैव अनमने-से रहा करते थे। घरके किसी काममें उनका मन नहीं लगता था। अपना अधिकांश समय श्मशानमें या कहीं एकान्त निर्जन स्थानमें जाकर बिताते और ध्यानमग्न हो बैठे रहते थे। न कभी किसीसे मिलते-जुलते और न घरपर ही ठहरते थे। यह अवस्था अधिक दिनोंतक न रही, इसमें परिवर्तन हुआ और वह अब शान्तचित्त रहने लगे। गृह-कार्यमें भी माताका हाथ बँटाने लगे। उनकी चञ्चलता और हँसी-मजाकका पूर्व-स्वभाव भी लौटने लगा। इस परिवर्तनसे माता चन्द्रमणिकी चिन्ता कुछ कम तो अवश्य हुई, किन्तु फिर भी वह सदा सन्दिग्ध ही रहा करती थीं। ग्रामके बड़े-बूढ़ोंकी सम्मतिसे यह निश्चय किया गया कि श्रीरामकृष्णका विवाह कर देना चाहिये। गृहस्थीका भार आ पड़नेपर वह स्वयं संसारके धन्धोंमें चित्त देने लगेंगे। इस विचारसे वधूकी खोज होने लगी, किन्तु किसी सम्भ्रान्त और कुलीन परिवारने उनकी निर्धनताके कारण उन्हें अपनी कन्या देना उचित न समझा। दूसरा एक कारण यह भी था कि उनकी उदासीनता और उन्मत्त अवस्थाकी बात आसपासके गाँवमें खूब फैल चुकी थी। तब भला कोई अपनी कन्या उन्हें क्यों

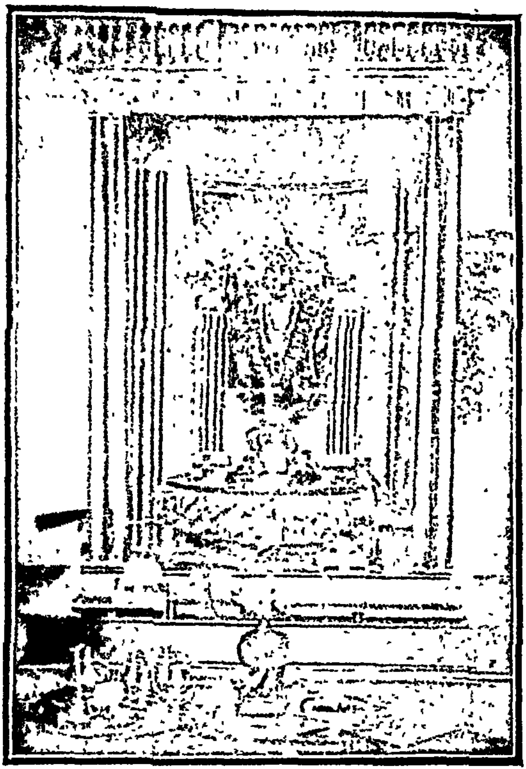

श्रीदक्षिणेश्वरी काली

(परमहंस श्रीरामकृष्णकी इष्टदेवी)

माता शारदामणि

देता ? चन्द्रमणि तथा रामेश्वर इस बातसे चिन्तित रहने लगे। माता और बड़े भाईकी इस चिन्ताका कारण जब रामकृष्णको मालूम हुआ तो उन्होंने कहा कि 'इस कामारपूकुर ग्रामसे तीन मील दूर जयरामवटी गाँवमें रामचन्द्र मुखोपाध्यायकी कन्या मेरी धर्मपत्नी होगी, वहीं जाओ।' रामेश्वर जयरामवटी गाँवमें गये और वहाँ जानेपर रामचन्द्र मुखोपाध्यायने अपनी पञ्चवर्षीया कन्याका विवाह रामकृष्णके साथ करना स्वीकार कर लिया। बहुत साधारण रीतिसे विवाहोत्सव समाप्त हुआ। धनाभावके कारण चन्द्रमणिके पास अपने गहने तो थे नहीं, उन्होंने एक धनसम्पन्न पड़ोसीसे गहने माँगकर वधूको पहना दिये थे। अब चन्द्रमणिको यह चिन्ता हुई कि ऐसी सुकुमार बालिकाके शरीरसे गहने उतारकर किस प्रकार पड़ोसीको वापस दिये जायँ। इस कार्यका भार ठाकुरने स्वयं अपने ऊपर लिया और रात्रिमें सोती हुई वधूके शरीरपरसे धीरे-धीरे एक-एक कर सारे गहने उतार लिये। प्रातःकाल उठने-पर बहूने जब अपने अङ्गोंपर गहनोंको न देखा तो वह सिसक-सिसककर रोने लगी। सासने बड़ी कठिनाईसे बहूको यह कहकर शान्त किया कि गदाधर (ठाकुर) तुम्हें बहुत-से गहने देंगे। बाल्यावस्थामें वस्त्राभूषणोंमें रुचि रहना स्वाभाविक है, परन्तु शारदामणि (रामकृष्णकी धर्मपत्नी) की यह लालसा आगे चलकर सर्वथा नष्ट हो गयी थी। वह स्वयं कहा करतीं कि 'ठाकुरके ऐसे कितने ही मारवाड़ी भक्त थे जो कभी-कभी दाल-चावल आदि बहुत-से खाद्य पदार्थ लाया करते थे। एक दिन एक मारवाड़ी सज्जन कपड़ेमें बाँधकर तीन हजार रुपये लाये और उन्हें ठाकुरको भेंट करना चाहा। ठाकुरने उन रुपयोंको यह कहकर लौटा दिया

कि मुझे इनकी आवश्यकता नहीं। 'माँ' शारदामणिके पास ले जाओ। वह रुपये लेकर मेरे पास आये और उसे स्वीकार करनेके लिये प्रार्थना करने लगे। ठाकुर भी साथ आये थे। वह भी कहने लगे कि यह धन क्यों नहीं ले लेती ? इससे गहने-कपड़े वनवा सकती हो। उनका यह कहना केवल मेरी परीक्षाके लिये ही था। मैंने उत्तर दिया कि 'मुझे अब वस्त्राभूषणोंकी आवश्यकता नहीं। मैं रुपये लेकर क्या करूँगी ?'

श्रीरामकृष्णका विवाह शास्त्रानुसार केवल एक संस्कारमात्र ही था। प्रत्येक द्विजको गर्भाधानसे लेकर मरणपर्यन्त दश संस्कार करने होते हैं और धर्मशास्त्रके आज्ञानुसार विवाह-संस्कार भी उनमेंसे एक है। ठाकुरने भी इन नियमोंका पालन किया था। गीतामें भी भगवान् कहते हैं—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥

प्राचीन ऋषियोंने हिन्दूमात्रके लिये इन संस्कारोंकी स्थापना करके वास्तवमें बड़ा ही उपकार किया है। यथाविधि इन नियमों-से संस्कृत होकर मनुष्यका जीवन परम धार्मिक बन जाता है, मानो गर्भाधानसे ही हमारे अङ्गोंमें धर्म-विद्युत् भरी जाती है और वही शेष अवस्थामें परिपूर्ण होकर जगत्के दिग्-दिगन्तोंमें अपनी ज्योति छिटकाती रहती है। जबसे हमारे यहाँ इन संस्कारोंका लोप होना प्रारम्भ हुआ तभीसे मनुष्य-जीवन धर्म-विरोधी बनता जा रहा है और शारीरिक एवं

मानसिक कष्टोंकी वृद्धिका यह भी एक कारण बन गया है। ठाकुरने अपना विवाह कर हमारे सम्मुख यह आदर्श उपस्थित किया है कि संस्कारोंके नियम बड़े महत्त्वके हैं। यद्यपि विवाहसे उन्हें कुछ भी प्रयोजन न था, कामवासनाकी तृप्तिकी किञ्चिन्मात्र भी आवश्यकता न थी, फिर भी मनुष्योंके कल्याणकी बात ध्यानमें रखकर यह सब कुछ करना उन्होंने उचित समझा। काम-चेष्टाके वशीभूत होकर ठाकुरका अपनी धर्मपत्नीसे जीवनपर्यन्त कभी भी सहवास नहीं हुआ। यह स्त्रीमात्रको 'माँ' हीका रूप मानते थे। एक बार ठाकुरके कतिपय मित्रोंने उनसे पूछा कि तुम भार्यासे पति-पत्नी-भावका व्यवहार क्यों नहीं करते? सन्तानोत्पादन करके ब्राह्मणधर्मका पालन करो। रामकृष्णने उत्तर दिया कि—'यदि मैं अपने वीर्यसे सन्तान उत्पन्न करूँ तो स्वभावतः ही उनपर मेरा ममत्व होगा। मैं चाहता हूँ कि बिना किसी भेदभावके समस्त संसारके बच्चोंको अपने ही बच्चे समझूँ।'

गृहस्थाश्रमका आदर्श बड़ा ऊँचा है। गृहस्थियोंको अपना जीवन जगत्-सेवामें अर्पण कर देना चाहिये, जिससे हृदय विस्तृत होकर समस्त संसारमें अपने ही आत्माका दर्शन होने लगे। भारतके सद्गृहस्थवृन्द! श्रीरामकृष्णको अपना आदर्श बनाकर यथाशक्ति उनके सन्मार्गका अनुसरण करो। विवाहको केवल कामपिपासाकी तृप्तिका साधन मानकर जीवन नष्ट करना बुद्धिमानी नहीं है। अपने जीवनप्रवाहको महान् आदर्शकी ओर मोड़ दो। इससे तुम्हारे आत्माका विकास होगा। आहार, निद्रा और मैथुनादिमें ही इस अमूल्य जीवनको नष्ट-भ्रष्ट कर देनेसे न तो तुम्हारा ही कल्याण होगा और न जगत्का ही। चारों आश्रमोंको

शास्त्रानुकूल रीतिसे निभा ले जाना ही मनुष्योंके कल्याणकी कुञ्जी है। ठाकुरने तुम्हें शिक्षा देनेके ही अभिप्रायसे चारों आश्रमोंके नियम यथाविधि पालन किये और अपने पवित्र जीवनसे भक्ति, ज्ञान और वैराग्यके जीते-जागते रत्न संसारके उपकारार्थ छोड़ गये।

शारदामणिको ठाकुरने बड़ी सावधानीके साथ स्वयं शिक्षा दी थी, जिसके फलस्वरूप उनका जीवन इतना उन्नत बना कि वह वास्तवमें ठाकुरकी सहधर्मिणी और जीवन-सहचरीका यथार्थ पद प्राप्त कर सकीं। इन पति-पत्नीका महान् आदर्श गङ्गा-यमुनाके सङ्गमकी भाँति अनेक जीवोंका उद्धार करनेवाला है। यद्यपि इन दोनों पति-पत्नीके प्राकृत संसर्गसे कोई सन्तान न थी, परन्तु जगत्के सब बच्चोंको अपनी ही सन्तान समझकर ये सदैव उनके कल्याणके इच्छुक थे। विवाहित होते हुए भी उनकी तरह नैष्ठिक ब्रह्मचर्यका पालन करना इस समय असम्भव प्रतीत होता है, किन्तु शास्त्रानुसार नियमपूर्वक व्यवहार करनेसे धीरे-धीरे काम-वासनाका निरोध किया जा सकता है। यही गृहस्थका आदर्श है। ठाकुरके देहावसानके बाद भी देवी शारदामणि जीवनपर्यन्त भक्त-समुदायको शान्ति प्रदान करती रहीं। यही नहीं, वरं उन्होंने कितने ही मुमुक्षु स्त्री-पुरुषोंको स्वयं दीक्षित कर कृतार्थ किया।

पुनः कलकत्तेमें

विवाहके बाद श्रीरामकृष्ण लगभग डेढ़ वर्षतक कामारपूकुरमें रहकर फिर दक्षिणेश्वर चले गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने काली-मन्दिरका पूजा-कार्य आरम्भ किया। पहले वह खूब स्वस्थ हो गये थे, किन्तु पूजा-कार्य आरम्भ करते ही चित्तविह्वलता और प्रेमोन्मादने उन्हें फिर आ घेरा। उनके मनमें निरन्तर भगवतीके दर्शनकी ही अभिलाषा बनी रहती और वह आर्त्तचित्त हो कहा करते—'माँ! मुझे सुख या धन-सम्पत्तिकी कुछ भी लालसा नहीं, केवल तुझसे ही मिलनेकी उत्कण्ठा है। तू दया कर अपने इस बच्चेको दर्शन दे।' इस प्रेमाभक्तिकी तीव्रताके कारण वह निरन्तर ध्यानावस्थित रहते और रात-दिन इसी प्रकारकी प्रार्थनाएँ किया करते। माँके विरहजन्य दुःखका कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि उनके अङ्ग-प्रत्यङ्गमें जलन उत्पन्न होने लगी। पहलेकी भाँति फिर अनिद्रा-रोगने घर दबाया। शरीरकी जलन और दाहकी शान्तिके लिये जब वह घंटों जलमें खड़े रहते अथवा सम्पूर्ण शरीरमें चन्दनका लेप करते, तब कहीं उन्हें कुछ चैन मिलता था। यह अवस्था देखकर मथुराबाबूने फिर वैद्यसे उनकी चिकित्सा करानी शुरू की किन्तु उससे कुछ भी लाभ न हुआ। उन्हीं दिनों २९ फरवरी सन् १८६१ ई० को रानी राशमणिका देहान्त हो गया और भगवतीमें अत्यन्त प्रेम होनेके कारण उन्हें माँ भगवतीका साक्षात् दर्शन भी अन्तसमयमें हो गया। रानी राशमणिने प्रेमानन्दका अनुभव करते हुए इस जगत्‌को छोड़ दिया।

भैरवी ब्राह्मणी और तान्त्रिक साधना

रानीके देहावसानके वाद मथुरावावू ही समस्त सम्पत्तिके उत्तराधिकारी बने । ठाकुरमें उनकी श्रद्धा दिनोंदिन वढ़ती गयी । वह सब तरहसे उनकी सेवामें तत्पर रहा करते थे । ठाकुरके सरल स्वभाव और हृदयकी पवित्रताका उनपर वड़ा प्रभाव पड़ता था और यही कारण था कि ठाकुरकी आज्ञाका पालन करनेमें मथुराबाबू अपना सौभाग्य मानते थे । एक दिन प्रातः-काल श्रीरामकृष्ण भगवतीकी पूजाके लिये वगीचेमें फूल चुन रहे थे । उनकी दृष्टि गङ्गा-तटकी एक नौकापर जा पड़ी, जिस-परसे एक स्त्री उतर रही थी । स्त्रीके पैर नंगे थे । शरीरपर गेरुआ वस्त्र था । खुले हुए केश पीठपर लहरा रहे थे । उसका शरीर सुडौल तथा उसकी मुखाकृति वड़ी ही सुन्दर थी । स्त्रीको देखते ही ठाकुरने फूल तोड़ना छोड़ दिया और अपने कमरेमें जा बैठे । कमरेमें 'हृदय' को बुलाकर कहा—देखो, गङ्गाकिनारे एक संन्यासिनी आयी है, उसे मेरे पास ले आओ । उस स्त्रीको अपने बुलाये जानेपर तनिक भी सन्देह या आश्चर्य न हुआ । वह तुरन्त 'हृदय' के साथ आयी और कमरेमें प्रवेश करते ही वह रामकृष्णसे कहने लगी—'बच्चा ! तू यहाँ है ? मैं तुझे गङ्गाके किनारे ढूँढ़ती-ढूँढ़ती थक गयी । इतना तो मुझे मालूम था कि तू कहीं गङ्गाके किनारे रहता है, किन्तु किस स्थानविशेषमें रहता है यह न जान पायी थी । इतने दिनोंके बाद आज तू यहाँ मिला ।' ठाकुरने कहा, 'माँ ! तू मुझे कैसे जानती है ?' (बात यह थी कि ब्राह्मणीका घर भी दक्षिणेश्वरमें ही था । उसका नाम तो योगेश्वरी था, किन्तु दक्षिणेश्वरमें लोग उसे 'ब्राह्मणी' कहकर

पुकारा करते थे ।) ब्राह्मणीने कहा—'बेटा ! महामायाकी कृपासे मुझे तीन व्यक्तियोंसे मिलनेके लिये आदेश प्राप्त हुआ था । उनमें दोसे तो मैं मिल चुकी हूँ, आज तुझ तीसरेसे मिलनेका अवसर भी प्राप्त हो गया । ब्राह्मणी और रामकृष्णका व्यवहार परस्परमें माँ-बेटेका-सा हो गया । एक दिन रामकृष्णने अपनी साधनाका विस्तृत वर्णन सुनाते हुए ब्राह्मणीसे पूछा—'माँ ! मुझे लोग पागल समझते हैं । क्या मैं सचमुच पागल हूँ ?' ब्राह्मणीने कहा—'तुझे कौन पागल कहता है ? तू तो महामायाके प्रेममें पागल है । इस अवस्थाका नाम पागलपन नहीं । यह तो 'महाभाव' की अवस्था है ।' ब्राह्मणी बड़ी विदुषी थी । उसने शास्त्रोंके कितने ही श्लोक सुनाकर अपने कथनकी पुष्टि की और रामकृष्णको सान्त्वना दी । तबसे वह सन्तुष्ट रहने लगे । इससे पूर्व उन्हें अपने ही व्यवहारोंसे शङ्का होने लगी थी कि कहीं सचमुच यह पागलपन ही तो नहीं है, किन्तु ब्राह्मणीके वाक्योंसे उनका पूरा समाधान हो गया ।

दक्षिणेश्वरमें ब्राह्मणी भैरवी नामसे भी पुकारी जाती थी । एक दिन सन्ध्या समयकी बात है, भैरवीने अपने इष्टदेव श्रीरघुवीरको भोग लगानेके लिये भोजन बनाया और उन्हें भोग लगाकर उनकी मूर्तिके ध्यानमें निमग्न हो गयी । इतनेमें ही ठाकुर भी अपने भावमें विभोर हुए वहाँ आ पहुँचे और भैरवीद्वारा अर्पित भोग पाने लगे । भैरवीने जब आँख खोली तो रामकृष्णको भोजन करते देखा । भैरवीकी प्रसन्नताकी सीमा न रही, क्योंकि जो दृश्य वह ध्यानमें अनुभव कर रही थी, आँख खोलनेपर साक्षात् वही सामने दीख पड़ा । इधर महाभावमें मस्त ठाकुरको जब कुछ बाह्यज्ञान हुआ तो वह अपने इस व्यवहारपर लज्जित

हुए। उन्होंने भैरवीसे कहा कि 'मुझे कुछ पता नहीं लगता कि मैं इस प्रकारका व्यवहार क्यों कर बैठता हूँ।' भैरवीने कहा— 'बेटा! तेरे भीतर जो भगवान् हैं वही ऐसा करते-कराते हैं। मैं ध्यानावस्थामें यह सब घटना देख रही थी, आज मेरी पूजा सफल हुई।' यह कहकर उच्छिष्ट भोजनको प्रसाद समझकर भैरवीने खा लिया।

ब्राह्मणीने तन्त्र-शास्त्र और वैष्णव-ग्रन्थोंका खूब अध्ययन किया था। वह इससे पहले भी कुछ दिनोंतक दक्षिणेश्वरमें रह चुकी थी। उन दिनों ठाकुर उससे विविध आध्यात्मिक विषयोंपर घंटों वार्तालाप किया करते थे। ब्राह्मणी श्रीरामकृष्णके समस्त प्रश्नोंका भलीभाँति समाधान कर दिया करती थी। दक्षिणेश्वरमें कुछ दिन ठहरकर ब्राह्मणी वहाँसे दो मीलकी दूरीपर गङ्गाकिनारे एक घाटपर रहने लगी। वह प्रतिदिन दक्षिणेश्वर आती थी और कभी-कभी ठाकुर भी उससे वार्तालाप करनेके लिये उसके स्थानपर जाया करते थे। ब्राह्मणीका श्रीरामकृष्णके साथ पुत्रभाव था। वह उच्च कोटिकी वैष्णव और भक्त थी।

ठाकुरकी अद्भुत अवस्था और मनोभावको देखकर ब्राह्मणीको यह विश्वास हो गया था कि यह उच्चतम भूमिकामें स्थित हैं। ब्राह्मणीका यह निश्चय देखकर सभी लोग ठाकुरको बड़े आदर और श्रद्धा-भक्तिकी दृष्टिसे देखने लगे। ब्राह्मणी और श्रीरामकृष्णका पारस्परिक प्रेम इतना बढ़ गया कि अन्तमें श्रीरामकृष्णने उसे अपना गुरु मान लिया। ब्राह्मणीके आज्ञानुसार वे तान्त्रिक साधनामें प्रवृत्त हुए और शीघ्र ही उसमें सिद्धि भी प्राप्त कर ली। साधारण मनुष्य जिन साधनाओंको वर्षोंमें भी पूरा नहीं कर सकते उन्हें श्रीरामकृष्णने कुछ दिनोंके अभ्याससे ही सिद्ध कर लिया। योगकी सिद्धियाँ प्राप्त हो जानेपर योगी प्रकृतिके

वशमें नहीं रहता। वह महाशक्तियोंका स्वामी बन जाता है। इसलिये जगज्जननीने एक समय रामकृष्णको ध्यानावस्थामें इन सिद्धियोंसे सावधान रहनेका उपदेश दिया। उसी दिनसे ठाकुर सिद्धियोंको घृणाकी दृष्टिसे देखने लगे और अपने सब अनुयायियों-को भी यही शिक्षा देने लगे।

तान्त्रिक सिद्धियोंके प्राप्त हो जानेपर श्रीरामकृष्णके शरीरमें एक अद्भुत सौन्दर्यका प्रादुर्भाव हुआ। उनके शरीरका रंग सुनहरा हो गया। सुनहरा भी ऐसा हुआ कि उनकी बाँहके सुवर्ण-कङ्कणका और उनके शरीरका रंग एकमें मिल जाता था। लोग इस सौन्दर्यपर चकित थे—मुग्ध थे। श्रीरामकृष्णने इस सौन्दर्यको छिपा देने और आन्तरिक सौन्दर्य प्रदान करनेके लिये भगवतीसे प्रार्थना की, तदुपरान्त वह सुन्दरता लुप्त हो गयी और शरीर पहले-जैसा साँवला हो गया। इन्हीं दिनों उन्हें भगवतीका पूर्ण साक्षात्कार हुआ और उनसे लाभ उठानेके लिये प्रतिदिन कितने ही लोग उनके पास आने-जाने लगे।

संत-समागम

दक्षिणेश्वरका काली-मन्दिर एकान्त तथा पवित्र स्थानमें है। गंगासागर और पुरीकी यात्रा करनेवाले बहुत-से साधु, वैरागी और गृहस्थलोग मार्गमें विश्राम लेनेके लिये यहाँ ठहरा करते थे। उन दिनों उधर रेलगाड़ी नहीं जाती थी। यात्री मार्गमें विश्राम करते हुए यात्रा किया करते थे। ऐसी ही किसी यात्रामें एक दिन एक वैष्णव साधु वहाँ आये। एक कमण्डलु और एक पुस्तकके सिवा उनके पास और कुछ भी न था। साधु नित्य उस पुस्तककी पूजा करते और कभी-कभी उसे पढ़ा भी करते थे।

एक दिन ठाकुरने उनसे पुस्तक दिखानेका आग्रह किया। पुस्तक देखनेपर मालूम हुआ कि उसके प्रत्येक पृष्ठपर केवल दो शब्द 'ॐ राम' बड़े-बड़े लाल अक्षरोंमें लिखे हुए हैं। इसका कारण पूछनेपर साधुने बतलाया कि अनेक वेद-वेदाङ्गों और शास्त्रोंको पढ़नेसे क्या लाभ है? केवल भगवान्का नाम-स्मरण करना ही पर्याप्त है। वेदों और शास्त्रोंमें जो कुछ भरा हुआ है वह एक ही परमात्माके भिन्न-भिन्न नामोंकी भिन्न-भिन्न व्याख्याएँ हैं। नाम और नामीमें कुछ भेद नहीं। यही कारण है कि मैं एक नामसे ही सन्तुष्ट हूँ। इसी प्रकार एक दिन एक और साधु आये; उनके चेहरेसे दिव्य ज्योति छिटकती थी। वह बिना कारण घंटों मुसकराते रहते। प्रातःकाल या सन्ध्या-समय जब कभी वह बाहर निकलते तो आकाश, गङ्गा और वृक्षोंकी सुन्दरतापर मोहित होकर कभी जोर-जोरसे हँसते और कभी नृत्य करने लगते थे। वह कहा करते 'प्रभो! धन्य तुम और धन्य तुम्हारी अद्भुत लीला। अहा! यह जगत् कितना सुन्दर है!'

एक दिनकी बात है, केश और नख बढ़ाये, धूलमें सने, भूत-से बने, फटी-पुरानी गुदड़ी पहने एक साधु काली-मन्दिरमें आये और भगवतीके सामने खड़े होकर ऐसे अद्भुत भावसे स्तोत्र पढ़ने लगे कि सुननेवालोंके रोंगटे खड़े हो गये। फिर वह भिखारियोंके साथ भोजन करने गये। किन्तु उनकी इस भयावनी दशाको देख किसीने उन्हें पंक्तिमें नहीं बैठने दिया। जब सब लोग खा चुके और जूठी पत्तलें बाहर फेंक दी गयीं तो देखा गया कि एक पत्तलके बचे अन्नको एक कुत्ता खा रहा है और कुत्तेके गलेमें प्रेमके साथ अपनी बाँहें डालकर वह साधु भी

उसी पत्तलमें खा रहे हैं। कुत्ता उनके साथ चुपचाप खा रहा था मानो दोनों बड़े पुराने मित्र हैं। यह दृश्य देखकर श्रीरामकृष्णने 'हृदय' से कहा कि यह महात्मा पागल नहीं हैं। यह परम ज्ञान-प्राप्तिके बादकी अवस्था है। इतनेमें खा-पीकर वह साधु चल पड़े। 'हृदय' उनके पीछे दौड़ा। साधु फाटकके बाहर निकल गये थे। पीछे-पीछे जाते हुए 'हृदय' ने कहा, 'महाराज! मुझे कुछ ऐसा उपदेश देते जाइये जिससे मेरा कल्याण हो।' पहले तो साधु कुछ न बोले; परन्तु 'हृदय' के बहुत आग्रह करनेपर साधुने कहा कि 'जब तुझे नालीके गंदे पानी और गंगा-जलमें कुछ भी भेद न मालूम होगा तब ब्रह्मज्ञान प्राप्त होगा।' 'हृदय' उनसे कुछ और भी उपदेश सुनना चाहता था, इसलिये उनका पीछा नहीं छोड़ता था। यह देखकर साधुने ईटका एक टुकड़ा उठाकर 'हृदय' को मारना चाहा। इसपर 'हृदय' वापस लौट आया। साधु कहाँ चले गये—इसका कुछ भी पता न लगा।

दक्षिणेश्वरके इस अनुभवी महापुरुष श्रीरामकृष्णके पास नाना मत-मतान्तरके अनुयायी, विद्वान्, पण्डित और भक्त आया-जाया करते। उनकी अद्भुत स्थिति देख उन्हें परमात्माका अनन्य प्रेमी समझते और उनके सारगर्भित उपदेशोंसे लाभ उठाया करते थे। श्रीरामकृष्ण भी जो जिस मतका होता उसे उसीके अनुकूल शिक्षा देते और तदनुरूप साधन बतलाकर उसे सफल-मनोरथ करते थे। बर्दवानके तत्कालीन विख्यात पण्डित पद्मलोचन, श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुरके पिता श्रीदेवेन्द्रनाथ ठाकुर और ब्रह्मसमाजके प्रवर्तक बाबू केशवचन्द्र सेन आदि अनेक विद्वान् श्रीरामकृष्णके पास आया करते थे।

(८)

रामलला

सन् १८८४ ई० में दक्षिणेश्वरमें एक साधु आया। वह श्रीरामका बड़ा भक्त था। उसने अपने इष्टदेवका नाम 'रामलला' रख छोड़ा था और उनकी धातुमयी मूर्ति सदैव अपने पास रखता एवं नित्य अत्यन्त प्रेमके साथ उनकी सेवा-पूजा किया करता था। उसका प्रेम बड़ी ही उच्च कोटिका था, उसको भगवान्का साक्षात्कार भी हो चुका था। भगवान्की मूर्ति उसकी दृष्टिमें पार्थिव मूर्ति नहीं थी, वह उसे साक्षात् चिन्मय सर्वशक्तिमान् प्रभु ही समझता और यथार्थमें वैसा ही अनुभव करता था। साधुका नाम जटाधारी था। 'रामलला' को सुकुमार बालक समझकर वह बड़े प्रेमसे उन्हें भोजन कराता, उनके साथ खेलता और उन्हें शयन कराकर फिर स्वयं सोता था। भगवान् रामललाकी निष्कामभावसे सेवा-पूजा करनेमें जटाधारी अपने शरीरकी बिल्कुल परवा नहीं करता था। वह रामललाकी दिव्य छटा निरख-निरखकर ऐसा तन्मय हो गया था मानो उसकी दृष्टिमें जगत्का अस्तित्व ही नहीं है। यही प्रेमकी पराकाष्ठा है। इस तन्मयतामें ही परमानन्दका अनुभव होता है। यही जीवन्मुक्त-अवस्था है। इस प्रेमोन्मादके कारण समस्त जगत् ब्रह्ममय दीख पड़ता है। समस्त विश्व उस प्रियतमकी ही लीलाभूमि दिखायी देने लगती है। जीव—

फिर पृथक् जीव नहीं रहता। भेद नष्ट होकर उसे अभेदत्वका साक्षात्कार हो जाता है। प्रतिमा-पूजाका खण्डन-मण्डन करनेवाले लोग मन-वाणीसे अगोचर इस प्रेमकी महिमाको क्या जानें? यदि भाग्यवश इस अद्भुत प्रेमामृतकी एक बूँद भी उन्हें मिल जाय तो उन्हें अपना सारा वाद-विवाद तथा अपनी समस्त वाक्-पटुता व्यर्थ जान पड़े। प्रेमानन्दका अनुभव होते ही सारे वितण्डावाद और शास्त्रार्थके खेल सारहीन प्रतीत होने लगते हैं।

जटाधारीकी प्रीति श्रीरामकृष्णके साथ इतनी बढ़ गयी कि उसने अपने भगवत्-साक्षात्कारका सब गुह्य वृत्तान्त उन्हें कह सुनाया। वह इस बातको किसीसे नहीं कहता था परन्तु परस्परका प्रेम होनेसे गुप्त भाव छिपे नहीं रहते। श्रीरामकृष्णका जटाधारीसे ऐसा घनिष्ट प्रेम हो गया था कि वह दिनभर उसके ही पास बैठे रहते और उसके प्यारे रामललाकी मधुर शिशु-लीला देखा करते। उन्हें यह प्रत्यक्ष दिखायी देता कि जटाधारीके हाथसे रामलला भोजन कर रहे हैं, कभी रामलला उससे कोई और चीज माँग रहे हैं, कभी बालककी तरह हठ करते हैं, कभी रूठकर बैठ जाते हैं। इन सब लीलाओंको देख-देखकर ठाकुरको बड़ा आनन्द मिलता था। श्रीरामकृष्णके निकट रहते-रहते रामललाकी उनसे भी प्रीति हो गयी, यहाँतक कि जबतक वह रामललाके पास रहते, तबतक तो रामलला सन्तुष्ट रहते, उनके चले जानेपर उन्हींके पीछे-पीछे उनके कमरेमें चले जाते, श्रीरामकृष्ण उन्हें कभी नाचते देखते, कभी रामलला उनकी पीठपर बैठ जाते, कभी उनकी गोदमें आ बैठते और कभी बाहर बगीचेमें नंगे पाँव ही जाकर फल तोड़ने लगते। ठाकुर उन्हें मना करते तो उनकी कुछ

परवा न कर वहीं काँटोंमें फिरते रहते और मुँह बनाकर उलटा उन्हें चिढ़ाने लगते। श्रीरामकृष्ण कहा करते थे कि 'जब कभी मैं उनकी चपलता और हठपर क्रोधित होकर उनको तमाचा मार देता और जब वह आँखोंमें आँसू भरकर दीनभावसे मेरी तरफ देखने लगते तो मुझे बड़ा दुःख होता। तब मैं रामलल्लाको अपनी गोदमें बैठाकर उन्हें प्यार करता और पुचकार-पुचकारकर सन्तुष्ट करता।' ठाकुर एक और घटनाका हाल इस प्रकार कहा करते थे कि एक बार रामलल्लाने कोई ऐसी चीज़ खानेको माँगी जो उस समय मेरे पास न थी। वह हठ करने लगे तो मैंने बिना कूटे धान ही खानेको दे दिये, जिन्हें वह चबाने लगे। चबाते-चबाते उनकी कोमल जीभ कट गयी। यह देखकर मेरा हृदय करुणासे भर गया और बड़े प्यारसे उन्हें अपनी गोदमें बैठाकर मैं कहने लगा कि 'माँ कौसल्या तो तुम्हें बड़े लाड़से माखन-मलाई खिलाती थीं, मैं कैसा कठोर हृदय निर्दय हूँ जो तुम-सरीखे कोमल कमनीय शिशुको ऐसा मोटा कच्चा अन्न खानेको देता हूँ।' जिस समय ठाकुर इस घटनाका वर्णन करने लगते तो प्रेममें ऐसे विह्वल हो जाते कि ऊँचे स्वरसे रोने लगते, जिससे सुननेवालोंका हृदय भी विकल हो जाता और वह भी रो पड़ते थे।

जटाधारी बाबा 'रामलला' के लिये भोजन तैयार कर उन्हें बुलाता तो वह न आते। ढूँढ़ने लगता तो उन्हें श्रीरामकृष्णके साथ खेलते हुए पाता, पकड़कर ले जाता और कहता कि 'भोजन तैयार है, मैं तुझे ढूँढ़ता-ढूँढ़ता थक गया और तू यहाँ आरामसे निश्चिन्त बैठा खेल रहा है। ठीक ही है, तू बड़ा कठोर है। तुझे किसीकी भी परवा नहीं। राजा दशरथको छोड़कर तू वनमें चला

गया। वह बेचारा तेरे विरहमें मर ही गया, पर तू मरते समय भी उससे मिलने न गया।' इस तरह धमकाता हुआ वह रामललाको अपनी कुटियामें ले जाता और उसे भोजन कराने लगता। बाबाको बहुत दिन दक्षिणेश्वरमें ठहरना पड़ा; क्योंकि 'रामलला' श्रीरामकृष्णको छोड़ कहीं जाना नहीं चाहते थे। एक दिन जटाधारी रोता हुआ ठाकुरके पास आया और कहने लगा कि 'रामललाने अपनी असीम कृपासे मेरा मनोरथ पूरा कर दिया है। उसने मेरी इच्छानुसार साक्षात् दर्शन दिये हैं; परन्तु वह अब कहता है कि मैं तेरे साथ नहीं जाऊँगा। मैं भी इस बातसे दुखी नहीं हूँ। मुझे यही सन्तोष है कि 'रामलला' यहाँ तुम्हारे पास रहकर प्रसन्न है। मैं उसे सुखी देखकर सन्तुष्ट हूँ। इसलिये अब मैं जाता हूँ।' उसी समय वह कहीं चला गया। रामलला ठाकुरके पास रहे। तभीसे रामललाकी मूर्त्ति दक्षिणेश्वर कालीबाड़ीमें मौजूद है।

इस घटनासे श्रीरामकृष्णका मनोहर वात्सल्यभाव प्रकट होता है। उन्होंने सब प्रकारके प्रेम-भावोंका अनुभव किया था। शास्त्रोंमें वर्णित साधनोंमेंसे बहुत-सी साधनाएँ उन्होंने कीं और उनमें सिद्धि प्राप्त की। सैकड़ों मनुष्य दक्षिणेश्वरमें जाकर 'रामलला' की मूर्तिको देखते हैं, परन्तु उनकी दृष्टिमें वह केवल धातुकी मूर्ति ही है। यदि उनसे इस सत्य घटनाका वर्णन किया जाय तो उन्हें इसपर विश्वास ही नहीं होता। श्रीरामकृष्णके भाव और साधारण मनुष्योंके भावोंमें महान् अन्तर है। कौन कह सकता है कि हम भगवान्से मिलनेके लिये व्याकुल हुए और हमने उन्हें नहीं पाया?

कौन कह सकता है कि हमने प्रभुके मिलनेकी लगनमें अपना सर्वस्व न्योछावर कर सच्चे हृदयसे भगवान्‌को ढूँढ़नेकी कोशिश की पर वह आशुतोष नहीं मिले ? अपने अनन्य भक्तको वह भक्तवत्सल उसीके भावोंके अनुसार साक्षात् दर्शन देते हैं। ऐसे अनुभवी महाभाग्यशाली भक्तोंको वह विभु सर्वान्तर्यामी प्रभु इस मायासे प्रत्यक्ष दीखनेवाले जगत्‌से भी स्पष्ट और सत्यरूपसे दृष्टिगोचर होते हैं। इस जगत्‌में भगवान् ही एक सत्य वस्तु हैं, और तो सब केवल उनकी चलती-फिरती छाया है।

तान्त्रिक साधनामें सिद्धि प्राप्त करनेके पश्चात् श्रीरामकृष्णने वैष्णव-साधनाओंसे भी उन्हींके भावोंके अनुसार भगवत्-दर्शन प्राप्त किया। शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य भावोंकी पृथक्-पृथक् रीतिके अनुसार तन्मय होकर सिद्धि प्राप्त की। वह जब कोई साधना आरम्भ करते थे तो उसी भावमें मग्न रहते हुए ही उनकी समस्त जीवन-क्रिया होती थी। अर्थात् यदि वह दास्य-भावकी साधनामें तत्पर होते तो हनूमान्‌की तरह जीवनके समस्त भाव और कर्मको तथा रूपतकको वानरकी भाँति बना लेते; वैसे ही फल आदि खाते और वैसे ही उछलते-कूदते फिरते। यदि वात्सल्य-भावका अनुकरण करते तो स्त्रीरूप धारण कर भगवान् श्रीरामचन्द्र-को कौशल्या माताकी तरह लाड़-प्यार करते और रात-दिन महीनोंतक वही भाव धारण किये रहते। इस प्रकार वैष्णव भक्ति-मार्गकी समस्त दशाओंका स्वयं अनुकरण कर उन्होंने भगवान्‌का साक्षात्कार प्राप्त किया। उन्होंने देखा कि कोई भी साधना की जाय, सभी मार्गोंसे भगवत्-प्राप्ति होती है। प्रायः मनुष्य एक ही

मार्गका अवलम्बन किया करते हैं और उसमें सिद्धि प्राप्त कर अन्य साधनाकी ओर रुचि नहीं करते, परन्तु ठाकुरके जीवनसे यह सिद्ध होता है कि पृथ्वीतलपर उनका अवतरण जगद्गुरुरूपमें हुआ था। वास्तवमें सच्चा गुरु वही हो सकता है जो अनुभवी हो, शिष्योंकी भिन्न-भिन्न रुचिके अनुकूल उनका पथप्रदर्शक हो और स्वयं भी उन मार्गोंका भलीभाँति जाननेवाला हो। इस प्रकार विविध साधनाओंको करनेसे उन्हें यही अनुभव हुआ कि प्रभु समस्त जगत्‌में व्याप्त हैं, कोई स्थान उनसे खाली नहीं 'जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है।'

निर्विकल्प समाधि और तोतापुरीजी द्वारा संन्यास-दीक्षा

श्रीरामकृष्णके हृदयमें जब ये भाव परिपक्व हो गये तो उनका हृदय दर्पणकी तरह निर्मल हो गया, फिर जगत्‌की जिस किसी अवस्थाका उनके चित्तपर प्रतिबिम्ब पड़ता, उसी समय वह प्रतिबिम्ब महाभावमें परिवर्तित हो जाता। जल-बिन्दु कीचड़में पड़ता है तो मलिनताको धारण कर लेता है और वही जल-कण यदि समुद्रके सीपमें आ पड़ता है तो बहुमूल्य मोती बन जाता है। सन्ध्या-समय यमुना-तटपर गौओंका जंगलसे आना, यमुना-जल पीना और उनके चलनेसे धूलिका उड़ना हजारों आदमी नित्य देखते हैं, परन्तु उनकी दृष्टिमें गायोंका धूल उड़ाते हुए आना एक साधारण-सी बात है। पर श्रीरामकृष्णके हृदयपर यही घटना भगवान् गोपालकी याद दिलाकर महाभाव पैदा कर देती। वह तो

धूलिको देखते ही श्रीकृष्णकी गौ चरानेकी लीलाका स्मरण कर समाधिस्थ हो जाते थे और भगवान्‌का साक्षात् दर्शन करते थे।

अबतक उन्हें योगमें सबीज समाधितककी सिद्धि प्राप्त हुई थी, परन्तु इस अवस्थाको पूर्ण सिद्धि नहीं कह सकते। इस सबीज समाधिमें ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञानकी त्रिपुटी बनी रहती है, परन्तु निर्बीज समाधिमें यह भेद नहीं रहा करता। वह एक ऐसी अचिन्त्य अवस्था है जिसमें केवल अखण्ड एवं अद्वैत सत्ता ही रहती है। यह वही त्रिगुणातीत अवस्था है जिसका अनुभवी महापुरुष भी वर्णन नहीं कर सकते। मनवाणीके अगोचर ब्रह्मका साक्षात्कार इसी निर्बीज समाधिमें सम्भव है। यह पहले कहा जा चुका है कि श्रीरामकृष्णका हृदय सर्वथा स्वच्छ और निर्मल हो गया था। वह इन्द्रियोंके बन्धनसे नितान्त मुक्त हो चुके थे, क्षेत्र पूर्ण तैयार हो गया था, बीज बोनेकी देर थी। इसी समय एक विचित्र अद्वैतानुभवी महापुरुषका दक्षिणेश्वरमें आगमन हुआ। यह महात्मा बड़े तपस्वी, परम त्यागी और अद्वैतभावमें स्थित थे। शरीरके सुख-दुःखसे लापरवा रहते थे, कौपीनमात्र उनके एक आच्छादन था, कभी-कभी तो वह भी नहीं। न भूख-प्यासकी चिन्ता, न गरमी-सर्दीकी परवा। आकाश ही उनका मण्डप था, हाथ ही पात्र और पैर ही वाहन थे। वह सिंहकी भाँति चिन्ताशून्य निर्द्वन्द्व निर्भय विचरते और कहीं एक रात्रिसे अधिक न ठहरते थे। वह 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति' वाली अवस्थामें रहते हुए पृथ्वीतल-पर भ्रमण करते रहते। भ्रमण करते-करते अकस्मात् दक्षिणेश्वर-में भी उनका पदार्पण हुआ, मानो श्रीरामकृष्णके शुद्ध पवित्र हृदयने उन्हें बलात्कारसे आकर्षित कर लिया। शिष्यरूपी क्षेत्र

जब ज्ञानरूपी बीजके बोये जानेका अधिकारी बन जाता है तो सद्गुरुरूपी कृषक स्वयं ही कार्यकी पूर्तिके लिये आ मौजूद होता है। जब वह महात्मा कालीमन्दिरके मुख्य द्वारपर पहुँचे तो उन्हें भगवतीके सामने एक सुन्दर युवक ध्यानावस्थित दिखायी पड़ा। उसके मुखकी प्रभा और ध्यानमग्न दशाने उनको तुरन्त आकर्षित कर लिया। महात्माका नाम तोतापुरी था। ठाकुरको देखकर वह उनके पास आये और कहने लगे कि 'तू उच्च कोटिका सत्यान्वेषी प्रतीत होता है। क्या तू वेदान्तकी दीक्षा लेना चाहता है?' श्रीरामकृष्ण बोले—'अच्छा ठहरो मैं 'माँ' से पूछ लूँ!' माँने आज्ञा दे दी और कहा कि 'वत्स, जा सीख ले, यह पुरुष इसीलिये यहाँ आया है।' फिर वह तोतापुरीके पास आकर बोले कि 'माँने आज्ञा दे दी है, मैं तैयार हूँ।' तोतापुरीने कहा कि 'वेदान्तकी शिक्षा लेनेसे पहले संन्यास-दीक्षा ग्रहण करना परमावश्यक है। इस कारण संन्यासाश्रममें प्रवेश करनेके लिये शास्त्रानुकूल सब कर्मोंको विधिपूर्वक समाप्त करना जरूरी है।' श्रीरामकृष्ण तैयार हो गये और गुरुके आदेशानुसार श्रद्धापूर्वक सब कर्म करने लगे। इस कर्मके अनुष्ठानमें अपने-आप ही अपना श्राद्ध करना पड़ता है अर्थात् जगत्‌की ओरसे मृत्यु और ब्रह्ममें पुनर्जन्म। जाति-पाँतिका बन्धन तोड़नेके लिये शिखा-सूत्रको अग्निमें हवन करना होता है। पूर्ण त्यागके अभिप्रायसे समस्त वस्त्रादि उतारकर केवल कौपीन धारण करना संन्यासका चिह्न है। यह समस्त क्रिया समाप्त होनेपर उनका नाम 'रामकृष्ण' रक्खा गया और पहला प्रचलित 'गदाधर' नाम छोड़ दिया गया।

(९)

शुद्ध ब्रह्मका ध्यान

संन्यास-कर्म समाप्त होनेके बाद महात्मा तोतापुरीको श्रीरामकृष्णने साष्टांग प्रणाम किया और गुरु-दीक्षा ग्रहण करनेके निमित्त वह उनके पास बैठ गये। तोतापुरी शिष्यको ब्रह्मज्ञान देनेके लिये अद्वैत वेदान्तका इस प्रकार उपदेश करने लगे, 'केवल ब्रह्म ही सत्य है। वह अक्षर है, विज्ञानघन और अमर है, देश-कालसे परे, ज्योतिषां ज्योति, शुद्ध, मायातीत, परात्पर, अचिन्त्य और अनुभवसिद्ध है। मायाके सान्निध्यके कारण नाना रूपोंमें विभक्त हुआ-सा दृष्टिगोचर होता है, वास्तवमें वह मायातीत अखण्ड विभु है। जब साधक समाधि अवस्थामें लीन होता है तब वह देश, काल और नामरूपकी उपाधिसे मुक्त हो असत्य

माया और प्रपञ्च त्यागकर शुद्ध ब्रह्मका अनुभव करता है। अतः तू इस मायाजालके पाशको काट नामरूपात्मक उपाधिका छेदन कर। 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' में अभेद होनेके लिये समाधिमग्न हो जा। इस अवस्थामें नामरूपका अन्तर्धान होगा और यह आत्मा पाशोन्मुक्त होकर सच्चिदानन्द ब्रह्ममें लीन हो जायगा।' इस प्रकार ब्रह्मका उपदेश देते हुए गुरुने शिष्यके आत्माको ब्रह्म-लीन करानेका उद्योग किया। तोतापुरीने कहा कि तू अपने मनको समस्त द्वैतप्रपञ्चसे हटाकर अपने आत्मामें लीन कर ले। परन्तु श्रीरामकृष्ण पूर्णतया ऐसा न कर सके। नामरूप जगत्से तो अपने मनको उन्होंने हटा लिया, परन्तु आनन्दमयी भगवतीका रूप उनके मनसे अन्तर्हित नहीं हुआ। कई बार उन्होंने मायातीत ब्रह्मका ध्यान करनेकी चेष्टा की, परन्तु 'मां' के उसी रूपका साक्षात्कार हो जाता था। उन्होंने निराश हो गुरुसे कहा—'भगवन्! मायातीत शुद्ध ब्रह्मका ध्यान करना मेरे सामर्थ्यसे परे है।' तोतापुरी उत्तेजित हो बोले, 'कैसे नहीं होगा, करना पड़ेगा।' इतना कहकर वह अपने चारों ओर कुछ देखने लगे, इतनेमें एक कांचका टुकड़ा दिखायी पड़ा। उस टुकड़ेको उठाकर श्रीरामकृष्णके भ्रूमध्यपर जोरसे दबाकर बोले कि अब इस जगह ध्यान कर। ठाकुर धैर्य धरकर ध्यानावस्थित हुए तो उन्हें फिर उसी भगवतीके रूपका अनुभव होने लगा। उन्होंने साहसद्वारा विवेक-बलसे उस रूपको हटाया और वह निर्विकल्प समाधिमें मग्न हो गये। अब वह देशकालानुभूतिसे मुक्त हो सच्चिदानन्द ब्रह्मके स्वरूपमें लीन हो गये। ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेयका भेद जाता रहा और उनका शरीर निश्चल हो गया। तोतापुरी यह अवस्था देख कमरेका ताला बन्दकर

बाहर चले आये और शिष्यकी समाधि खुलनेकी प्रतीक्षा करने लगे। प्रतीक्षा करते-करते तीन दिन तीन रात बीत गये, परन्तु उनके जागनेका जब कोई शब्द न सुना तो किवाड़ खोल भीतर गये। श्रीरामकृष्णको उसी समाधि-अवस्थामें देख वह चकित रह गये और विचारने लगे कि जिस अवस्थाको मैंने चालीस वर्षोंके कठोर परिश्रमसे प्राप्त किया था, इसने तीन ही दिनोंमें उसे पा लिया। यह कोई अपूर्व पुरुष है। ठाकुरका श्वासोच्छ्वास बन्द था। दिलकी धड़कन भी बन्द थी। इस निर्विकल्प समाधिको उतारनेके लिये अब तोतापुरीने चेष्टा की। धीरे-धीरे श्रीरामकृष्णको बाह्यज्ञान होता गया और अन्तमें गुरुको सामने बैठा देख उन्होंने साष्टांग प्रणाम किया। गुरुने भी इस अद्भुत शिष्यका आलिङ्गन किया। यद्यपि तोतापुरी एक स्थानपर तीन दिनसे अधिक नहीं रहा करते थे, परन्तु अपने अपूर्व शिष्यको अद्वैत-ज्ञानमें पूर्णरूपसे स्थित करनेके लिये वह ग्यारह महीने दक्षिणेश्वरमें रहे।

तोतापुरीजीका परिचय

यहाँपर तोतापुरीजीका कुछ परिचय दे देना आवश्यक प्रतीत होता है। वह पंजाबी थे। बाल्यावस्थामें ही उन्होंने घर-बार छोड़ दिया था और नागा-सम्प्रदायके एक मठके अध्यक्षसे संन्यास-दीक्षा ली थी। गुरुके समाधिस्थ होनेपर वह मठाधीश बनाये गये थे। उनका शरीर बलिष्ठ था और वह सदैव ही बाहर घूमते-फिरते थे। वह अधिक समय ध्यानावस्थित ही रहा करते थे। तोतापुरी ज्ञानयोगी थे। प्रेमभावमें आँसू बहाना, नाचना, ताली बजाना आदिको वह पागलपन समझते थे। उनका विश्वास था कि इस

तरह करनेसे ब्रह्मानुभव नहीं हो सकता। मायाको केवल भ्रममात्र समझते थे और मायातीत ब्रह्ममें ही उनका विश्वास था। एक दिन गुरु-शिष्य दोनों बैठे वेदान्त-विषयपर वार्तालाप कर रहे थे। धूनी जल रही थी। इतनेमें बगीचेका एक नौकर चिलम भरनेके लिये धूनीमेंसे आग ले गया। इसपर तोतापुरी क्रुद्ध होकर उसपर चिमटेका प्रहार करना ही चाहते थे कि श्रीरामकृष्ण 'यह बड़े शर्मकी बात है' कहकर हँसने लगे। तोतापुरीके इस हँसनेका कारण पूछनेपर ठाकुरने कहा कि 'मैं आपके ब्रह्मज्ञानकी गम्भीरताको देख रहा था। आप अभी कहते थे कि ब्रह्म ही सत्य है और समस्त जगत् उसका रूप है, परन्तु क्षणभरके बाद ही आप सब भूल गये और उस आदमीको मारने लगे। मायाका कैसा अटल प्रभाव है!' इसपर तोतापुरी गम्भीरतासे विचारकर कहने लगे कि 'तुम सच कहते हो, मैं तमोगुणके वशमें हो गया था। क्रोध वास्तवमें महान् शत्रु है। अब क्रोधको कभी पास नहीं फटकने दूँगा।' वास्तवमें मायाका प्रताप अचिन्त्य है, ब्रह्म और माया अभिन्न हैं, इन्हींकी लीलासे जगत्का विस्तार है। जबतक भगवती महामायाकी दया नहीं होती तबतक ब्रह्मदर्शन नहीं होता।

तोतापुरीका शरीर दृढ़ और बलवान् था। वह कभी रोगसे पीड़ित नहीं हुए थे। परन्तु भगवतीने उन्हें अपना प्रभाव दिखाने और अपनी सत्यताका अनुभव करानेके अभिप्रायसे दयार्द्र होकर पूर्ण ज्ञान देनेकी कृपा की। ब्रह्म और माया दोनोंका ज्ञान ही पूर्ण ज्ञान है। भगवतीका तोतापुरीपर अनुग्रह करना निम्नलिखित घटनासे स्पष्ट जान पड़ेगा। बंगालमें रहनेके कारण तोतापुरीका

शरीर कई मासतक क्षीण होने लगा। उनकी इच्छा वहाँसे जानेकी हुई, परन्तु श्रीरामकृष्णके प्रेमके कारण वह जा नहीं सके। रोग-निवृत्तिके लिये चिकित्सा करायी गयी परन्तु सब निष्फल हुई। वह ज्ञानके दृढ़ अभ्यासी थे, बार-बार मनको देहकी स्मृतिसे हटाते, परन्तु कुत्तेकी पूँछकी तरह वह फिर-फिरकर देहाध्यासरूप अपना टेढ़ापन न छोड़ता। एक दिन पीड़ा अधिक बढ़ गयी तो उन्होंने मनको वशमें कर ब्रह्ममें लीन करनेकी कोशिश की परन्तु सफल न हुए। कई बार चेष्टा की, फल कुछ न हुआ। तब आप कहने लगे कि इस दुष्ट शरीरके ही कारण आज मैं मनको वशमें न कर सका, इसलिये इसको अब मैं गङ्गामें बहा दूँगा। मैं शरीर नहीं हूँ, इसके कारण वृथा कष्ट होता है। इस मनोरथसे वह ब्रह्मध्यानमें मन लगाकर गङ्गामें चले गये। चलते-चलते गङ्गा-पार हो गये परन्तु कुछ नहीं हुआ। गङ्गा सूख गयी है या यह केवल भ्रममात्र है, मायाका कैसा अद्भुत खेल है? भगवान्‌की कैसी विचित्र लीला है! यह विचार ही रहे थे कि मनके सामनेसे परदा उठा और महामायाका साक्षात् दर्शन हुआ। समस्त जगत् उन्हें जगज्जननीका अचिन्त्य लीलास्थल दिखायी देने लगा। वह उन्हें सर्वत्र व्याप्त अनुभव होने लगीं। कोई जगह उनसे खाली नहीं। उन्हें साक्षात् ज्ञात हुआ कि वही ब्रह्म हैं। ब्रह्म और मायामें कुछ भेद नहीं, एक ही सत्ताके दो रूप हैं। जब यह क्रियारहित शान्त होती हैं तो इन्हें अव्यक्त निराकार ब्रह्म कहते हैं परन्तु जब वही अद्वैतसत्ता जगत्‌की सृष्टि, पालन और संहार करनेवाली क्रिया करने लगती

हैं तो उन्हें शक्ति या मायाके नामसे सम्बोधन करते हैं। वास्तवमें निराकार और साकार ब्रह्ममें कुछ भी भेद नहीं। जैसे दूध और उसकी सफेदी अभिन्न हैं या जैसे मणि और उसकी प्रभामें भेद नहीं वैसे ही ब्रह्म और माया अभिन्न हैं। यह विचित्र घटना देख, भगवतीका नाम लेते हुए वह दक्षिणेश्वरमें वापस आकर श्रीरामकृष्णसे कहने लगे—'अहो! कल मुझे महामायाका साक्षात्कार हुआ और रोगकी पीड़ा भी नष्ट हो गयी। यह पीड़ा ही मेरे लिये मित्र बन गयी। अब मुझे पूर्ण ज्ञान हुआ है। मेरा पहला ज्ञान अधूरा था।' कुछ दिन पीछे एक दिन गुरु-शिष्य काली-मन्दिरमें 'माँ' को प्रणाम कर रहे थे कि दोनोंको अनुभव हुआ मानो 'माँ' ने अब तोतापुरीको जानेकी आज्ञा दे दी है। कुछ दिन बाद तोतापुरी दक्षिणेश्वरसे विदा हो गये।

श्रीरामकृष्ण तोतापुरीके जानेके बाद छः मासतक नितान्त बाह्यज्ञानशून्य अवस्थामें रहे। उन्हें न तो अपने शरीरकी सुधि थी और न दिन-रातका ज्ञान। वह सदैव समाधि-अवस्थामें रहते थे। भेदभाव बिल्कुल चला गया। ऐसी दशामें योगीका शरीर प्रायः २१ दिनतक ही रह सकता है। परन्तु जगज्जननीको अभी उस शरीरसे जगत्के कल्याणके लिये बहुत कुछ काम लेना था, इस कारण महामायाने उनके शरीरको नष्ट नहीं होने दिया। इन्हीं दिनों उन्हें पेचिशका रोग हो गया और बहुत पीड़ा होने लगी। इस व्याधिके कारण वह छः मासतक कष्ट भोगते रहे। तदनन्तर वह रोगमुक्त हुए।

अन्य धर्मोंके अनुसार साधन

एक समय श्रीरामकृष्ण मन्दिरके पीछे बड़े तालाबपर बैठे हुए थे कि उन्हें एक मुसलमान फकीर अपनी ओर देखता हुआ नजर आया। उसे कोई सन्त समझकर वह उसके पास गये और बड़े आदर-भावसे उसका अभिनन्दन कर उसे अपने साथ ले आये। ठाकुर अपने हिन्दू-धर्मका भलीभाँति अनुसन्धान कर और उसके नाना मार्गोंके अनुसार साधन कर सब मार्गोंसे एक ही लक्ष्यपर जा पहुँचे थे। अब उनकी यह इच्छा हुई कि अन्य धर्मोंकी भी खोज करनी चाहिये और उनके ही पथके अनुसार साधन कर स्वयं उनके लक्ष्यका भी अनुभव करना चाहिये। अद्वैतानुभवसे उनका हृदय बड़ा विशाल हो गया था। किसी भी धर्म-मार्गको वह घृणाकी दृष्टिसे नहीं देखते थे। उनका विश्वास था कि सभी धर्म-पथ एक ब्रह्ममें ही जा पहुँचते हैं। उनकी धारणा थी कि सभी धर्म सत्यपर स्थित हैं। स्वयं अनुभव करनेसे कुछ संशय नहीं रहेगा। सुतरां उन्होंने मुसलमानी धर्मके सम्बन्धमें उस सन्तसे प्रश्नोत्तर किये। सन्तने अपने धर्मके सब रहस्य ठाकुरको बतला दिये। वह सब बातोंको समझकर इस्लाम-धर्मके अनुसार साधनमें लग गये। उनके हृदयमें उस समय इस्लाम-धर्मका भाव पूरी तरहसे प्रवेश कर गया था, यहाँतक कि उन्होंने दक्षिणेश्वरकी चारदीवारीमें भी रहना छोड़ दिया था। कहते हैं, तीन ही दिन पीछे उन्हें पहले हजरत मुहम्मदका साक्षात्कार हुआ, फिर निर्गुण ब्रह्मका अनुभव। इसी प्रकार ईसाई-धर्मके मतानुसार साधन करके भी वह उसी अद्वैतपदपर पहुँचे। क्या हमारे देशके पृथक्-पृथक्

मतावलम्बी ठाकुरके इस अनुभवसे शिक्षा ग्रहण करेंगे ? हिन्दू-मुसलमानोंके सदैवके वैमनस्यने भारतकी उन्नतिमें बड़ी बाधा पहुँचायी है। इस दुराग्रहने राजनीतिक उन्नतिको ही धक्का नहीं पहुँचाया, वरं पारमार्थिक और आध्यात्मिक विकासकी जड़ भी खोखली कर दी है। इस द्वेषका कारण केवल अविद्या और क्षुद्र-हृदयता है। यदि भारतकी उन्नति करना अभीष्ट है तो पहले एक-दूसरेके धर्मोंका निष्कपटतासे अध्ययन करना होगा। स्वार्थ-त्याग तथा प्रेम-भावसे द्रवीभूत हो परस्पर प्रीति बढ़ानी होगी। सभी मत-मतान्तर परमात्माके और उसकी प्रजाके साथ प्यार करना सिखाते हैं। खेद है, इस धर्मोपदेशको, अविद्याके अन्धकारमें भुलाकर गौण बातोंपर ही हमलोगोंने लड़ना-भिड़ना शुरू कर दिया है।

ठाकुर कहा करते थे कि 'भगवान्‌के अनेक नाम हैं, अनन्त रूप हैं, चाहे जिस नाम-रूपका सरल हृदयसे स्मरण करो, उसी-के द्वारा परमेश्वरसे मिलाप हो सकता है। जैसे जल एक ही है, कोई उसे पानी कहता है तो कोई वाटर (Water), कोई जल कहता है तो कोई आब। इसी प्रकार एक ही सच्चिदानन्द भिन्न-भिन्न नामोंसे पुकारा जाता है। कोई उसे कृष्ण कहता है तो कोई शिव या देवी कहता है, किसीकी भाषामें उसका नाम गॉड (God) है तो किसीकी बोलीमें अल्लाह। कोई उसे जिहोवा (Jehovah) कहते हैं तो कोई हरि या ब्रह्म !

(१०)

ठाकुरका निश्चय

अनेक भावोंद्वारा कठिन साधना करके श्रीरामकृष्णने जिन-जिन सिद्धान्तोंकी अनुभूति की, वह बड़े ही महत्त्वकी है। अपने सम्बन्धमें उनका विश्वास था कि जगदम्बाने उन्हें एक असाधारण व्यक्ति निर्माण कर जगत्‌में भेजा है। इसी कारण उन्हें इसी जन्ममें थोड़ी ही साधनासे सिद्धि प्राप्त हुई, जिसे साधारण मनुष्य कई जन्मोंके निरन्तर परिश्रमसे भी नहीं पा सकते। नाना धर्म-मार्गोंके अनुकूल साधना करनेके उपरान्त उनका यह निश्चय हो चुका था कि सभी पथ एक ही लक्ष्य ब्रह्मधाममें जा पहुँचते हैं, वहाँ पहुँचनेपर सारे भेद-भावका नाश होता है। परन्तु उस लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये नाना प्रकृतियोंके मनुष्योंके लिये अपनी-अपनी मानसिक अवस्थाके अनुकूल नाना धर्मपथोंका अवलम्बन करना स्वाभाविक है। जिसकी जैसी प्रकृति हो उसके लिये वैसे ही मार्गका अनुसरण करना उपयुक्त है अन्यथा पथ-भ्रष्ट हो जानेकी आशङ्का है। श्रीभगवान् गीतामें कहते हैं 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।' द्वैत, विशिष्टाद्वैत और अद्वैत सिद्धान्तोंके विषयमें उनकी यह धारणा थी कि ये तीनों ही सिद्धान्त अपनी-

अपनी आध्यात्मिक उन्नतिके अनुकूल प्रतिष्ठित हैं। वाद-विवादसे अपने सिद्धान्तकी पुष्टि करना निष्प्रयोजन है, सारे विवाद बुद्धितक ही रह जाते हैं। परन्तु सच्चिदानन्दघन ब्रह्म बुद्धिगम्य वस्तु नहीं है, वह तो अनिर्वचनीय और स्वानुभवगम्य है, मन-बुद्धिकी गति विशिष्टाद्वैततक ही रह जाती है। सिद्धावस्थामें ही ब्रह्म और प्रकृतिके अभेदका अनुभव होता है, जगत्में सभी पदार्थ ब्रह्ममय हैं, केवल नाम-रूपका भेद है। जो मनुष्य इन्द्रियोंके बन्धनसे मुक्त नहीं हुए, वे द्वैतभावसे ही साधना करनेके अधिकारी हैं, ऐसे जीव अद्वैत-सिद्धान्तका भलीभाँति अनुभव नहीं कर सकते। बुद्धिसे पार जाकर ही अद्वैतानुभूति हुआ करती है। बुद्धिद्वारा अद्वैत-सिद्धान्तका निश्चय कर लेना ही अनुभूति नहीं है।

कर्म, अकर्मके सम्बन्धमें श्रीरामकृष्णके विचार थे कि मनके परम शुद्ध त्रिगुणातीत हो जानेपर मनुष्यसे बन्धनकारक कर्म बन ही नहीं सकते। वह उदाहरण दिया करते थे कि जब कोई युवती स्त्री गर्भवती होकर सन्तानकी माता बननेको होती है तब उसके गृहस्थका भार और नाना कर्म आप ही कम होने लगते हैं। सन्तानोत्पत्तिके पश्चात् तो उसके सभी कर्म छूट जाते हैं, केवल बच्चेके पालनका ही एक कर्म उसके लिये शेष रह जाता है। साधारण मनुष्योंके लिये अनासक्त बुद्धिसे कर्म करना ही श्रेष्ठ है। जैसे नौकर अपने मालिकके निमित्त काम तो सभी करता है, परन्तु मनमें वह खूब जानता है कि मालिककी सम्पत्ति और कार्यका फल मेरा नहीं है। यही कर्मयोग है। भगवत्-स्मरण करते हुए नित्य अपने प्राप्त कर्तव्य-कर्मोंको करते रहना ही कर्मयोगका रहस्य है।

भाई और माताका देहान्त

श्रीरामकृष्णके बड़े भाई रामेश्वरका, जो कुछ दिनोंसे कामारपूकुरमें रहने लगे थे, देहान्त हो गया। रामेश्वरका चित्त बहुत उदार था, वह किसी भी साधु-संन्यासीको निराश नहीं किया करते थे, कुछ-न-कुछ सेवा करना ही अपना परम कर्तव्य समझते थे। दक्षिणेश्वर-मन्दिरमें उनकी जगह उनके बड़े बेटे रामलालकी नियुक्ति हो गयी। ठाकुर रामेश्वरके परलोकगमनके समाचारसे यह सोचकर चिन्ता करने लगे कि वृद्धावस्थामें शायद माताको पुत्र-वियोगसे बड़ा शोक हुआ होगा। परन्तु चन्द्रदेवीको कुछ भी दुःख नहीं हुआ। इस घटनाकी सूचना पाकर वह बोलीं—'प्राणिमात्रको एक दिन मरना ही है, दुःख करनेसे क्या लाभ?'

शारदादेवी सन् १८७४ के अप्रैल-मासमें दूसरी बार दक्षिणेश्वर आयीं और अपनी सासके साथ नौबतखानेमें रहने लगीं। परन्तु वह जगह बहुत ही तंग थी, इसलिये एक दूसरी कुटिया बनवा दी गयी। वह वहीं रोज ठाकुरके लिये भोजन बनाया करती थीं और श्रीरामकृष्ण भी प्रायः प्रतिदिन ही कुछ समय उनके पास बैठा करते थे। पेचिस हो जानेके कारण सन् १८७५ के सितम्बर-मासमें वह अपने नैहर जयरामवटीको लौट गयीं, वहाँ जानेपर एक बार तो रोग बढ़ा, परन्तु धीरे-धीरे शान्त हो गया। शारदाके जानेके बाद सन् १८७६ के मार्च-मासमें चन्द्रदेवीका देहान्त हो गया। मृत्युके समय उन्हें लोग गङ्गा-तटपर ले गये, श्रीरामकृष्णके माताके चरणोंपर

पुष्पाञ्जलि समर्पण करनेपर उन्होंने शान्तिपूर्वक शरीर छोड़ दिया। उनकी अन्त्येष्टि-क्रिया ठाकुरके भतीजे रामलालने की। श्रीरामकृष्णको संन्यासी होनेके कारण क्रिया करनेका अधिकार नहीं था।

ब्राह्मसमाजके नेता श्रीकेशवचन्द्र सेनसे परिचय

श्रीरामकृष्णके मनमें कभी यह इच्छा नहीं पैदा हुई कि लोग मेरे पास आवें और मेरा सम्मान करें। ख्याति और मानको वह सदैव घृणाकी दृष्टिसे देखते थे। निरभिमान इतने थे कि जहाँ कहीं किसी अनुभवी महात्माका आना सुनते, तुरन्त उनके दर्शनके लिये स्वयं उनके स्थानपर चले जाते।

एक बार काशीमें एक ब्रह्मवेत्ता महात्माका जिक्र सुन, कुछ भेंट लेकर ठाकुर उनके दर्शनको गये थे और साधारण यात्रियोंकी भाँति साष्टांग प्रणाम कर बैठ गये थे। इसी तरह कलकत्तेमें भी जब कभी किसी महापुरुषकी चर्चा सुनते तो उनसे मिलने जाया करते थे। एक दिन उन्होंने सुना कि दक्षिणेश्वरके समीप बेलघरियामें जयगोपाल सेनके बगीचेमें ब्राह्मसमाजके विख्यात नेता श्रीकेशवचन्द्र सेन अपने शिष्योंके साथ आये हैं। यह सुनकर वह उनसे मिलने वहाँ गये। केशवचन्द्रको अपने भक्तोंके साथ बैठे देखकर ठाकुर उनके समीप जाकर उनकी मण्डलीमें बैठ गये और कहने लगे कि 'मैंने सुना है कि आपने ब्रह्म-साक्षात्कार किया है, इसलिये इसके सम्बन्धमें आपसे कुछ सुनने आया हूँ।' केशवबाबू उत्तर देने लगे। परस्पर बातचीत हो ही रही थी कि ठाकुर

समाधिस्थ हो गये। समाधि खुलनेपर लोगोंने देखा कि उनके मुखपर एक दिव्य ज्योति चमक रही है। इस घटनाको देखकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। अब ठाकुरके मुखसे जो भगवत्-सम्बन्धी अमृत-वर्षा होने लगी उसे सुन श्रोतागण मुग्ध हो गये। ठाकुरने कहा—'अनन्त अनादि परब्रह्म नाना रूपोंसे जगत्में लीला कर रहे हैं, वह मन-बुद्धिसे जाने नहीं जाते, अन्तर्दृष्टिसे ही अनुभव किये जा सकते हैं।' इस प्रकार कुछ भगवच्चर्चा करनेके बाद श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर लौट आये। केशवबाबू वगैरह उनकी सारगर्भित वक्तृताको सुनकर बहुत ही सन्तुष्ट हुए और तबसे उनका बड़ा आदर करने लगे। इसके बाद तो कभी केशवचन्द्र सेन दक्षिणेश्वर उनसे मिलने आते और कभी ठाकुर उनसे मिलने कलकत्ते जाते। इस प्रकार दोनोंका आपसमें प्रेम बढ़ता ही गया।

पाठकोंकी जानकारीके लिये यहाँ ब्राह्मसमाजका कुछ संक्षिप्त इतिहास लिख देना अप्रासंगिक न होगा। ब्राह्मसमाजकी स्थापना गत शताब्दिमें हुई थी। इसके आदिप्रवर्तक राजा राममोहन राय थे। आर्यसमाजकी भाँति सनातनधर्मके सिद्धान्तोंसे असन्तुष्ट लोगोंके द्वारा बंगाल-प्रान्तमें इस मतका प्रचार हुआ। आर्यसमाजकी भाँति ब्राह्मसमाज भी मूर्तिपूजा, श्राद्ध, जातिभेद इत्यादिका विरोधी और विधवाओंके पुनर्विवाहका समर्थक है। धार्मिक तथा आध्यात्मिक सिद्धान्त भी दोनों मतोंके कुछ मिलते-जुलते हैं और दोनों ही मत अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगोंमें पहले-पहल प्रचलित हुए। राजा राम-मोहन रायके बाद कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुरके पिता महर्षि

देवेन्द्रनाथ ठाकुरने इस मतकी बहुत पुष्टि की, उस समय इस समाजका नाम आदिब्राह्मसमाज था। कुछ समय पश्चात् श्रीकेशवचन्द्र सेनने इस समाजसे अलग होकर, 'भारतवर्षीय ब्राह्मसमाज' की स्थापना की। केशवबाबू अंग्रेजीके धुरन्धर पण्डित और पाश्चात्य सभ्यताके अनुयायी थे। अपनी अद्भुत वक्तृताशक्तिके प्रभावसे उन्होंने अनेकों नवयुवकोंको अपनी ओर आकर्षित कर लिया। इन युवकोंमें इनकी मान-प्रतिष्ठा बढ़ती गयी। जब इन्होंने समाजके नियमोंको तोड़कर अपनी लड़कीका विवाह कूचविहारके राजासे कर दिया तब बहुत-से सभासद् इनसे असन्तुष्ट होकर अलग हो गये और उन्होंने श्रीविजयकृष्ण गोस्वामीके नेतृत्वमें 'साधारण ब्राह्मसमाज' के नामसे एक नये समाजकी स्थापना की। तत्पश्चात् केशवबाबूने अपने समाजका नाम 'नवविधान' रख दिया। यह 'नवविधान' पाश्चात्य सभ्यतासे बहुत ही प्रभावित हुआ। इसका झुकाव बहुत कुछ पाश्चात्य सभ्यताकी ओर ही है। 'आदिब्राह्मसमाज' की स्थापना हिन्दू-धर्मके अनेक सिद्धान्तोंको मानते हुए कुछ सिद्धान्तोंमें मतभेदके कारण हुई थी, परन्तु 'नवविधान' के सिद्धान्त हिन्दू-धर्मसे बहुत भिन्न हैं। 'साधारण ब्राह्मसमाज' इन दोनों मतावलम्बियोंके विचारमें मध्य श्रेणीका है।

श्रीकेशवचन्द्र सेन और उनके शिष्योंसे श्रीरामकृष्णका परिचय संसारके कल्याणके लिये बड़े ही महत्त्वका हुआ। ठाकुरके सत्संगसे उन लोगोंके विचारोंमें बहुत कुछ परिवर्तन हुआ। वह बुद्धदेव, श्रीचैतन्य, ईसा आदिमें समान-भावसे श्रद्धा करने लगे

और ठाकुरके सत्संगसे ब्राह्मसमाजमें भगवान्‌की शक्तिका मातृ-भावसे चिन्तन करना आरम्भ हुआ। इनके प्रभावसे 'नवविधान' समाजका झुकाव ईसाई-मतकी ओरसे घटता गया। सबसे अधिक महत्त्वकी बात तो यह हुई कि इसी समाजके एक प्रभावशाली नवयुवक नरेन्द्रनाथ दत्तका ठाकुरसे सम्बन्ध हो गया। यह होनहार युवक श्रीरामकृष्णकी ओर दिनोंदिन आकर्षित होता गया और अन्तमें उनके मुख्य शिष्योंमेंसे प्रधान शिष्य हुआ, जो जगत्-विख्यात स्वामी विवेकानन्दके नामसे प्रसिद्ध है। इस घटनाका वृत्तान्त विस्तारसे आगे लिखा जायगा।

ब्राह्मसमाजके सत्संगमें वक्तागण प्रायः भगवान्‌की विभूतियोंकी प्रशंसा किया करते थे। एक दिन श्रीरामकृष्णने कहा कि 'आप लोग क्यों नित्य भगवान्‌की विभूतियोंका ही वर्णन किया करते हैं,' क्या कभी पुत्र अपने पिताके बाग-बगीचे, धन-सम्पत्तिका चिन्तन करता है, वह तो केवल पिताके स्नेह और वात्सल्य-प्रेमका ही इच्छुक होता है, क्योंकि वह जानता है कि पिता मेरा पालन-पोषण अवश्य ही करेगा, इसलिये उसे इस बातकी कुछ चिन्ता नहीं होती। इसी प्रकार हम सभी उनके पुत्र हैं, वह हमारी सब भाँति रक्षा करेंगे। सच्चा भक्त इस बातकी कुछ भी चिन्ता नहीं करता। वह भगवान्‌को अपना आत्मीय जानता है और उनसे प्रेम करना ही अपना कर्तव्य समझता है। यदि वह भगवान्‌के ऐश्वर्यादि महत्त्वका विचार करने लगे तो उनकी महान् अचिन्त्य मायाकी विभूतियोंका चिन्तन करते-करते भयभीत हो जायगा और उसके

हृदयसे आत्मीयता और प्रेमके भाव निकल जायँगे। इसलिये परमपिताका अत्यन्त प्रेम-भावसे चिन्तन करना ही योग्य है, तभी उनका साक्षात्कार होना सम्भव है।' ठाकुरके उदाहरणसे ब्राह्मोंको मूर्ति-पूजाका महत्त्व भी सत्य प्रतीत होने लगा। क्योंकि वह जानते थे कि ठाकुरको 'माँ' के विग्रहके आधारसे ही उनका साक्षात् दर्शन हुआ था। श्रीरामकृष्णके सत्संगके प्रभावसे ही ब्राह्ममें ब्रह्म और शक्तिका अभेदभाव भी निश्चितरूपसे माना जाने लगा। वह समझने लगे कि ईश्वर और जगत्में भेद नहीं, सर्वव्यापक परमात्मा ही संसारमें नानारूपोंसे लीला कर रहे हैं। नामरूपात्मक जगत् उन्हींकी लीला है। वह इसमें समाये हुए हैं और इससे परे भी हैं। साकार भी वही हैं और निराकार भी वही हैं। केशवबाबूसे वार्तालाप करके ठाकुर बड़े प्रसन्न हुआ करते थे, क्योंकि केशवचन्द्र इनसे भगवत्-सम्बन्धी बहुतेरे प्रश्न किया करते थे। एक दिन ठाकुर भक्तिके सोपानोंका वर्णन कर रहे थे; उस समय केशवबाबूने पूछा कि, 'महाराज! इसके बाद क्या होता है?' इसपर ठाकुरने कहा 'केशवबाबू! इसके परेकी बात यदि तुमसे कहूँगा तो तुम्हारे समाजमें तुम्हारा गुरु-शिष्य-भाव छूट जायगा, क्या तुम इसके लिये तैयार हो?' केशवचन्द्रने कहा कि 'मैं उतनी दूरतक तो जाना नहीं चाहता।' उस समय केशवबाबू हजारों आदमियोंके गुरु थे, उनका एक बड़ा संघ था एवं वह उनकी सहायता करना अपना धर्म समझते थे।

सन् १८७५ में श्रीरामकृष्णका केशवचन्द्र सेनसे समागम हुआ था और सन् १८८४में केशवचन्द्रका देहान्त हो गया। जब ठाकुरने सुना कि केशवबाबू बहुत बीमार हैं तो वह उनसे मिलने गये। केशवबाबू बीमारीके कारण घरके अंदर अपने कमरेमें पड़े रहते थे, परन्तु ठाकुरके आनेकी खबर सुनकर वह धीरे-धीरे बाहर बैठकखानेमें आये। ठाकुरको उच्चासनपर बैठनेके लिये प्रार्थना की और स्वयं नीचे बैठ गये। परन्तु ठाकुर भी उनके पास नीचे ही जा बैठे। श्रीरामकृष्ण बहुत देरतक उनसे बातचीत करते रहे और उन्हें सान्त्वना देते रहे। इसी बीचमें केशवबाबूको जोरकी खाँसी आयी, जिससे उनका वहाँ बैठे रहना असम्भव-सा हो गया। अतः वह ठाकुरके चरणोंमें प्रणाम कर धीरे-धीरे दीवालके सहारे घरके अंदर चले गये।

श्रीविजयकृष्ण गोस्वामी केशवबाबूके समाजमें एक प्रतिष्ठित विद्वान् थे और 'साधारण ब्राह्मसमाज' के नेता थे। उन्होंने एक दिन ठाकुरसे पूछा कि 'महामायाका साक्षात्कार कैसे हो सकता है?' इसपर श्रीरामकृष्णने कहा कि 'भगवतीसे सरल हृदयके साथ प्रार्थना करो, सच्चे दिलसे उनके सामने रोओ! इससे जब चित्त शुद्ध हो जायगा तो आप ही 'माँ' का साक्षात्कार हो जायगा। दर्पणके निर्मल होनेपर ही प्रतिबिम्ब दिखायी दे सकता है, थोड़ा-सा भी मैल रहेगा तो प्रतिबिम्ब स्पष्ट नहीं दिखायी देगा! भक्तका काम केवल अपने हृदयरूपी दर्पणको विषय-वासनाकी मैलसे

अत्यन्त निर्मल कर देना है, जहाँ वह शुद्ध हुआ कि महामायाका साक्षात्कार हुआ।'

ब्राह्मसमाजमें साम्प्रदायिक भगवत्-प्रार्थना करनेकी प्रथा है। इसके विपरीत हिन्दू समझते हैं कि एकान्तमें ही परमेश्वरका चिन्तन निर्विघ्नतासे किया जा सकता है। संघमें बैठकर एकाग्रतासे चिन्तन करना सर्वसाधारणके लिये बहुत कठिन है। एक दिन ठाकुर ब्राह्मसमाजकी प्रार्थनामें सम्मिलित हुए, प्रार्थना समाप्त होनेपर जब नेता मञ्चसे उतरे तो उन्होंने श्रीरामकृष्णसे पूछा—'महाशय! समाजकी उपासना और प्रार्थनाके बारेमें आप क्या समझते हैं?' ठाकुर बोले कि 'सायंकालके समय वानर बड़ी शान्तिसे चुपचाप बैठ जाते हैं, परन्तु सोचा यही करते हैं कि अमुक बुढ़ियाके बगीचेमें खीरा लटक रहा है, कल वहाँ जाकर उसे तोड़ेंगे या अमुक स्थानपर रास्तेमें एक लौकी देखी थी, कल सवेरे ही जाकर उसे चुरा लेंगे—इसी तरहकी यह बात है। ऊपरसे लोग ध्यानावस्थित और शान्त दिखायी देते हैं, परन्तु चित्तमें यही उधेड़-बुन लगी रहती है कि क्रय-विक्रयमें किस प्रकार धन कमाना चाहिये।' यह बात उन्होंने अत्यन्त सरल और शुद्धभावसे मुसकराते हुए कही थी। उनके मनमें लेशमात्र भी द्वेषभाव नहीं था, इस कारण उनके वचनोंका उपस्थित समाजपर बड़ा प्रभाव पड़ा। ठाकुरको किसी धर्म-मार्गसे द्वेष नहीं था। परन्तु वह चाहते थे कि धार्मिक सम्प्रदायोंमें सरलता, पवित्रता और सहिष्णुता अवश्य होनी चाहिये। एक दिन उन्होंने ब्राह्मसत्सङ्गमें कहा कि 'सच्चे हृदयसे काम किये जाओ, परन्तु यह मत समझो कि केवल तुम्हारा मार्ग ही सत्य है, और सब असत्य है।'

ब्राह्म लोगोंसे समागम होनेपर ठाकुरको अंग्रेजी पढ़े हुए युवकोंके विचारोंका परिचय मिल गया। इससे वह भलीभाँति जान गये कि इन लोगोंपर पाश्चात्य सभ्यता तथा विचारोंका बहुत प्रभाव पड़ा है। श्रीरामकृष्ण स्वयं प्राचीन भारतीय वातावरणमें ही पले थे, वैसी ही शिक्षा पायी थी और महा कठिन साधनाओंमें युवावस्था बितायी थी, इस कारण वह पाश्चात्य विचारोंसे नितान्त अनभिज्ञ थे। वह पक्के हिन्दू थे। त्याग-वैराग्यको ही वह धर्मका मुख्य अंग मानते थे। ब्राह्मकी संगतिसे ही पहली बार उन्हें अर्वाचीन भारतवासियोंके मनोभावका परिचय मिला। भारतीय सिद्धान्तोंको उनके हृदयमें जमानेके लिये ठाकुरने बड़े प्रेमभावसे अपने उपदेशों और अपने अनुभवके बलसे ब्राह्म युवकोंको शिक्षा देनी शुरू की। विवेक, वैराग्य, भगवान्में विश्वास, निष्काम कर्म, स्वधर्ममें श्रद्धा और एकाग्रतासे धर्मपालन करना इत्यादि विषयोंपर उनके बारंबार उपदेश हुआ करते थे।

(११)

शिष्योंका समागम

श्रीकेशवचन्द्र सेनके पास बहुत-से युवक आया करते थे। वे नवविधान ब्राह्मसमाजके सदस्य तो नहीं थे, परन्तु केशवबाबूके बड़े भक्त थे और उनके सत्सङ्गसे आध्यात्मिक उन्नतिकी आशा रखते थे। वे प्राचीन सभ्यता, धर्म तथा जाति-बन्धनको तिलाञ्जलि दे चुके थे। पाश्चात्य विज्ञान तथा विचारोंने उनके चित्तको मोह लिया था। ऐसी अवस्थामें श्रीरामकृष्णके उपदेशोंका प्रभाव उनके मनपर पड़ना कुछ असम्भव-सा प्रतीत होता था। परन्तु केशवचन्द्रकी श्रीरामकृष्णमें श्रद्धा-भक्ति देखकर उनके मनमें भी विचार उत्पन्न होने लगा कि श्रीरामकृष्णमें जरूर कुछ विशेषता है, जिसने केशवबाबूको भी आकर्षित कर लिया है। इसलिये वे नवयुवक भी क्रमशः ठाकुरकी ओर आकर्षित होने लगे।

फूल जब खिलता है तो अपनी मस्त खुशबूसे सारे बगीचेको भर देता है, फिर भ्रमरादि मधुलोलुप जीव चारों ओरसे जुटने लगते हैं और मधुपान कर आनन्द पाते हैं। इसी प्रकार रामकृष्णका हृदयकमल जब घोर तपस्या और नाना प्रकारकी

कठिन साधनाओंसे प्रफुल्लित हो उठा तो उसकी सुन्दरता और मनको लुभानेवाली महक स्वभावतः चारों ओर फैल गयी। इससे बिना बुलाये ही भक्तलोग, इस अपूर्व भक्ति-ज्ञान-वैराग्यकी सुगन्धसे आकर्षित होकर आने लगे और अमृतका पानकर जीवन सफल करने लगे।

रामचन्द्र दत्त

कलकत्ता-निवासी रामचन्द्र दत्त और उनके चचेरे भाई मनमोहन सबसे पहले श्रीरामकृष्णसे मिलने आये। रामचन्द्र डाक्टर थे और उस जमानेके नवयुवकोंकी भाँति नास्तिक थे, उनका चित्त सदैव अस्थिर और अशान्त रहा करता था। केशवचन्द्रके मासिक पत्रद्वारा जब उन्हें ठाकुरका कुछ हाल मालूम हुआ तो वह अपने भाईके साथ उनसे मिलने गये। श्रीरामकृष्णके अहैतुक प्रेमने उनके मनको लुभा लिया और वह प्रति रविवारको दक्षिणेश्वरमें जाने लगे। इस सत्सङ्गसे उनके मनमें वैराग्य उत्पन्न होने लगा और भगवत्-चर्चामें भी रुचि बढ़ने लगी। धीरे-धीरे वह अपने इष्ट-मित्रोंको भी अपने साथ लाने लगे। इस तरह प्रत्येक रविवारको एक छोटी-सी भक्तमण्डली इकट्ठी होने लगी। कभी-कभी वे लोग ठाकुरको कलकत्ते अपने घर भी ले जाते। उस सत्सङ्गसे आस-पासके रहनेवाले सज्जन भी श्रीरामकृष्णसे परिचित होने लगे तथा ठाकुरके सारगर्भित वचनामृतका पानकर आनन्द प्राप्त करने लगे।

यह कहा जा चुका है कि रामचन्द्र दत्त नितान्त ही देहात्मवादी नास्तिक थे। परन्तु श्रीरामकृष्णके सत्सङ्गसे उनके विचार परिवर्तित होने लगे। एक दिन उन्होंने ठाकुरसे पूछा

कि—'महाशय ! क्या वास्तवमें ईश्वरका अस्तित्व है ?' ठाकुरने कहा—'निःसन्देह । यद्यपि दिनमें तारे नहीं दीखते, परन्तु इससे उनका अस्तित्व लुप्त नहीं होता । दूधमें मक्खन मौजूद है, उसे दूधसे न्यारा करनेके लिये बिलोना पड़ेगा । इसी प्रकार परमेश्वरका अनुभव करनेके लिये साधनाकी जरूरत है । भगवान् अवश्य हैं, पर अनुभवगम्य हैं ।' रामचन्द्रने पूछा—'क्या मैं इसी जीवनमें उनका अनुभव कर सकता हूँ ?' ठाकुरने उत्तर दिया—'मनुष्यकी तीव्र इच्छा अवश्य पूरी होती है, श्रद्धा और विश्वास होना चाहिये ।' रामचन्द्रने फिर पूछा कि—'भगवन् ! स्वयं अनुभव हुए बिना विश्वास कैसे हो सकता है ?' ठाकुरने कहा, 'सन्निपातज्वरसे पीड़ित रोगीकी इच्छा घड़ों पानी पीने और सेरों भोजन करनेकी होती है । परन्तु वैद्य न तो उसकी इच्छाकी परवा करता है और न रोगीके कहनेके अनुसार ओषधि ही देता है ।'

इस सत्सङ्गसे रामचन्द्रका मन धीरे-धीरे शान्त होने लगा । वैराग्यकी मात्रा भी बढ़ने लगी । एक दिन उन्होंने श्रीरामकृष्णसे संन्यास-दीक्षा लेनेकी इच्छा प्रकट की । ठाकुरने कहा कि 'कोई काम उतावलीमें नहीं करना चाहिये । यदि तुम घर-बार त्याग दोगे तो तुम्हारे कुटुम्बका पालन कौन करेगा ? सब कुछ ईश्वरकी इच्छापर छोड़ दो । गृहस्थ-त्यागसे लाभ ही क्या है ? गृहस्थाश्रम एक तरहका किला है, किलेमें बैठकर शत्रुसे युद्ध सुगमतासे किया जा सकता है । जब तुम्हारा मन तीन चौथाई ईश्वरमें लग जायगा, तब संन्यासके अधिकारी बनोगे ।'

एक दिन सन्ध्या-समय रामचन्द्र दक्षिणेश्वर गये। ठाकुर रातके दस बजेतक उन्हें उपदेश देते रहे, तत्पश्चात् रामचन्द्र जाने लगे, परन्तु घरके बाहर जाकर खड़े रह गये। कुछ देरमें ठाकुर वहाँ जा पहुँचे और रामचन्द्रको वहाँ खड़े देखकर बोले कि 'अब क्या चाहते हो ?' रामचन्द्र स्तम्भित हो गये और सोचने लगे कि द्रव्य, ऐश्वर्य, सिद्धि आदि सब पदार्थ तुच्छ हैं, क्या माँगूँ ? प्रेमपूर्ण हृदयसे कहने लगे कि 'भगवन् ! मैं नहीं जानता कि क्या माँगूँ ? सब कुछ आपकी इच्छापर छोड़ता हूँ।' ठाकुरने कहा कि 'मैंने तुझे स्वप्नमें जो मन्त्र दिया था वह मुझे वापस दे दे।' रामचन्द्रने ऐसा ही किया और वह उनके चरणों-पर गिर गये। श्रीरामकृष्णने अपने पैरका अँगूठा उनके सिरसे छुआ दिया। वह अचेत हो कितनी ही देर वहीं पड़े रहे, फिर उठ खड़े हुए। ठाकुरने कहा कि 'यदि कुछ देखनेकी इच्छा है तो मेरी ओर देखो।' रामचन्द्रने उनकी ओर देखा तो उनमें साक्षात् अपने इष्टदेवका दर्शन किया। ठाकुरने कहा कि 'अब तुझे कोई साधना करनेकी जरूरत नहीं, केवल कभी-कभी यहाँ आ जाया करना और एक पैसेकी कुछ भेंट लेते आया करना।'

रामचन्द्र दत्तका एक सुरेन्द्र नामक मित्र था। वह भी अविश्वासी युवक था। एक दिन वह सुरेन्द्रको भी अपने साथ ले गये। श्रीरामकृष्ण उस समय एक सज्जनसे कह रहे थे कि मनुष्य बन्दरके बच्चेकी तरह क्यों व्यवहार करता है, बिल्लीके बच्चेकी भाँति बर्ताव क्यों नहीं करता ? बन्दरका बच्चा अपने पुरुषार्थसे कूदकर माँकी पीठपर जा बैठता है, कभी माँके उछलनेपर गिर भी पड़ता है और वही माँको पकड़े भी रहता है, परन्तु बिल्लीका

बच्चा कुछ नहीं करता, जब उसकी माँ उसे कहीं ले जाना चाहती है तो उसकी गरदन मुँहसे पकड़कर इच्छानुसार जहाँ चाहती है, ले जाती है, इससे उसके गिरनेकी कुछ भी सम्भावना नहीं रहती। स्वयं पुरुषार्थ करनेमें और आत्म-समर्पणमें यही भेद है।' इस वातका सुरेन्द्रके मनपर बहुत प्रभाव पड़ा। तबसे वह जगदीश्वरी भगवतीकी अनन्यशरण हो गया, जिससे उसका मन शान्त और शक्ति-सम्पन्न होने लगा। अब उसे श्रीरामकृष्णमें श्रद्धा हो गयी और प्रति रविवारको वह भी उनके पास जाने लगा। कभी-कभी सुरेन्द्रका मन विषयोंकी तरफ झुक जाता था; उस समय वह लज्जासे ठाकुरके सामने जानेसे झिझकता और वहाँ जाना बंद कर देता। एक वार जब ठाकुरने किसीसे उसके न आनेका कारण पूछा तो मालूम हुआ कि वह फिर कुसङ्गमें पड़ गया है। यह जानकर उन्होंने कहा कि 'उसमें अभी विषयेच्छा बाकी है, कुछ समयतक भोग करके अपनी इच्छा पूरी कर लेनेके बाद वह आप ही शुद्ध हो जायगा।' कई दिन पीछे वह श्रीरामकृष्णके पास आया और चुपकेसे दूर कोनेमें जा बैठा। ठाकुरने उसे देख लिया। उन्होंने उसको प्यारसे अपने पास बैठनेको कहा और फिर वह कुछ अर्ध-बाह्यज्ञानकी अवस्थामें कहने लगे कि 'जब कोई अपवित्र और अनुचित जगह जाना हो तो भगवती माँको क्यों नहीं अपने साथ ले लिया जाय, इससे मनुष्य बहुत-से कुकर्मोंसे वच सकता है।' इस वाक्यसे सुरेन्द्रको कुमार्गसे बचनेका एक नया उपाय मिल गया। तबसे दोनोंका परस्पर प्रेम बढ़ने लगा। ठाकुर भी कभी-कभी उसके घर चले जाते थे। अब सुरेन्द्र ठाकुरके अन्तरंग भक्तोंमें गिना जाने लगा। वह अपना धन ठाकुरकी सेवामें

खर्च करनेमें अपना सौभाग्य समझता था और जब कभी भक्त-मण्डली रात-दिन दक्षिणेश्वरमें रहने लगती तो वह उसके खर्चका सारा भार स्वयं अपने ऊपर ले लेता था।

सुरेन्द्रको मदिरा पीनेकी लत थी और वह उससे नहीं छूटती थी। उसके मित्र उसे बहुतेरा समझाते, परन्तु उसपर कुछ भी असर न होता था। वह शक्तिका उपासक था, इस कारण वह मदिराको बुरा भी नहीं समझता था। वह यह भी कहा करता था कि ठाकुर जानते हैं कि मैं मदिरा पीता हूँ, यदि वह कहेंगे तो मैं तुरन्त छोड़ दूँगा। रामचन्द्र दत्त उसे एक दिन दक्षिणेश्वर ले गये। सुरेन्द्रने कहा कि 'तुम मदिराका कुछ जिक्र न छेड़ना; यदि वह स्वयं मुझे मना करेंगे तो मैं फौरन छोड़ दूँगा।' जैसे ही वे ठाकुरके पास पहुँचे वैसे ही उन्होंने कहा कि 'सुरेश! (ठाकुर उसे इसी नामसे पुकारते थे) तू मदिराको मदिरा जानकर क्यों पीता है? भगवतीको समर्पण कर पीछेसे उनका प्रसाद पान किया कर, परन्तु इतना न पी कि पागल हो जाय। पहले तुझे मामूली उत्तेजनाका अनुभव होगा, फिर आध्यात्मिक आनन्दका भान होने लगेगा।' वह ऐसा ही करने लगा, इससे उसके हृदयमें दिनोंदिन प्रेम-भक्ति बढ़ने लगी। वह सदैव 'माँ' के ही चिन्तनमें रहने लगा। कभी-कभी तो वह ध्यानमें बेसुध हो जाया करता था। मदिराका बुरा असर उसपर कुछ न हुआ और अन्तमें मदिरा छूट ही गयी।

लाटू

लाटू विहार-प्रान्तके छपरा जिलेका रहनेवाला एक युवक था। वह कलकत्तेमें आजीविका ढूँढ़ने आया था और रामचन्द्र दत्तके

यहाँ नौकर हो गया था। कुछ दिनों बाद उसने श्रीरामकृष्णका नाम सुना। उनसे मिलनेकी तीव्र इच्छा होनेके कारण वह एक दिन दक्षिणेश्वर गया। ठाकुरने उससे बड़े प्रेमसे बातचीत की और कुछ प्रसाद भी दिया। लाटू ठाकुरके प्रेम-व्यवहारसे बड़ा ही प्रसन्न हुआ। विदा होते समय ठाकुरने उसे फिर आनेको कहा। रामबाबू जब उसे ठाकुरके पास कुछ मिठाई, फलादि देनेको भेजा करते थे, तो वह बड़ा ही प्रसन्न होता था। एक दिन ठाकुरने रामबाबूसे कहा कि 'लाटूको हमारे पास ही रहने दो।' रामचन्द्रने बड़ी खुशीसे इसे स्वीकार किया। श्रीरामकृष्णने पहली मुलाकात-हीमें उसकी धार्मिक भावनाको पहचान ली थी, इसीलिये वह चाहते थे कि वह मेरे पास रहकर आध्यात्मिक उन्नति करे। लाटू यह अपूर्व अवसर प्राप्तकर बड़ा ही सन्तुष्ट हुआ और बड़े प्रेमसे दक्षिणेश्वरके कीर्तनमें भाग लेने लगा। वह कीर्तनमें तन्मय हो जाया करता था। ठाकुरकी शिक्षासे वह पर्याप्त उन्नति करने लगा। यद्यपि वह नितान्त विद्याविहीन था तथापि वह एक महान् पुरुष बना और ठाकुरके मुख्य शिष्योंमें गिना जाने लगा।

राखाल

राखालचन्द्र घोष सन् १८६२ में बसीरहाटके एक धनी जमींदारके घरमें पैदा हुए थे। बचपनसे ही इनकी धर्मकी ओर रुचि थी और प्रायः खेलमें भी देवी-देवताओंकी पूजा किया करते थे। उस समयकी प्रथाके अनुसार बाल्यावस्थामें ही उनका विवाह हो गया था। राखाल सन् १८८० में पहली बार दक्षिणेश्वरमें आये थे। धीरे-धीरे उनको ठाकुरसे घनिष्ठ प्रेम हो गया और

वह उन्हें पिता-तुल्य मानने लगे। पीछे तो तीन-चार वर्षके बालकके सदृश वह निःसंकोचभावसे उनकी गोदमें जा बैठते। ठाकुर भी उन्हें बहुत प्यार करते। उन्हें मिठाई देते और माँकी तरह उनके साथ खेला करते। गृहस्थ होनेके कारण राखालके पिता उनका बार-बार दक्षिणेश्वर जाना पसंद नहीं करते थे, इसलिये उन्होंने कई बार उनको मना किया। किन्तु एक दिन जब वह स्वयं दक्षिणेश्वर गये और देखा कि कलकत्तेके अनेकों प्रतिष्ठित सज्जन वहाँ आते-जाते हैं तो वह सन्तुष्ट हो गये। फिर उन्होंने कोई आपत्ति न की। राखालकी माँ भी श्रीरामकृष्णको बहुत मानने लगी, अपनी पुत्रवधूको साथ लेकर कभी-कभी वह भी दक्षिणेश्वर जाया करती थी। राखालकी स्त्रीके चिह्नोंसे ठाकुरने जान लिया कि वह भी बड़ी धार्मिक और सुशीला है और राखालकी आध्यात्मिक उन्नतिमें कुछ बाधा न डालेगी। राखालमें अहंभाव बिल्कुल नहीं था। उनकी प्रकृति सरल और बालकों-जैसी थी। वह सदैव ठाकुरके साथ ही रहते थे, जहाँ कहीं वह जाते, साथ जाया करते। ठाकुर उन्हें कभी-कभी अपने हाथसे भोजन खिलाया करते थे और उन्हें पुत्रवत् मानते थे। जब कोई श्रीरामकृष्णसे पूछता कि महाराज, त्रिगुणातीत मनुष्यके लक्षण क्या हैं, तो ठाकुर राखालका उदाहरण दिया करते थे। वह उन्हें 'नित्यसिद्ध' मानते थे और उनकी सब प्रकारसे रक्षा करते थे। कुछ समय बाद राखाल गृहस्थाश्रमको त्यागकर श्रीरामकृष्णके साथ ही रहने लगे। पीछेसे यही स्वामी ब्रह्मानन्दके नामसे विख्यात हुए। यही रामकृष्ण-मिशनके प्रथम प्रधान बनाये गये थे।

(१२)

नरेन्द्रनाथ दत्त

नरेन्द्रनाथका जन्म कलकत्तेके प्रसिद्ध दत्त-परिवारमें सन् १८६३ में हुआ था। उनके पिता सुशिक्षित, धर्म-परायण, दानी और गान-विद्यामें निपुण थे। कलकत्ता हाईकोर्टके प्रसिद्ध वकील होनेके कारण इन्होंने खूब धन कमाया और उसे मुक्तहस्त होकर दानमें खर्च किया। नरेन्द्र बचपनसे ही एक असाधारण बालक थे। उनकी बुद्धि तीक्ष्ण, विचार-शक्ति अद्भुत और शरीर बलिष्ठ [illegible] भी कोमल और दया[illegible]तासे पूर्ण था।

लड़कपनसे ही उनमें विचारकी गम्भीरता और ध्यानकी अपूर्व शक्ति थी। अपने सहपाठियोंमें भी वह सदैव अग्रणी रहा करते थे। साहित्य तथा दर्शनशास्त्रसे नरेन्द्रको अत्यन्त प्रीति थी। महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुरके पास अन्यान्य सत्यान्वेषी युवकोंकी भाँति वह भी जाया करते थे। महर्षि पहलेहीसे उनकी योग्यताको समझ गये थे, उनमें योगबलकी असाधारण शक्ति देखकर वह सदैव उनके विचारोंमें सहायता दिया करते थे। अधिक तर्कशील होनेके कारण भगवान्‌के अस्तित्वमें उनको सन्देह होने लगा था। बुद्धिकी तीव्रता तथा विचार-शक्तिकी प्रबलताद्वारा वह हमेशा सृष्टिके रहस्यकी खोजमें लगे रहते थे। इसलिये वह सत्य वस्तुकी प्राप्तिकी अभिलाषा-से ब्राह्म-समाजमें जाने लगे, परन्तु वहाँ भी उन्हें निराशा ही हुई, क्योंकि जब उन्होंने महर्षिसे पूछा कि 'महाशय! क्या आपने भगवान्‌का साक्षात्कार किया है?' तो उन्हें उनसे स्पष्ट और निःसन्दिग्ध उत्तर नहीं मिला। इन्हीं दिनों कलकत्तेके एक सज्जन-के घर सन् १८८० के नवम्बर मासमें नरेन्द्रकी परमहंस श्रीराम-कृष्णसे भेंट हुई। ठाकुरने उन होनहार युवककी आकृति देखकर ही उनकी असाधारण योग्यताको ताड़ लिया; इसलिये उन्होंने उन्हें दक्षिणेश्वर आनेको कहा। इन्हीं दिनों नरेन्द्रने एफ० ए० पास किया था। पिता उनके विवाहकी कोशिश करने लगे, परन्तु नरेन्द्रके हठके कारण वह सफल न हो सके।

एक दिन एक मित्रने कहा, 'नरेन्द्र! तुम बिल्कुल नास्तिक हो, मेरे साथ दक्षिणेश्वर चलो, वहाँ एक परमहंस रहते हैं, वह तुम्हारी सारी शङ्काओंका पूरी तरहसे समाधान कर सकेंगे।'

नरेन्द्रने उसके साथ दक्षिणेश्वर पहुँचकर देखा कि एक पागल-सा आदमी बैठा है। ठाकुरने प्रेमके साथ उन्हें बैठनेको कहा और पूछा, 'क्या तुम कुछ गाना-बजाना जानते हो?' नरेन्द्रने बड़े ही मधुर स्वरमें ठाकुरको दो-तीन पद सुनाये। उनके मित्रने ठाकुरसे कहा कि 'महाराज! यह घोर नास्तिक और देहात्मवादी है।' ठाकुरने कहा, 'नास्तिक भाव अच्छा नहीं।' इसपर नरेन्द्रने ठाकुरसे कहा कि 'महाशय! क्या आपने कभी परमेश्वरको देखा है?' ठाकुरने दृढ़तासे कहा, 'हाँ देखा है।' इस आशातीत स्पष्ट उत्तरको सुन नरेन्द्र बोले, 'क्या आप मुझे भी भगवान्को दिखा सकते हैं?' श्रीरामकृष्णने कहा कि 'हाँ, दिखा सकता हूँ। कल अकेले ही यहाँ आओ।' नरेन्द्रने इसे स्वीकार किया।

यद्यपि नरेन्द्रको विश्वास नहीं था कि ठाकुर भगवान्को दिखा सकेंगे, तथापि वह कौतूहलवश दूसरे दिन वहाँ पहुँचे, जाकर देखते हैं कि ठाकुर तख्तपर बैठ किसीसे कुछ बातचीत-सी कर रहे हैं, परन्तु वहाँ दूसरा कोई व्यक्ति नहीं है। नरेन्द्रने समझा कि अवश्य ही यह कोई पागल है। वह उनसे कुछ दूरपर जा बैठे। ठाकुरने उन्हें पास बैठनेको कहा; तब वह तख्तके पास जाकर बैठ गये। श्रीरामकृष्णने जरा झुककर उनके हृदयको स्पर्श कर दिया। उस समयकी दशाका हाल नरेन्द्र पीछे इस तरह कहा करते थे कि 'उस समय दीवार, घर, नदी और पृथ्वी क्रमशः अन्तर्धान होने लगे और अन्तमें उस शून्यमें केवल मैं और वह ब्राह्मण ये दो ही रह गये।' ठाकुर कहा करते थे कि उस समय नरेन्द्रने कहा था कि 'महाशय! क्या कर रहे हो, मेरे माँ, भाई

भी हैं जिनकी मुझे देख-भाल करनी है।' इस घटनाके बाद नरेन्द्रको पन्द्रह-बीस दिनोंतक सर्वत्र ब्रह्म-ही-ब्रह्म दिखायी पड़ता रहा, संसारके सभी जड़ पदार्थ चैतन्य दिखायी देते रहे। इस घटनासे उसे यह निश्चय हो गया कि यह ब्राह्मण कोई साधारण मनुष्य नहीं है। ठाकुरको इस उन्नीस वर्षके युवकसे अत्यन्त प्रीति बढ़ गयी, यहाँतक कि जब कई दिनतक वह दक्षिणेश्वर न आते तो ठाकुर दूसरे आनेवाले लोगोंसे उनका हाल पूछा करते और उन्हें वहाँ आनेके लिये कहला भेजते।

नरेन्द्रके पिताका देहान्त हुए एक वर्ष हो चुका था। वह बहुत ऋण छोड़कर मरे थे। उन्हें रहनेभरके लिये केवल एक मकान बचा था, पास कुछ भी धन नहीं था। बल्कि माँ और भाइयोंके पालन-पोषणका सारा भार भी उन्हींके सिरपर था। बड़ी कठिनाईसे गुजारा होता था। कभी-कभी तो नरेन्द्रको निराहार ही रहना पड़ता था, यहाँतक कि एक बार तो उन्हें लगातार दो दिनतक उपवास करना पड़ा। उसी शामको वह अपने एक मित्रके यहाँ गये, वहीं ठाकुर भी आये हुए थे। वह उस समय भोजन कर रहे थे। लाटू (ठाकुरका एक शिष्य) उनके पास बैठा खा रहा था। नरेन्द्रको देखकर लाटूने दाल-भातका एक ग्रास मजाकमें उनके मुँहमें ठूँस दिया। उस एक ग्रासके खाते ही उन्हें ऐसा जान पड़ा मानो पेट भर गया है। वह समझ गये कि ठाकुरने ही लाटूके द्वारा यह चरित्र किया है। नरेन्द्रकी आर्थिक दशा दिनों-दिन बिगड़ती गयी। ऊपरसे एक मुकद्दमा लग गया। वकीलकी फीस देनेको घरमें एक कौड़ी भी न थी। उधार भी कहींसे नहीं

मिलता था और न भोजनके लिये ही घरमें कुछ था । इस चिन्ता-जनक अवस्थामें वह दक्षिणेश्वर गये । ठाकुरने जब उनके चेहरेपर विषादकी छाया देखी तो उनसे इस चिन्ताका कारण पूछा । नरेन्द्र-ने सब वृत्तान्त सुना दिया । ठाकुरने कहा कि 'माँके मन्दिरमें जाकर उससे सहायताके लिये प्रार्थना कर ।' नरेन्द्र मन्दिरमें गये और भगवतीकी पूजा कर वापस लौट आये । ठाकुरने पूछा कि 'क्या किया ?' नरेन्द्रने कहा कि 'मैंने माँके चरणकमलोंकी पूजा करके उनसे केवल शुद्ध भक्ति माँगी ।' ठाकुरने कहा कि 'फिर जा और भगवतीसे धनकी प्रार्थना कर ।' वह फिर गये । कुछ समय बाद वापस आये और पूछनेपर बोले कि 'इस बार मैंने और भी अधिक वैराग्य तथा भक्ति ही माँगी ।' इसपर ठाकुर बड़े ही सन्तुष्ट हुए और बोले कि 'बेटा ! तूने बहुत ही अच्छा किया । अबसे तेरे कुटुम्बियोंके जीवन-निर्वाहके लिये धनकी कमी नहीं रहेगी ।' तबसे निर्वाहमात्रके लिये उन्हें धनाभाव नहीं हुआ ।

नरेन्द्रके चित्तमें उदारता, निःस्वार्थता और दूसरोंके साथ सहानुभूतिका भाव बहुत ज्यादा था । वह जब किसी वस्त्रहीन भिखारीको गलीमें माँगते देखते तो ऊपर जाकर माँकी अच्छी-से-अच्छी साड़ी लाकर उसे दे देते । सहिष्णुता भी इतनी तीव्र थी कि यदि किसीसे कोई दोष हो जाता तो यही कहते कि भूल करते-करते ही हम अपने जीवनको उन्नत बना सकते हैं । शशि महाराज (नरेन्द्रके गुरुभाई) कहा करते थे कि 'एक दिन नरेन्द्र हठसे मुझे अपने घर ले गये । उनकी माँने उनके लिये भोजन बना रक्खा था । मुझे बिना ही बतलाये उन्होंने अपना भोजन मुझे परोस दिया और स्वयं निराहार रह गये । सोनेके

समय रातको उन्होंने अपने मसहरीवाले बिछौनेपर मुझे सुला दिया। मुझे तो लेटते ही नींद आ गयी, प्रातःकाल जब मेरी आँखें खुलीं तो मैंने उन्हें निरी जमीनपर सोये पाया।'

नरेन्द्र जब कालेजमें पढ़ते थे तब दिन उनका पढ़नेमें लगता और रात ध्यानमें बीतती। इससे उनके सिरमें ऐसी पीड़ा हुई, जिससे कई महीनोंतक उन्होंने बिछौनेपर पड़े-पड़े बड़ी बेचैनीमें दिन काटे। जब ठाकुरने सुना तो स्वयं कलकत्ते नरेन्द्रके घरके निकट एक भक्तके घर गये और नरेन्द्रको बुला भेजा। जानेवालेने उनकी दशा देखकर वापस आ ठाकुरसे कहा कि 'नरेन्द्र तो चारपाईसे उठ ही नहीं सकता।' ठाकुरने कहा, 'उसे यहाँ आनेको कहो वह चला आयगा।' नरेन्द्र सन्देश पाते ही चले आये। ठाकुरने बड़े प्रेमसे उनके सिरपर हाथ फेरा और कहा, 'बेटा! क्या तेरे सिरमें दर्द है?' उसी वक्त उनका दर्द चला गया।

श्रीरामकृष्ण कहा करते थे कि सब शिष्योंमेंसे नरेन्द्र ही मुझे पूरी तरहसे पहचान सकेगा। कभी-कभी नरेन्द्रको जब ठाकुरके विषयमें संशय आ घेरता तो वह बहुत रोते। ठाकुर सदैव उन्हें आश्वासन दिया करते।

अन्य शिष्य

धीरे-धीरे अन्य युवक भी श्रीरामकृष्णके पास आने लगे। केशवचन्द्रके अनुयायियोंमेंसे कई युवक आये। शशि, शरत्, योगेन और तारक भी उसी समाजके सदस्य थे। नरेन्द्र आदि

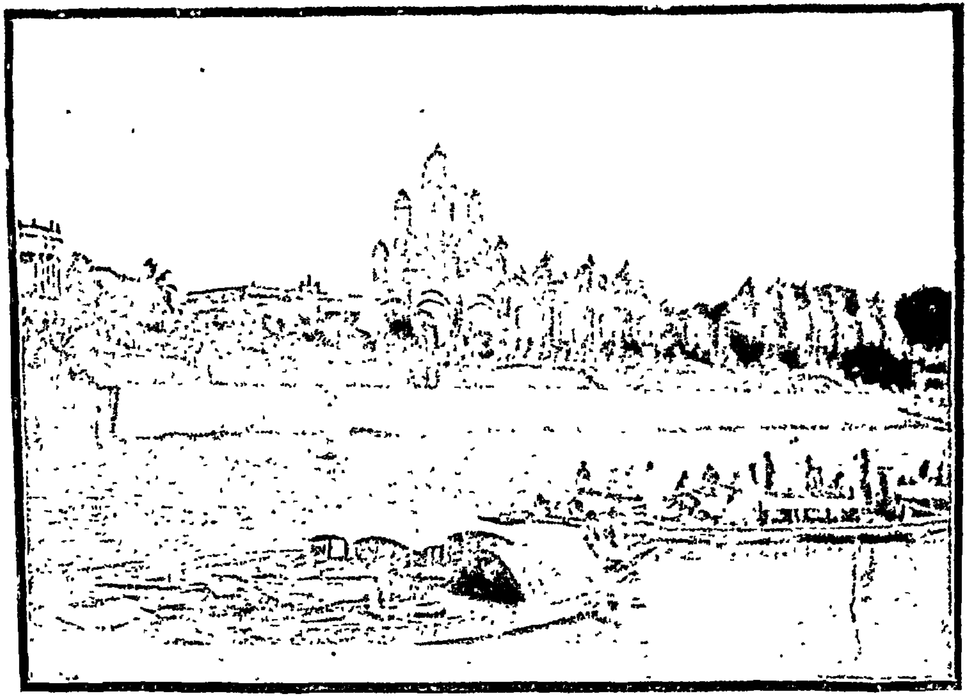

श्रीदक्षिणेश्वर मन्दिर

स्वामी विवेकानन्द

नवयुवकोंकी भाँति ये भी ठाकुरके अद्भुत गुणोंसे आकर्षित हो उनके अन्तरंग भक्तोंमें शामिल हो गये। गोपाल-दादा व्यापारी थे, अन्य शिष्योंसे आयुमें वह बहुत बड़े थे। धर्मपत्नीके देहान्त हो जानेके कारण मनकी वेदनाको दूर करनेके निमित्त वह ठाकुरके पास आये थे और उन्हींके होकर रह गये।

राखालके सहपाठी बाबूराम, हरि, गंगाधर, काली, तुलसी, सुबोध, निरञ्जन आदि एक दूसरेके मित्र और समवयस्क थे। ये सब एक-एक करके ठाकुरके पास आने लगे और अपना जन्म सफल करने लगे। इन सब शिष्योंमेंसे थोड़े-से दक्षिणेश्वरमें रहते थे, बाकी अपने-अपने घरोंपर रहा करते थे और अवकाश मिलनेपर ठाकुरके पास आते-जाते रहते थे। इनमेंसे बहुत-से कालेजोंमें पढ़ते थे। इनके पिता इनके दक्षिणेश्वर जानेसे अप्रसन्न रहते थे, क्योंकि इन लोगोंका मन वहाँ जानेसे विद्याध्ययनकी ओरसे हटने लगा, जिससे कई लड़के तो परीक्षामें उत्तीर्ण ही न हो सके। ठाकुरके देहावसानके बाद इन्होंने विद्याध्ययनकी कमीको पूरा कर लिया। ठाकुरने स्वयं किसीको संन्यास-दीक्षा नहीं दी थी, उन्होंने इन युवकोंके मनको भगवान्‌की ओर लगाकर सीधे मार्गपर चला दिया, जिससे दिनोंदिन उनकी आत्मोन्नति होती गयी। ठाकुरके समाधिस्थ होनेके पश्चात् नरेन्द्रने सबको संन्यास दिया और वही सबके नायक बने। यही नरेन्द्र दिग्विजयी वेदान्तकेसरी स्वामी विवेकानन्दके नामसे संसारमें विख्यात हुए।

(१२)

महेन्द्रनाथ गुप्त

महेन्द्रनाथ ब्राह्मसमाजके अनुयायी थे और कलकत्तेमें विद्यासागर हाईस्कूलके हेडमास्टर थे। यह गृहस्थ थे और अपने परिवारसहित कलकत्तेमें ही रहा करते थे। मार्च सन् १८८२ में अकस्मात् ठाकुरसे इनकी भेंट हुई। रानी राशमणिके बगीचेमें घूमते-घूमते इन्होंने ठाकुरको कमरेमें बैठे देखा। यह वहाँ गये और उनको प्रणाम कर बैठ गये। बातें करते-करते श्रीरामकृष्णने पूछा कि 'भगवान्‌की साकार तथा निराकार अवस्थाओंमेंसे तुम्हें कौन-सी अच्छी लगती है?' महेन्द्रबाबूने कहा, 'निराकार।' ठाकुरने कहा कि 'एक आदर्शपर दृढ़तासे चले जाना श्रेष्ठ है।

निराकार भगवान्‌का चिन्तन भी अच्छा है, परन्तु यह धारणा न बनी रहे कि परमेश्वरकी केवल यही अवस्था सत्य है। क्योंकि भगवान् निराकार भी हैं और साकार भी। तुम्हें जो प्रिय हो उसीपर आरूढ़ रहो।' महेन्द्रको यह बात सुनकर आश्चर्य हुआ, क्योंकि इन्होंने भगवान्‌की दो अवस्थाओंका होना पहले कभी नहीं सुना था। पश्चात् महेन्द्र और ठाकुरमें इस प्रकार बातें होने लगीं—

महेन्द्र—मान भी लें कि भगवान् निराकार और साकार दोनों हैं, परन्तु वह मिट्टीकी मूर्ति तो कभी नहीं हो सकते?

ठाकुर—मिट्टीकी मूर्ति तो वह अवश्य नहीं हैं, वह तो चैतन्यज्ञानघन हैं।

महेन्द्र—इसलिये हमें मूर्तिपूजक लोगोंको बता देना चाहिये कि भगवान् मूर्ति नहीं हैं, उन लोगोंको मूर्त्तिमें विद्यमान ईश्वरको पूजना चाहिये।

ठाकुर—वाह! आजकलके लोगोंका यह फैशन हो गया है, वे दूसरोंको उपदेश देनेमें बड़े चतुर बनते हैं। पहले स्वयं अपनेको उपदेश दो, पीछे दूसरोंको सिखाओ। भगवान्‌ने ही यह सारी सृष्टि उत्पन्न की है, यह सब उन्हींकी विभूति है, वही इस चराचर जगत्‌के रक्षक तथा शिक्षक हैं, उन्होंने प्रजाके लिये यह सब कुछ रचा है। वह सबके अन्तर्यामी हैं। यदि मनुष्य मूर्त्तिको पूजते हैं तो क्या वह उनके हृदयके भावको नहीं जानते कि वह उन्हींकी आराधना करते हैं? तुम दूसरोंकी चिन्ता न करो, अपनी चिन्ता करो, भक्ति और ज्ञान प्राप्त करनेकी कोशिश करो।

ठाकुरके इन वचनोंसे महेन्द्रका हृदय जाग्रत् हो उठा और उनका दूसरोंको शिक्षा देनेका घमण्ड नष्ट हो गया, अहङ्काररूपी पिशाच भाग गया और तबसे फिर कभी इन्होंने ठाकुरसे तर्क-वितर्क नहीं किया।

ठाकुर—तुम मूर्त्ति-पूजाकी बात कह रहे थे। ईश्वरने ही अनेक प्रकारकी उपासनाके मार्ग भिन्न-भिन्न मनुष्योंकी प्रकृतियोंके अनुसार निर्माण किये हैं। माता बच्चोंको उनकी पाचन-शक्ति तथा रुचिके अनुकूल ही भोजन बनाकर देती है।

महेन्द्र—ठाकुर! मनुष्यका मन परमेश्वरमें किस तरह लग सकता है?

ठाकुर—साधकको सदैव उनके नाम और गुणोंका कीर्तन करना चाहिये। सत्संगमें रहना चाहिये। कुसंगसे सदा दूर रहना चाहिये, क्योंकि कुसंग मनको विक्षिप्त बनाता है। कभी-कभी एकान्तवास कर भजन-ध्यान करना भी आवश्यक है। इन साधनोंके बिना भगवान्में प्रीति होना महा कठिन है।

महेन्द्र—महाराज! गृहस्थको संसारमें कैसे रहना चाहिये?

ठाकुर—अपने गृहस्थ-धर्मोंका पालन करो, परन्तु मन ईश्वरमें लगाये रक्खो। अपने परिवारका पालन करो, परन्तु परिवारमें सबको परमेश्वरहीकी विभूति समझो, अपना ममत्व हटा लो। जैसे दासी मालिकके बच्चोंसे प्रीति तो रखती है, परन्तु वह सदैव इस बातको याद रखती है कि ये उसके नहीं हैं। यदि जगत्के पदार्थोंमें मन फँसाये रक्खोगे तो मन उनमें अधिकाधिक फँसेगा और तुम परमेश्वरको भूल जाओगे। भक्तिरूपी तेल हाथमें

लगाकर यदि विषयरूपी कटहलको काटोगे तो उसका वासनारूपी दूध तुम्हारे हाथोंमें नहीं चिपटेगा। भक्तिकी प्राप्ति एकान्तवाससे हो सकती है। जगत् जलकी भाँति है और मन दूधके समान; जब दोनों मिल जाते हैं तो साधारण मनुष्यके लिये उन्हें अलग-अलग करना असम्भव हो जाता है। मनको विषयोंसे अलग रखनेका उपाय यह है कि पहले दूधका दही जमाकर उससे मक्खन निकाल लो, फिर उस माखनको सदैव ही पानीमें क्यों न डुबाये रक्खो, वह उसमें घुल-मिल नहीं सकता। इसी तरह पहले ज्ञान और भक्तिका माखन तैयार करके तब संसारके पदार्थोंको भोगो, फिर आसक्ति न रहेगी। यह भी सदैव ध्यानमें रखना चाहिये कि कामिनी और काञ्चन असत्य पदार्थ हैं। केवल भगवान् ही एक सत्य वस्तु हैं। इसीका नाम विवेक है।

महेन्द्र—महाशय ! क्या भगवान्‌का साक्षात्कार होना सम्भव है ?

ठाकुर—निःसन्देह !

महेन्द्र—भगवान्‌के दर्शन किस प्रकार हो सकते हैं ?

ठाकुर—यदि कोई शुद्ध हृदयसे रो-रोकर उन्हें पुकारे तो उसे उनके दर्शन अवश्य होंगे। मनुष्य जीवनमें धन-स्त्री-पुत्रके लिये अधीर हो रो-रोकर अपनी आँखोंसे घड़ों पानी बहा देता है परन्तु ईश्वरके लिये कौन रोता है ? उनके दर्शनकी उत्कण्ठा ज्यों-ज्यों तीव्र होती जायगी त्यों-ही-त्यों तुम सफलताकी ओर बढ़ते जाओगे। अतः सब कामनाओंको त्यागकर केवल उनके दर्शनकी ही कामना करो। सब सांसारिक पदार्थोंकी लालसा

छोड़कर उनसे मिलनेकी ही लालसा रक्खो, तब उनके दर्शन होंगे।

ठाकुरके इस वचनामृतको सुनकर महेन्द्रका हृदय शान्त और सन्तुष्ट हो गया। वह घर जाकर उनका ही चिन्तन करते रहे। श्रीरामकृष्णसे मिलकर महेन्द्रको जो आनन्द मिला, उससे उन्हें उनसे मिलनेकी उत्कण्ठा बढ़ती गयी और समय-समयपर वह उनके पास जाने लगे। कलकत्तेमें भी जब कभी वह ठाकुरके आनेकी खबर पाते, अवश्य वहाँ जाते। अब वह ठाकुरके अन्तरङ्ग शिष्योंमें शामिल हो गये; ठाकुर भी उनके साथ बड़े प्रेमका बर्ताव करने लगे। महेन्द्रने उनके वचनोंको लिखना आरम्भ कर दिया। सत्संगमें ठाकुर जो कुछ कहते उसको वह लिख लिया करते थे। इन्हीं महानुभावके परिश्रम और दूरदर्शिताका फल है कि आज असंख्य मनुष्योंको ठाकुरकी आध्यात्मिक वाणीका लाभ प्राप्त हो रहा है। 'श्रीरामकृष्णकथामृत' नामकी बंगला भाषाकी पुस्तकें चार जिल्दोंमें इस समय प्राप्य हैं तथा उन्हींका भावार्थ कुछ संक्षेपमें दो जिल्दोंमें अंग्रेजी भाषामें भी छपा हुआ है जिसका नाम Gospel of Sri Ramkrishna है।

पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागरसे वार्तालाप

श्रीरामकृष्णने बचपनसे ही विद्यासागर महाशयका नाम तथा उनके अनेक गुणोंकी चर्चा सुनी थी; इसलिये उनसे मिलनेकी इच्छासे वह ५ अगस्त सन् १८८२ को कुछ शिष्योंको साथ लेकर कलकत्ते गये। उनको घर आये देख पण्डितजीने उनका स्वागत किया और कुछ मिष्टान्न उनके सामने रक्खा, जिसे उन्होंने

शिष्योंके सहित गा लिया। तत्पश्चात् ठाकुरमें और उनमें इस प्रकार बातचीत हुई—

ठाकुर—आज मैंने सागरका दर्शन किया; अबतक तो नदी-नाले ही देखे थे, परन्तु आज सागरके देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ।

विद्यासागर—महाशय! यहाँसे तो आपको खारा पानी ही मिल सकेगा।

ठाकुर—नहीं नहीं, आप विद्याके सागर हैं, अविद्याके नहीं!

विद्यासागर—आपकी जो इच्छा हो सो कहिये।

ठाकुर—आप जो कर्म करते हैं वे सात्त्विक हैं, निष्काम हैं, क्योंकि दया सत्त्वगुणसे ही उत्पन्न होती है। जो काम दया-भावसे किये जाते हैं, राजसिक होते हुए भी वे सत्त्वगुणसे उत्पन्न होते हैं। शुकदेव आदि महात्माओंने लोक-कल्याणके लिये ही सांसारिक जीवोंको ब्रह्मोपदेश दिया था। आप लोगोंको विद्या और भोजन-दान दे रहे हैं। ये भगवत्प्राप्तिके साधन हैं और आप तो सिद्ध पुरुष ही हैं।

विद्यासागर—महाराज! मैं सिद्ध कैसे हूँ?

ठाकुर—आलू, बैंगन आदि तरकारियाँ सिद्ध होनेपर नरम हो जाती हैं। (यह नरमी ही सिद्धका लक्षण है) आपका हृदय दयाके प्रभावसे कोमल है।

विद्यासागर—परन्तु कुछ चीजें सिद्ध होनेसे उलटी सख्त हो जाती हैं, जैसे दालकी पीठी।

ठाकुर—नहीं नहीं, आप उस तरहके नहीं हैं। विषयासक्ति अविद्यासे पैदा होती है और दया, भक्ति तथा वैराग्य विद्यासे। ब्रह्म विद्या और अविद्या दोनोंसे परे है। वह अनिर्वचनीय है। वेद, पुराणादि शास्त्र उच्चारण किये जानेसे उच्छिष्ट हो गये हैं। एक ब्रह्म ही ऐसी वस्तु है जिसका स्वरूप आजतक जिह्वासे कहा नहीं जा सका।

विद्यासागर—आज मैंने बिल्कुल नयी बात सुनी है।

ठाकुर—लोग समझते हैं कि हमने ब्रह्मको जान लिया; परन्तु वे यह नहीं जानते कि ब्रह्म मन-वाणीका विषय नहीं। वह अगोचर है, अनिर्वचनीय है। समाधि-अवस्थामें ही उसका अनुभव होता है, जब कि मन-बुद्धि शान्त हो जाते हैं। ब्रह्मका यथार्थ वर्णन शब्दोंसे नहीं किया जा सकता। नमककी पुतली समुद्रकी थाह लेने जलमें घुसी और अंदर जाकर जलहीमें घुल-मिल गयी एवं अभिन्न हो गयी। अब थाह कौन ले?

उपस्थित लोगोंमेंसे एकने पूछा—क्या योगी समाधिके पीछे ब्रह्मका वर्णन नहीं कर सकता?

ठाकुर—शंकराचार्यने मनुष्योंको शिक्षा देनेके लिये थोड़ा-सा शुद्ध सात्त्विक अहंकार रख छोड़ा था, इसी कारण वह उपदेश दे सके। ब्रह्मसाक्षात्कारके बाद मनुष्य मौन रहता है, क्योंकि बुद्धिका कार्य तभीतक रहता है जबतक साक्षात्कार नहीं हुआ। घी जबतक पूर्णरूपसे नहीं पक जाता तबतक बोलता है, पकनेपर शान्त हो जाता है। पूरी छोड़नेसे फिर बोलने लगता है, पूरी पक जानेपर फिर शान्त हो जाता है। घड़ा जबतक

नहीं भर जाता तभीतक शब्द करता है। भर जानेपर शब्द बन्द हो जाता है, परन्तु जब उसमेंसे किसी दूसरे बरतनमें पानी डालो तो फिर शब्द होने लगता है। इसी प्रकार अनुभव-सिद्ध योगीकी अवस्था है। समाधिसे नीचे उतरकर लोकशिक्षाके निमित्त योगीको कुछ बोलना पड़ता है। (फिर ठाकुर उस ब्रह्मवित् पुरुपकी दशा बतलाने लगे) ब्रह्मवित् समस्त जगत्को ब्रह्मके ही रूपान्तरके रूपमें देखता है। सब धर्म-मार्ग सत्य हैं, भगवान्ने पृथक्-पृथक् मनुष्योंको न्यूनाधिक शक्ति दी है। चींटीसे ब्रह्मापर्यन्त सबमें ईश्वर विराजमान हैं। परन्तु किसीमें उनका विकास थोड़ा है, किसीमें ज्यादा। कोई एक आदमी दसको पछाड़ सकता है, तो दूसरा एकहीसे डरकर भाग जाता है। ऐसा न होता तो जनता आपका इतना मान न करती। क्या आपके सिरपर सींग लगे हैं? आपमें दया है, विद्या है, दूसरोंमें इतनी बात नहीं। इसीसे आपका सम्मान है। ठीक है न?

विद्यासागर उत्तरमें मुसकरा पड़े।

ठाकुर—केवल शब्द कण्ठस्थ कर लेनेसे कुछ लाभ नहीं, ईश्वर-प्राप्तिके लिये ही पुस्तकोंका पढ़ना है। केवल गीता पढ़नेसे पूरा लाभ नहीं, जबतक वैराग्य प्राप्तकर ब्रह्मका साक्षात्कार करनेकी चेष्टा न की जाय। गृहस्थ हो या संन्यासी, सभीको मनसे विषयासक्ति निकालनी होगी; तब ध्येयकी प्राप्ति होगी। समाधिके बाद भी योगीको भक्तिकी जरूरत है। अहंभाव समाधिमें तो लीन हो जाता है, परन्तु पीछे वह फिर आ घेरता है। यह अहङ्कार बड़ा प्रबल है, जबतक यह नष्ट नहीं होता, तबतक जीवके दुःखोंका

अन्त नहीं होता । बैल 'हम, हम' किया करता है, गाड़ीमें जुतता है, हलमें जोता जाता है और अनेक कष्ट भोगता है, परन्तु 'हम, हम' करना नहीं छोड़ता । फिर मरनेके बाद चमार उसके चामसे जूते बनाते हैं, ढोल मँढ़ते हैं, तब वह बे-दरदीसे पीटा जाता है । फिर भी उसके दुःखोंका अन्त नहीं होता जबतक कि उसकी आँतोंसे ताँत नहीं खींची जाती । जब वह धुनकीमें लगानेपर 'तुँ हुँ-तुँ हुँ' करने लगता है तब कहीं उसे छुटकारा मिलता है । रामने हनूमान्से पूछा कि 'तू मुझे क्या समझता है ?' हनूमान्ने कहा कि 'हे राम ! जबतक मुझमें अहङ्कार है तबतक मैं तुम्हें अंशी और अपनेको अंश मानता हूँ; तुम सेव्य हो, मैं सेवक ।' परम ज्ञानकी अवस्थामें 'तू मैं हूँ' और 'मैं तू है' ऐसा अनुभव होता है । कोई भी बुद्धिबलसे उसे जान नहीं सकता । दास्यभावसे भगवान्की आराधना करो और सर्वस्व उनको सौंप दो ।

फिर ठाकुरने विद्यासागरसे पूछा कि 'आपका भाव कैसा है ?'

विद्यासागर–(मुसकराते हुए) किसी दिन एकान्तमें आपसे कहूँगा ।

श्रीरामकृष्ण–परमेश्वरको कोई अपनी विद्या या बुद्धिबलसे नहीं पा सकता । षड्दर्शनोंकी भी वहाँतक पहुँच नहीं । इसके लिये तो श्रद्धा और भक्ति ही चाहिये । (यह कहते-कहते ठाकुर भजन गाने लगे और गाते-गाते समाधिस्थ हो गये, ईश्वरचन्द्र यह घटना देखकर आश्चर्यमें पड़ गये । फिर समाधिसे उतरकर ठाकुर बोले) ब्रह्म और मायामें अभेद है । उन्हें प्राप्त करनेके लिये केवल प्रेम ही चाहिये । यदि किसीके हृदयमें भक्ति और

प्रेम है तो उसे वैध पूजन आदि उपचारोंकी जरूरत नहीं। पंखेकी तभीतक जरूरत है जबतक हवा नहीं चलती। आप अच्छे परोपकारके कामोंमें लगे हुए हैं। यदि सब कर्म निष्काम-भावसे किये जायँ तो उससे ईश्वरमें प्रेम बढ़ने लगता है, इस तरह मनुष्य भगवान्‌के साक्षात्कार करनेका अधिकारी बन जाता है। जितनी ही भक्ति बढ़ती जायगी उतने ही कर्म कम होते जायँगे। मनुष्य कर्म करके संसारका क्या भला कर सकता है? सब कुछ भगवान्‌हीके हाथमें है। परन्तु निष्काम बुद्धिसे कर्म करना जीवके लिये उपयोगी है। आगे बढ़े चलो। एक लकड़-हारा जंगलमें लकड़ीकी तलाशमें गया। एक साधुने उससे कहा कि 'आगे बढ़ा चला जा, चन्दनके पेड़ोंको पाकर वहीं न ठहर जाना।' लकड़हारेको चलते-चलते चन्दनके वृक्ष मिले, परन्तु साधुकी बातपर विश्वास कर वह बढ़ता ही गया। आगे उसे चाँदीकी खान मिली और उससे भी आगे गया तो वह सोनेकी खानतक पहुँचा, और आगे गया तो उसे हीरे-जवाहरातकी खान मिली, जिसे पाकर वह बड़ा धनी बन गया। इसी प्रकार धृति और उत्साहसे निष्काम कर्म करते-करते ईश्वर-भक्ति प्राप्त होती है और परमात्माकी कृपासे स्वयं परात्पर ब्रह्मकी उपलब्धि हो जाती है। इस तरह मनुष्य भगवान्‌का दर्शन करता है और उनसे वैसे ही बातचीत करता है जैसे मैं आप लोगोंसे बातें कर रहा हूँ।

इन तत्त्वकी बातोंको सुनकर श्रोतागण मुग्ध हो गये। तत्पश्चात् ठाकुर विदा हो शिष्योंसहित दक्षिणेश्वर चले गये।

कलकत्तेके अन्यान्य सज्जनोंका समागम

श्रीरामकृष्ण अपने भक्तोंके साथ बातचीत करते हुए कह रहे हैं कि 'लोग बात तो परम ज्ञानकी करते हैं, परन्तु तुच्छ नाशवान् पदार्थोंकी आसक्ति नहीं छोड़ते। जबतक थोड़ी-सी भी विषयासक्ति रहेगी तबतक भगवान्‌का साक्षात्कार असम्भव है। सूतमें तूस रहते वह सूईके छेदसे नहीं निकल सकता। मनुष्य जितना ही भगवान्‌के समीप पहुँचता जाता है, उतनी ही उसे शान्ति-सुखकी प्राप्ति होती है। गंगाके निकट पहुँचनेसे शीतलता प्रतीत होती है, गंगाजलमें स्नान करनेसे और भी अधिक शीतलता और प्रसन्नताका अनुभव होता है।' फिर दूसरी बार ठाकुर कहने लगे कि 'मैं देख रहा हूँ वही परात्पर ब्रह्म नानारूपोंमें क्रीड़ा कर रहे हैं, वही धर्मात्माके रूपमें लीला कर रहे हैं और वही ढोंगी एवं पापीका स्वाँग बनाकर संसारमें विचर रहे हैं। इसीलिये मैं कहता हूँ कि नारायण ही धर्मात्मा हैं, नारायण ही ढोंगी हैं, नारायण ही पापी और विषयी हैं। परन्तु यह भाव ब्रह्म-साक्षात्कारके बादका है। पहले तो विवेकद्वारा चित्तमें जगत्‌के मिथ्यापनका निश्चय करके वैराग्य उत्पन्न करना होगा। विवेक और वैराग्यमें चित्त स्थिर हो जानेपर संसार असत्य जान पड़ता है। वैराग्यसे विषयासक्तिका अत्यन्त नाश होनेपर ही ब्रह्म-साक्षात्कार होता है। तदुपरान्त यह स्पष्ट भान होने लगता है कि वही ब्रह्म अनेक रूपोंसे जगत्‌में लीला कर रहे हैं। वही माया

हैं और वही जगत्‌रूप हैं। उनसे भिन्न और कुछ नहीं है। तब ब्रह्म और मायाका भेद दूर हो जाता है।'

एक बार एक सज्जनसे, जो अपने कुटुम्बियोंकी इच्छाके विपरीत भी ठाकुरके पास कभी-कभी आते थे, ठाकुर कहने लगे कि 'कामिनी और काञ्चनसे सदा मन हटाये रखना, यदि इनके फंदेमें फँस जाओगे तो फिर छुटकारा पाना महा कठिन हो जायगा, इसलिये कभी-कभी यहाँ आया करो।' इसपर उन्होंने कहा कि 'महाराज! मेरे परिवारके लोग मुझे यहाँ आनेसे रोका करते हैं, मैं क्या करूँ?' ठाकुरने कहा—'यदि माता-पिता सत्संगमें जानेसे रोकें तो वे एक तरहसे शत्रु हैं। ऐसे सम्बन्धियोंकी आज्ञा नहीं माननेसे पाप नहीं होता। भरतने रामके प्रेममें विघ्न डालनेपर माताका तिरस्कार कर दिया था, गोपियोंने अपने पतियोंकी आज्ञाका उल्लंघन कर भगवान् श्रीकृष्णसे मिलना नहीं छोड़ा, तथा प्रह्लादने पिताकी और बलिने गुरुकी आज्ञा नहीं मानी थी। यदि अपना कोई कुटुम्बी भगवत्प्राप्तिके पथमें बाधक हो तो उसकी बात न माननेमें पाप नहीं लगता।' *

---

* गोसाईं तुलसीदासजीने यही कहा था—

जाके प्रिय न राम-बैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही॥ १॥
तज्यो पिता प्रह्लाद, बिभीषण बन्धु, भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो, कंत ब्रज-बनितनि, भये सब मंगलकारी॥२॥
नाते नेह रामके मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं।
अंजन कहा आँखि जेहि फूटैं, बहुतक कहौं कहाँ लौं॥ ३॥
तुलसी सो सब भाँति परम हित पूज्य प्रानतें प्यारो।
जासों होय सनेह राम-पद, एतो मतो हमारो॥ ४॥

एक समय ठाकुर दक्षिणेश्वरमें अकेले टहल रहे थे कि अचानक समाधि-मग्न हो गये। उस समय कोई सहारा देनेवाला न होनेके कारण वह गिर पड़े, जिससे उनके बायें हाथकी हड्डी टूट गयी। चिकित्साका प्रबन्ध किया गया, परन्तु चोट सख़्त होनेके कारण पीड़ा बहुत होती थी; तथापि वह पीड़ाकी परवा न करके बीच-बीचमें समाधिस्थ हो जाते थे और शरीरकी सुध भूल जाते थे। इसी अवस्थामें एक दिन ठाकुर भक्तोंके साथ तख़्तपर बैठे थे कि महेन्द्र उनके पास आये और उन्हें प्रणाम करके बैठ गये। श्रीरामकृष्ण जगन्माताको सम्बोधन कर कहने लगे कि 'मैं यन्त्र हूँ, तू यन्त्री है; फिर भी यह घटना क्यों हुई? हे दयामयि! तूने मेरी बाँह क्यों तोड़ दी? बहुत पीड़ा हो रही है।' फिर कहने लगे, 'ॐ ॐ ॐ माँ! क्या मैं बोल रहा हूँ? ब्रह्मज्ञान देकर माँ! मेरा बाह्यज्ञान मत छीन। क्या मैं तेरा बच्चा नहीं हूँ? ब्रह्मज्ञानको मैं दूरसे ही नमस्कार करता हूँ। उसे उसीको दे जो इसकी चाह करता हो। हे आनन्दमयी माँ! हे आनन्दमयी माँ!' यों कहते-कहते वह रोने लगे। फिर कहने लगे, 'माँ! क्या मैंने कुछ अनुचित काम किया था? मैं जो कुछ भी करता हूँ, तू ही तो सब कराती है। मैं तो यन्त्र हूँ, तू यन्त्री है।' तत्पश्चात् वह बालकके समान मुसकराते हुए मनमानी बातें कहने लगे और बच्चोंकी तरह खेलने लगे। एक उपस्थित सज्जनसे उन्होंने कहा कि 'यदि ब्रह्म-साक्षात्कार नहीं किया तो कुछ भी नहीं किया। ईश्वर-प्राप्तिकी महान् कामना होनी चाहिये। भगवान् ही हमारे पिता हैं, वही माता हैं। हम उनसे हठ करके कह सकते हैं कि मुझे दर्शन दो, नहीं तो मैं आत्मघात करता हूँ। मैं तो

माँसे कहा करता था, 'माँ ! मुझे दर्शन देना होगा । तू पतितोंकी ईश्वरी है, सारे जगत्‌की माँ है । क्या मैं जगत्‌से बाहर हूँ ? मुझमें न ज्ञान है, न भक्ति और न कोई साधन ही मुझसे बन पड़ता है । मैं कुछ नहीं जानता । हे दयामयि ! अपनी असीम कृपासे मेरे पास आकर मुझे दर्शन दे ।'

कुछ लोग शिवपुरसे आये तो ठाकुर उनसे कहने लगे— 'पहले भगवान्‌को प्राप्त करो, उनसे सुबह-शाम हार्दिक प्रार्थना करो । जबतक मनुष्य संसारके विषयोंमें ही आसक्त है तबतक उसे भगवत्प्राप्तिकी इच्छा ही नहीं होती ।' इतनेमें उनके बाँहकी पट्टी बाँधनेके लिये डाक्टर मधुसूदन आ गये । ठाकुर उनसे कहने लगे, 'इस लोक और परलोकमें मधुसूदन ही शरण्य हैं ।'

डाक्टर—मैं तो केवल नामका ही भार ढो रहा हूँ ।

ठाकुर—तुम्हें नामको तुच्छ न समझना चाहिये । नाम और नामीमें भेद नहीं । सत्यभामा भगवान् श्रीकृष्णको तराजूमें तौलने लगी । एक पलड़ेमें श्रीकृष्णको और दूसरेमें मणियोंका ढेर रक्खा, परन्तु भगवान्‌का पलड़ा भारी ही रहा । फिर जब रुक्मिणीने मणियोंके स्थानमें तुलसीका एक पत्ता ही रक्खा तो दोनों पलड़े बराबर हो गये । यदि तुम भगवान्‌की अहैतुकी भक्ति कर सकते हो तो वही सब कुछ है । भगवन् ! मुझे मुक्ति भी नहीं चाहिये । नाम, ऐश्वर्य और आरोग्यता भी नहीं चाहिये, मैं तो केवल तुम्हें ही चाहता हूँ, प्रह्लादकी ऐसी ही भक्ति थी ।

ठाकुरका हाथ कई महीनोंमें अच्छा हुआ था ।

एक समय ठाकुर ब्राह्मसमाजमें गये । वहाँ और लोगोंके साथ एक सबजज भी बैठे थे, जिनसे इस तरह बातचीत होने लगी ।

सबजज—हमलोग गृहस्थ हैं; हमलोगोंको गृहस्थ-धर्म कबतक पालना चाहिये ?

ठाकुर—तुम्हें अपनी सन्तानका यथायोग्य पालन-पोषण करना चाहिये। अपनी स्त्रीका पालन-पोषण करो और गृहस्थ-त्यागसे पहले उसके शरीर-निर्वाहका यथोचित प्रबन्ध कर दो। यदि ऐसा न करोगे तो तुम दयाहीन हो। जिसमें दया नहीं, वह मनुष्य कहलानेके योग्य नहीं। जबतक पुत्र गृहस्थीका भार सँभालनेके योग्य न हो जाय, तबतक गृहस्थीका पालन करना चाहिये।

सबजज—अपनी भार्याके प्रति हमारा क्या कर्तव्य है ?

ठाकुर—अपने जीवनमें उसे योग्य धार्मिक शिक्षा देनी चाहिये और उसका यथार्थ पालन-पोषण करना चाहिये। यदि वह पतिव्रता है तो अपनी मृत्युके पीछे उसके शरीर-निर्वाहका यथोचित प्रबन्ध करना पतिका धर्म है। परन्तु यदि पुरुष भगवत्प्राप्तिके लिये उन्मत्त हो जाय तो सारे धर्म और नियम क्षीण हो जाते हैं। उस अवस्थामें भगवान् ही उसके कुटुम्बका पालन करते हैं। जब कोई धनी नाबालिग सन्तान छोड़कर मरता है तो Court of Wards आप ही उसका प्रबन्ध करती है।

सबजज—महाशय! क्या गृहस्थमें रहकर मनुष्य ईश्वरका साक्षात्कार कर सकता है ?

ठाकुर—अवश्य! गृहस्थको तत्त्व-ज्ञान हो सकता है और वह ईश्वर-दर्शन भी कर सकता है। जब भगवान्‌का नाम लेने और सुननेमात्रसे ही रोमाञ्च हो जाय और आँखोंमें सच्चे प्रेमके

आँसू बहने लगें, तो समझना चाहिये कि कामिनी-काञ्चनमें आसक्ति नहीं रही और ईश्वरका अनुभव हो गया है। यदि दियासलाई सूखी होती है तो थोड़ी-सी ही रगड़से जल जाती है। गीली सलाईको कितना ही रगड़ो, वह न जलेगी।

एक भक्त—महाराज! यदि किसीने अपने जीवनमें तो ईश्वरका चिन्तन बहुत किया हो, परन्तु मरते समय वह भगवत्स्मरण न कर सके तो क्या उसका पुनर्जन्म होगा?

ठाकुर—मनुष्य ईश्वर-चिन्तन तो करते हैं, परन्तु उनमें पूर्ण विश्वास और श्रद्धा नहीं होती। वे भगवान्‌को भूल जाते हैं और उनकी विषयोंमें आसक्ति हो जाती है। जैसे हाथी स्नानके पश्चात् फिर शरीरको धूलसे भर लेता है, ऐसा ही मनका भी स्वभाव है। परन्तु यदि हाथीको स्नानके बाद जंजीरसे बाँध दिया जाय तो वह धूल फेंकनेमें असमर्थ हो जाता है। इसी तरह यदि मनुष्य मृत्यु-समय भगवान्‌का चिन्तन करे तो उसका मन शुद्ध हो जाता है, फिर उसे कामिनी-काञ्चनमें लिप्त होनेका मौका ही नहीं मिलता।

इस वार्तालापके बाद ठाकुर दक्षिणेश्वर चले गये।

एक दिन नन्दनबागानके ब्राह्मसमाजने ठाकुरको निमन्त्रण दिया। ठाकुर राखाल, महेन्द्र प्रभृति शिष्योंसहित वहाँ पधारे। एक ब्राह्म-सदस्यने ठाकुरसे प्रश्न किया कि 'भगवन्! मानसिक विकारोंके वेगको रोकनेका क्या उपाय है?'

ठाकुर—मनके सारे वेगोंको भगवान्‌की ओर लगा दो अर्थात् कामके वेगको परमात्मासे मिलनेकी तीव्र कामनामें लीन कर दो।

क्रोध उनपर करो जो भगवान्की प्राप्तिमें बाधक हों । लोभ परमेश्वरके दर्शनका ही रक्खो । मोह भी उन्हींसे करो और 'मम' शब्दको अन्तर्यामी परमेश्वरमें ही जोड़ दो—जैसे 'मेरे कृष्ण', 'मेरे राम !' यदि गर्व और अभिमान हो तो विभीषणकी भाँति गर्व करो कि यह मस्तक जब श्रीरामके सामने झुका है तो अब दूसरोंके आगे नहीं झुकेगा ।

एक सज्जन—यदि वही हमसे सब कुछ कराते हैं तो फिर हम पाप-कर्मके जिम्मेवार कैसे हो सकते हैं ?

ठाकुर—दुर्योधनने भी ऐसा ही कहा था कि 'हे कृष्ण ! तुम ही हृदयमें विराजमान हो; जैसा कराते हो वैसा ही करता हूँ ।' जो निष्कपटभावसे समझता है कि कर्त्ता परमात्मा ही है, मैं नहीं हूँ, तो फिर उससे कभी पाप-कर्म बन ही नहीं सकते । निपुण नर्तकी कभी गलत पाँव नहीं उठायेगी । जबतक हृदय एकदम पवित्र नहीं हो जाता, तबतक भगवान्के अस्तित्वमें विश्वास ही नहीं होता ।

गिरीशचन्द्र घोष

गिरीशचन्द्र घोष बंगलाके प्रसिद्ध नाट्यकार थे । वह कुसंगके कारण बीचमें बहुत ही विषयी और पाश्चात्य शिक्षाके प्रभावसे बड़े देहात्मवादी हो गये थे । उन्हें पाश्चात्य सभ्यतासे बड़ा प्रेम था, परन्तु उस सभ्यताके अच्छे गुण ग्रहण न कर मनचले नवयुवकोंकी भाँति उन्होंने उसके मदिरापान आदि दुर्गुण ही अपने जीवनमें धारण कर लिये थे । इधर

भारतीय सभ्यता तथा धर्मसे गिरीशबाबूको घृणा हो गयी थी। धर्मशिक्षक तथा धर्मके रक्षक कहलानेवाले मनुष्योंके ढोंग और कपट-व्यवहारने गिरीशबाबूके मनको इधरसे हटा दिया था। इसलिये घोर नास्तिकताकी ओर रुचि बढ़नेसे वह भाँति-भाँतिके विषयोंमें रत हो गये थे। इस अवस्थामें चौदह साल बीतनेपर समयने पलटा खाया और कुछ ऐसे कारण उपस्थित हुए जिनसे गिरीशबाबूको अनेक दुःखों और कष्टोंका सामना करना पड़ा। देखा जाता है कि दुःख और आपत्तियाँ मनुष्यके जीवनमें उसका बड़ा उपकार करती हैं। बहुत-से मनुष्य भीषण दुःखोंके आघातसे ही जीवनको उच्च बनानेमें समर्थ हुए हैं। यही दशा गिरीशकी हुई। उन्होंने सुन रक्खा था कि तारकेश्वरमें भगवान् शिव आर्त्त मनुष्योंके संकट दूर कर देते हैं और जो दुःखी जीव वहाँ धरना देकर उनकी शरणमें जा पड़ते हैं उनकी मनोकामना पूर्ण हो जाती है। इस हेतुसे वह भी शंकर भगवान्‌की शरणमें गये और प्रारब्धवश उनके कष्टोंका भी अन्त हो गया। इससे गिरीशकी भगवान्‌में कुछ श्रद्धा हो गयी। उन्होंने यह भी सुन रक्खा था कि बिना गुरु किये भगवान्‌को प्राप्त करना असम्भव है। समाचारपत्रोंमें उन्होंने पढ़ा था कि दक्षिणेश्वरमें एक परमहंस रहते हैं और केशवचन्द्र सेन एवं उनके अनुयायी उनसे मिलने वहाँ जाया करते हैं। उन्होंने समझा कि उन महात्मामें अवश्य ही कुछ विशेष गुण होंगे, जिनसे केशव-बाबू-सरीखे विख्यात विद्वान् भी उनकी ओर आकर्षित हैं। एक दिन उन्होंने सुना कि पड़ोसहीमें एक सज्जनके घर परमहंसजी आये हुए हैं, उनके दर्शनकी इच्छासे वह भी वहाँ गये। श्रीराम-

कृष्ण भक्त-मण्डलीमें अर्द्धबाह्यज्ञान-अवस्थामें बैठे हुए थे, सन्ध्याका समय था, दीपक जल चुके थे, परन्तु उस अवस्थामें उन्हें अँधेरे-उजालेका भान न था। ठाकुरने पूछा, 'क्या सन्ध्या हो गयी है ?' गिरीशबाबूको उनका यह प्रश्न ढोंग-सा जान पड़ा। इसलिये वह श्रद्धारहित चित्तसे उठकर वहाँसे चल दिये। कई वर्षों बाद गिरीशबाबूके स्टार थियेटरमें एक रात चैतन्य-लीलाका नाटक होनेवाला था, श्रीरामकृष्णकी इच्छा भी नाटक देखनेकी हुई। वह शिष्योंसहित वहाँ गये। भीतर जाकर ठाकुरने गिरीशबाबूको प्रणाम किया। गिरीशने उन्हें थियेटरके एक बक्समें बिठला दिया और एक नौकरको पंखा करनेके लिये नियुक्त कर कुछ अस्वस्थ होनेके कारण स्वयं घर चले गये।

किसी दूसरे दिन ठाकुर फिर नाटक देखने गये। गिरीशने उन्हें भीतर बिठला दिया और स्वयं भी उनके पास कुर्सीपर बैठ गये। परमहंसजीने कहा, 'तुम्हारे अंदर कई बुरी वासनाएँ हैं।' गिरीश जानते थे कि मेरा मन बहुत लम्पट है। इस कारण उन्होंने कहा, 'महाशय ! ये वासनाएँ कैसे नष्ट होंगी ?' ठाकुरने कहा, 'ईश्वरमें विश्वास करो।' फिर जब उन्होंने पूछा कि 'क्या मेरी बुरी वासनाएँ नष्ट हो जायँगी ?' तो ठाकुरने कहा कि 'अवश्य नष्ट होंगी।' एक दिन उन्होंने ठाकुरसे पूछा कि 'भगवन् ! क्या मैं यही काम (नाटक) करता रहूँ ?' ठाकुरने कहा कि 'किये जाओ।' ठाकुरको पूर्ण विश्वास था कि गिरीशकी समस्त दुष्ट वासनाएँ शुभ वासनाओंमें पलट जायँगी; क्योंकि गिरीशमें श्रद्धा अद्भुत थी, उनका हृदय कोमल, दयालु और सरल था। सबसे ज्यादा प्रबल दोष उनमें मदिरा-पानका था, जिससे वह

प्रायः मदोन्मत्त हो जाया करते थे। एक दिन गिरीशने नशेमें ठाकुरको बहुत-से कुवाक्य कहे। उस दिन ठाकुर बिना ही कुछ कहे वहाँसे उठकर चले गये। अगले दिन ठाकुर दोपहरके समय ही तेज धूपमें गाड़ीमें बैठ गिरीशके घरपर गये। गिरीश बड़े दुःख और पश्चात्तापमें डूब रहे थे कि इतनेहीमें श्रीरामकृष्ण वहाँ जा पहुँचे। इतनी चिन्तामें देखकर उन्होंने गिरीशको शान्त किया। उस दिनसे गिरीशने अपने आपको एकदम ठाकुरके चरणोंमें समर्पित कर दिया। एक सज्जनने एक दिन ठाकुरसे कहा, 'महाशय! गिरीशको मदिरापान करनेसे रोको।' ठाकुर जानते थे कि केवल शब्दोंसे उनकी वासनाएँ नष्ट न होंगी। इसलिये उन्होंने कहा, 'जिसने उसका भार अपने ऊपर लिया है वही उसे सँभालेगा, तुम क्यों चिन्ता करते हो?' ठाकुरके प्रेमके प्रभावसे उनकी पाप-वृत्ति धीरे-धीरे नष्ट होने लगी।

एक दिन गिरीशने एक वेश्याके घर जाकर इतनी शराब पी कि रातभर वहीं बेसुध पड़े रहे। सवेरे होश आनेपर वह बहुत पछताने लगे और सीधे वहाँसे चलकर दक्षिणेश्वरमें आये। वह ठाकुरके चरण पकड़कर रोने लगे। ठाकुरने पास बैठे हुए एक व्यक्तिसे कहा, 'गाड़ीमेंसे गिरीशकी शराबकी बोतल, जूते और चादर उठा लाओ।' जब गिरीश कुछ शान्त हुए तो उन्हें फिर शराब पीनेकी इच्छा होने लगी। ठाकुरने बोतल उनके सामने रख दी। गिरीश वहीं सबके सामने पीने लगे। परन्तु ऐसा करनेके बाद वह बहुत लज्जित हुए। ठाकुरने कहा, 'जितनी पी सकते हो पी लो, थोड़े ही दिनोंमें तुम्हारी यह लत छूट जायगी।' इस घटनाके बाद गिरीशकी यह आदत छूट ही गयी।

एक दिन ठाकुरने गिरीशसे कहा, 'और सब काम करते हुए सुबह और शाम भगवत्स्मरण भी किया करो।' इसपर वह बोले, 'मैं इस बातका प्रण नहीं कर सकता। क्योंकि मुझे कामोंसे फुरसत ही नहीं मिलती, यहाँतक कि प्रायः खाने-सोनेका भी समय नियत नहीं रहता, फिर मैं भगवत्-चिन्तनका वचन कैसे दे सकता हूँ?' ठाकुरने कहा, 'अच्छा, भोजन और शयनके समय ही ईश्वर-चिन्तन कर लिया करो।' यह भी गिरीश स्वीकार न कर सके, क्योंकि वह नियमबद्ध होनेसे सदैव घृणा किया करते थे। ठाकुरने जब देखा कि वह किसी बातका भी प्रण नहीं कर सकते तो कहा, 'अच्छा, तुम मुझे आममुख्तारी (Power of attorney) दे दो। अबसे तुम्हारी जिम्मेवारी मैं अपने ऊपर लेता हूँ। तुम्हें कुछ करनेकी जरूरत नहीं।' यह सुनकर गिरीशको बड़ा सन्तोष हुआ। मानो बहुत बड़ा भार उनके सिरसे उतर गया। ठाकुरकी इस असीम अहैतुकी दयाको देखकर उनके आनन्दकी सीमा न रही। वह अपने-आपको उनके चरणोंमें समर्पित कर निश्चिन्त हो गये। ठाकुर भी गिरीशको आत्म-समर्पणकी शिक्षा देने लगे। एक दिन गिरीशने किसी बातपर कहा, 'मैं अमुक काम कर दूँगा'। इसपर ठाकुरने कहा, 'ऐसा मत कहो; शायद वह काम तुमसे न बन पड़े। तुम्हें कहना चाहिये कि ईश्वर चाहेंगे तो मैं वह काम कर दूँगा।' तबसे गिरीशने सब काम भगवान्‌को सौंप दिये और उनका आधारमात्र बनकर जीवनयात्रा करने लगे, जिससे उनकी सारी दुष्ट प्रवृत्तियाँ क्रमशः नष्ट हो गयीं।

(१५)

दुर्गाचरण नाग

[१]

श्रीरामकृष्णके गृहस्थ शिष्योंमें दुर्गाचरण नाग परम त्यागी और निष्ठावान् महात्मा थे। दुर्गाचरणजी सन् १८४६ में एक निर्धन परिवारमें पैदा हुए थे। बाल्यावस्थामें ही इनकी माताका स्वर्गवास हो गया था। इससे इनके पालन-पोषणका सारा भार इनके पिता और चाचीपर पड़ा। इनके पिता दयालु, धर्मनिष्ठ, सनातन-धर्मावलम्बी सज्जन थे और कलकत्तेमें एक व्यापारीके यहाँ साधारण वेतनपर नौकरी करते थे। कुछ समय बाद दुर्गाचरणकी

चाचीका भी देहान्त हो गया। उसने मरते समय उनसे कहा, 'बेटा! सदा श्रीभगवान्‌के चरणोंमें ही अपने मनको लगाये रखना।' इससे सिद्ध होता है कि उनकी शिक्षा और पालन-पोषण धार्मिक वायुमण्डलमें ही हुआ था। बचपनहीसे वह अपने सरल और नम्र स्वभावके कारण समवयस्क बालकोंके प्रेमपात्र बन गये थे। निर्धनताके कारण इन्हें उच्च शिक्षा ग्रहण करनेका अवसर न मिल सका। उनके ग्रामके निकट एक स्कूल था, जिसमें उन्होंने तीसरी कक्षातक शिक्षा पायी। इसके पश्चात् उन्होंने अपने पितासे प्रार्थना की कि मुझे कलकत्तेमें पढ़ाइये। परन्तु वहाँका खर्च बरदास्त करनेकी शक्ति उनमें नहीं थी। दुर्गाचरणने सुना कि ढाकामें बड़े अच्छे-अच्छे स्कूल हैं। विद्योपार्जनकी तीव्र उत्कण्ठा होनेके कारण उनके मनमें वहाँ जाकर पढ़नेकी इच्छा हुई। उन्होंने अपनी चाचीसे कहा, 'मैं कल ढाका पढ़ने जाऊँगा, सबेरे ही मेरेलिये भोजन तैयार कर देना।' तदनन्तर दूसरे ही दिनसे वह प्रतिदिन पढ़नेको ढाका जाने लगे। सबेरे जाते और शामको वापस घर आया करते। ढाका उनके ग्रामसे दस मील था परन्तु पढ़नेकी इच्छासे वह रोज इतनी दूर जाने-आनेका कष्ट सुखपूर्वक सहने लगे। सवा वर्षतक वह इस प्रकार वहाँ जाकर पढ़ते रहे। इतने दिनोंमें केवल दो ही दिन वह गैरहाजिर रहे थे। अन्तमें उन्हें कलकत्तेमें पढ़नेका मौका मिल गया और वह मेडिकल-कालेजमें भरती हो गये। डेढ़ सालतक वहाँ उन्होंने चिकित्साशास्त्रका अध्ययन किया। उसके पश्चात् कलकत्तेमें ही प्रसिद्ध डाक्टर बिहारीलाल भादुड़ीसे होमियोपैथिक-चिकित्साकी शिक्षा पूर्ण रीतिसे ग्रहण कर वह वहीं चिकित्सा करने लगे और

थोड़े ही दिनोंमें अच्छे निपुण चिकित्सक हो गये। रोगके निदान करनेकी उनमें असाधारण शक्ति थी। कालेजमें शिक्षा ग्रहण करते समय भी उन्होंने कई आश्चर्यजनक इलाज किये थे। निर्लोभी इतने थे कि कभी किसीसे उन्होंने अपनी नियत फीस नहीं माँगी। जिसने जो दे दिया, ले लिया, वह भी दो रुपयेसे ज्यादा नहीं।

एक वार उन्होंने अपने पिताके मालिकके कुटुम्बकी एक स्त्रीको बड़े कष्टसाध्य रोगसे मुक्त किया। इसपर उन्होंने उन्हें कुछ धन देना चाहा। परन्तु नाग महाशयने उतना धन लेना अस्वीकार कर केवल बीस ही रुपये लिये। इस बातपर उनके पिता बहुत अप्रसन्न हुए और बोले, 'तुम इस तरह करोगे तो अपने काममें कभी सफल नहीं हो सकोगे।' दुर्गाचरणने कहा, 'पिताजी ! मैं उचितसे ज्यादा कभी नहीं ले सकता। जितना उचित था, उतना ले ही लिया। चौदह रुपये सात दिनकी फीसके और छः रुपये दवाके दाम। बीससे अधिक लेनेका मुझे क्या हक था ?' फिर कहा, 'क्या आपने मुझे सत्यपर आरूढ़ रहनेकी शिक्षा नहीं दे रक्खी है ? मैं सत्यसे विचलित नहीं हो सकता, चाहे जो कुछ भी हो।' इतना ही नहीं, दुर्गाचरण गरीब रोगियोंको ओषधि और भोजन भी मुफ्त दिया करते थे। कभी-कभी उन्हें रुपये उधार भी दे देते थे जो उन्हें वापस नहीं मिलते थे। कई बार ऐसा भी होता था कि वह अपने निर्वाहमात्रको भी कुछ नहीं बचा सकते थे। गरीब रोगीको देखनेके लिये मीलों पैदल चले जाते। कोई असहाय रोगी कभी रास्तेमें मिल जाता तो उसे अपने घर ले आते और बड़े ही ध्यानसे चिकित्सा कर उसे रोगमुक्त करनेकी चेष्टा करते।

एक दिन उन्होंने एक आदमीको एक झोंपड़ीके अंदर बड़ी दुर्दशामें पड़ा हुआ देखा। वह तुरन्त अपने घर आये और घरसे अपना बिछौना लाकर उस गरीबको आरामसे उसपर लिटा दिया। किसी दूसरे दिन सख्त जाड़ेकी रातमें उन्होंने एक ठिठुरते हुए रोगीको अपनी ऊनी चादर उतारकर उढ़ा दी और स्वयं उसके पास बैठकर रातभर उसकी सेवा करते रहे। उनमें ऐसी अपूर्व दया और निर्लोभ तो था ही, साथ ही वह निर्भय भी पूरे थे। कलकत्तेमें प्लेगके दिनोंमें गरीब रोगियोंकी स्वयं सेवा किया करते थे। एक दिन एक निर्धन रोगीकी सेवा करते-करते उसकी इच्छा पूरी करनेके हेतु उसे अपने कंधेपर उठाकर गंगा-तीरपर ले गये और उसे अपनी गोदमें बिठा लिया। वहीं उसका देहान्त हो गया। तब उसका दाह-कर्म करके आप घर लौट आये।

नागजी अपने दुःखकी तो बिल्कुल परवा न करते, परन्तु दूसरेके दुःखको जरा भी सहन नहीं कर सकते थे। वह केवल मनुष्योंपर ही दया करके नहीं रह जाते थे, वरं अन्य जीव-जन्तुओंपर भी उनकी वैसी ही दया थी। जब कभी मछलियाँ बेचते हुए मछुए उनके घरके सामनेसे गुजरते तो वह जीती हुई मछलियोंको मोल लेकर तालाबमें छुड़वा देते थे। यहाँतक कि विषैले सर्पोंमें भी उनका मित्र-भाव था। एक दिन एक साँप उनके बगीचेमें घुस आया। उनकी स्त्रीने कहा, 'इसे मार डालो।' इसपर नाग महाशय बोले, 'जंगलका सर्प किसीको कुछ हानि नहीं पहुँचाता, यह तो मनका सर्प है जो मनुष्यको मारे डालता है।' तदुपरान्त उन्होंने साँपसे प्रार्थना की और वह उनके पीछे-पीछे बाहर जंगलमें चला गया। उनकी यह धारणा थी कि दृश्यमान

जगत् केवल मनकी ही कल्पना है। तुम जैसा अपने मनमें सोचते हो, वैसा ही जगत्को देखते हो। अपना मुँह जैसा होगा, दर्पणमें ठीक वैसा ही दिखायी देगा।

दुर्गाचरणका विवाह बाल्यावस्थामें ही हो गया था, परन्तु उन्हें विषय-भोगसे पहलेहीसे घृणा थी। पहली स्त्रीका देहान्त होनेपर उनके पिताने आग्रह करके उनका दूसरा विवाह कर दिया। परन्तु उनके पवित्र मनको कामवासनाने बहुत ही कम सताया। वह जगत्की असारताको भलीभाँति जानते थे, इस कारण उसके फंदेसे बचे रहे। उनकी प्रबल इच्छा भगवान्का साक्षात्कार करनेकी थी। किसी साधुने उनसे एक दिन कहा, 'गुरुके बिना भगवद्दर्शन नहीं हो सकते।' इसलिये वह गङ्गा-तटपर बैठकर अकेले जगन्मातासे प्रार्थना किया करते कि 'हे दयामयि! कृपा करके मेरे लिये किसी गुरुको भेज।' सुरेश उनका मित्र था। उसने केशवबाबूसे दक्षिणेश्वरके परमहंसकी बात सुन रक्खी थी। एक दिन उसने नाग महाशयसे उनका जिक्र किया। नाग महाशयकी उन परमहंसके दर्शन करनेकी बड़ी तीव्र इच्छा हुई। अगले दिन सवेरे ही दोनों मित्र दक्षिणेश्वर-की ओर चल दिये। गरमीके दिन थे; सूर्य भगवान् अपनी तीक्ष्ण किरणोंसे धरातलको तपा रहे थे। परन्तु ये दोनों मित्र उस कड़ाके-की धूपमें ही परमहंससे मिलनेकी इच्छासे दोपहरके दो बजे दक्षिणेश्वरके फाटकपर जा पहुँचे और अंदर जाकर ठाकुरके कमरे-के दरवाजेपर खड़े हो गये। एक आदमीको वहाँ बैठे देखकर पूछा, 'महाशय! परमहंस कहाँ रहते हैं?' उसने कहा, 'रहते तो यहीं हैं, परन्तु इस समय वह चन्दननगर गये हुए हैं।' यह सुनकर

वे निराश होकर लौटना ही चाहते थे कि भीतरसे किसीने उन्हें अंदर आनेको कहा। वह स्वयं परमहंस ही थे। ठाकुरने उन्हें बैठनेको कहा और फिर कहने लगे, 'यह हाजराकी करतूत है। वह नये आदमियोंको आनेसे रोका करता है।' दोनों मित्र कई घंटे वहाँ ठहरे। ठाकुर उनसे बातें कर रहे थे और नाग महाशय उनके मुखकी ओर टकटकी लगाकर देख रहे थे। ठाकुरने पूछा, 'इस तरह घूरकर मुझे क्यों देख रहे हो?' नागने कहा, 'महाराज! बहुत दिनोंसे आपके दर्शनकी इच्छा थी; आज अपना मनोरथ सफल कर रहा हूँ।'

दूसरे सप्ताह वह फिर ठाकुरके पास गये। भीतर घुसे ही थे कि श्रीरामकृष्णने कहा—'अच्छा हुआ, तुम आ गये। मैं तुम्हारी बाट ही देख रहा था।' थोड़ी देर बाद ठाकुरने कहा—'बेटा! चिन्ता न करो, तुम ऊँची कोटिपर पहुँच चुके हो।' नाग अब बार-बार दक्षिणेश्वर जाने लगे और ठाकुरके बड़े प्रेमपात्र बन गये। वह ऐसे अभिमानरहित थे कि रविवारको तथा और छुट्टियोंके दिनोंमें वहाँ जानेमें बहुत सकुचाते थे, क्योंकि ऐसे दिनोंमें कलकत्तेके बहुत बड़े-बड़े प्रसिद्ध लोग ठाकुरके पास जाया करते थे। दुर्गाचरण अपनेको एक अयोग्य तुच्छ व्यक्ति समझकर उन लोगोंसे मिलनेका साहस नहीं करते थे। परन्तु जब उन लोगोंने नाग महाशयकी असाधारण योग्यताको जान लिया, तब वे लोग उनका बड़ा आदर करने लगे।

पिताको प्रसन्न रखनेके अभिप्रायसे वह अपना व्यवसाय—चिकित्सा-कार्य बराबर करते रहे। एक दिन उन्होंने ठाकुरको एक भक्तसे यह कहते सुना, 'यदि मन औषधकी नन्हीं-नन्हीं

बूँदोंमें ही फँसा रहा तो परमात्माके अनन्त स्वरूपका विचार ही कैसे कर सकेगा ?' इतना सुनना ही उनके लिये काफी था। घर पहुँचते ही उन्होंने दवाइयों और पुस्तकोंको गंगामें बहा दिया। आजसे उनका नव-जीवन आरम्भ हो गया। वह जितना ही ठाकुरसे मिलते, उतनी ही उनमें वैराग्यकी मात्रा बढ़ती जाती। यहाँतक कि उनकी प्रबल इच्छा गृहस्थाश्रम त्यागकर संन्यास-आश्रममें प्रवेश करनेकी हो गयी। इसके लिये उन्होंने ठाकुरसे आज्ञा माँगी। ठाकुरने कहा, 'बेटा! गृहस्थाश्रममें रहनेसे क्या हानि है ? केवल मनको परात्पर ब्रह्ममें लगाये रक्खो। तुम्हारा पवित्र जीवन गृहस्थोंके लिये आदर्श बनेगा और लोग तुम्हारे अद्भुत जीवनसे चकित हो जायँगे।'

गुरुकी आज्ञा शिरोधार्य कर वह गृहस्थीहीमें रहे और अपना धर्म भलीभाँति निबाहते रहे। उनके घरका दरवाजा सबके लिये खुला था। प्राणीमात्रकी सेवा करना उनका व्रत था। उनके घर जो अतिथि आते, उनका वह भोजनसे तो सत्कार करते ही—बल्कि आवश्यक समझकर उनके मार्गव्ययका भी प्रबन्ध कर देते। इतना ही नहीं, यदि कोई उनके घरमें बीमार पड़ जाता तो उसकी सेवा करते और अच्छा हो जानेपर अपने खर्चसे उसे उसके घर पहुँचा देते। अब उनकी और कोई आमदनी नहीं रह गयी थी; केवल एक मकानका किराया आता था, जो इस तरहकी सेवाके लिये भी काफी नहीं था। इसलिये अब उनके पास कभी-कभी एक पैसा भी नहीं रहता था।

एक दिन जाड़ेके दिनोंमें दो अतिथि उनके घर आये।

कमरा ही सूखा था, जिसे उन्होंने अतिथियोंके विश्रामके लिये दे दिया और अपनी धर्मपत्नीको बुलाकर कहा, 'आज हमारे बड़े भाग्य हैं; आओ, हमलोग बरामदेमें बैठकर भगवान्‌का स्मरण करते-करते रात बितावें ।'

नाग महाशयके घरमें उपस्थित रहते घरकी मरम्मत कराना महाकठिन था, क्योंकि जब कोई मजदूर मकानकी मरम्मत करनेको बुलाया जाता तो पहले नाग महाशय उसके लिये चिलम भरकर देते, फिर भोजन देते और यदि वह काम करनेका हठ ही करता तो उसके पास बैठकर उसके ऊपर छत्ता ताने पंखा किया करते । नौकामें बैठकर यदि कभी कहीं जाना होता तो मल्लाहको अलग बिठला देते और स्वयं डाँड़ चलाकर नाव खेने लगते । इसलिये नाववाले उन्हें अपनी नावमें बिठानेसे सकुचाते थे, क्योंकि वे समझते थे कि ऐसे ऋषि-स्वभाव संतको परिश्रम करते देखना और स्वयं खाली बैठे रहना पाप है । नाग महाशयमें प्राणीमात्रकी सेवा करनेका भाव ऐसा परिपक्व हो गया था कि किसीसे भी अपनी सेवा कराना उनके लिये असम्भव हो गया था ।

नाग महाशयका जीवन वैराग्य और तपसे पूर्ण था । विरक्त-संन्यासी भी उनके-जैसा जीवन नहीं बिता सकता । अपने शरीरको वह एक मोटे कपड़ेसे ढके रखते । उनका भोजन भी अत्यन्त सादा होता । कई दिनोंतक निराहार ही रह जाते । यदि कोई मित्र भोजन करनेके लिये उनसे आग्रह करने लगता तो वह कहते, 'मैं रात-दिन यदि भोजनकी ही चिन्तामें लगा रहूँगा तो भगवद्भजनका समय कब मिलेगा ? रात-दिन भोजनकी चिन्ता करना पागलपन है ।'

चार वर्षतक वह ठाकुरकी पवित्र संगतिमें रहकर उनकी निःस्वार्थभावसे सेवा करते रहे। ठाकुरके अन्तिम दिनसे पाँच दिन पहले जब वह श्रीरामकृष्णके कमरेमें पहुँचे तो ठाकुरने उपस्थित लोगोंसे आँवला खानेकी इच्छा प्रकट की। इसपर वे लोग बोले, 'महाराज! आजकल आँवलोंका मौसम नहीं है।' परन्तु नाग महाशय महामायासे प्रार्थना करने लगे, 'हे इच्छामयि! मुझे ठाकुरकी अभिलाषा पूरी करनेमें सहायता दे।' बिना किसीसे कुछ कहे ही वह वहाँसे चल दिये और कलकत्तेके सारे बाग-बगीचे छान डाले। दो दिनतक वह आँवला ढूँढ़ते रहे। अन्तमें उन्हें एक वृक्षपर लगे हुए आँवले मिल ही गये। बड़े हर्षके साथ वह फल लेकर ठाकुरके पास पहुँचे और उन्हें दे दिया। श्रीरामकृष्ण बड़े प्रसन्न हुए और उन्हें आशीर्वाद देकर, संसार-लीला समाप्त कर स्वधामको पधार गये।

यद्यपि नाग महाशय गृहस्थाश्रममें रहते थे, परन्तु उनका अधिकांश समय भगवत्स्मरणमें ही व्यतीत होता था। पिताके नौकरी छोड़नेपर वह उनकी जगह रह गये। परन्तु ऐसे मनुष्यके लिये, जो भगवद्भजनमें खाना-पीना भी भूल जाता था, दफ्तरका रोजाना काम पूरा करना असम्भव था। इसलिये उनका एक दूसरा साथी कर्मचारी उनके बहुत-से काम पूरे कर दिया करता था। वैराग्यकी इतनी अधिकता देखकर श्रीरामकृष्णने एक दिन उनसे कहा, 'तुम आजीविकाके लिये कहीं बाहर न जाओ; तुम्हारा जीवन-निर्वाह किसी-न-किसी तरह होता ही रहेगा।'

नाग महाशय—जगत्‌में रहना महाकठिन है। दुखी जीवोंके कष्ट मुझसे सहे नहीं जाते।

ठाकुर—विश्वास रक्खो, कोई तुमपर दोष नहीं लगा सकेगा; तुम्हारा जीवन देखकर लोग चकित होंगे।

नाग महाशय—मैं अपना जीवन किस तरह बिताऊँ ?

ठाकुर—तुम्हें कुछ करनेकी जरूरत नहीं। तुम्हारे लिये केवल साधु-संग ही पर्याप्त है।

नाग महाशय—आप जानते हैं, मैं महामूढ़ हूँ। साधुको किस तरह पहचान सकूँगा ?

ठाकुर—तुम्हें सच्चे साधुओंको ढूँढ़नेकी भी जरूरत नहीं, वे स्वयं तुम्हारे घर आकर तुम्हारा सत्कार करेंगे।

नाग महाशय नम्रताकी मूर्ति ही थे। अहंकार उन्हें छू-तक नहीं गया था। उनके विषयमें गिरीशबाबू कहा करते थे कि 'यदि किसीका हृदय अत्यन्त सरल और अहंकारशून्य है तो वह नाग महाशयकी दशामें पहुँच गया है। ऐसे प्राणीके चरण-स्पर्शसे ही पृथ्वी पवित्र हो जाती है।' नरेन्द्रनाथ भी कहा करते थे कि 'हमलोगोंका जीवन सत्यकी खोजमें वृथा ही बीता। हम-लोगोंमेंसे केवल नाग महाशय ही ठाकुरके सच्चे पुत्र हैं।'

(१६)

पं० शशधर तर्कचूड़ामणिसे वार्तालाप

श्रीरामकृष्ण एक दिन अपने शिष्य नरेन्द्र, राखाल और हाजराके साथ कलकत्तेमें एक भक्तके घर गये और वहाँसे सन्ध्या-समय पं० शशधर तर्कचूड़ामणिसे मिलने गये। पण्डितजी हिन्दू-धर्मके एक प्रसिद्ध व्याख्याता और बड़े विद्वान् थे। ठाकुरने उनसे पूछा, 'आप किस विषयपर व्याख्यान दिया करते हैं?'

पण्डित—मैं शास्त्रोंका रहस्य समझानेकी चेष्टा किया करता हूँ।

ठाकुर—इस कलियुगमें नारदीय भक्ति-मार्ग ही सबसे उत्तम है। शास्त्रोंमें वर्णित नाना प्रकारके विधि-विधानोंके अनुकरण करनेका यह समय नहीं। तुम्हारे व्याख्यानोंका असर लोगोंपर बहुत कम होता है, इसका तुम्हें शीघ्र ही अनुभव हो जायगा। पहले अपनेमें शक्ति पैदा करो और अधिकाधिक साधना करो। तुमने बहुत शीघ्र गुरुभाव ग्रहण कर लिया है। अवश्य ही तुम्हारा उद्देश्य अच्छा है, क्योंकि तुम दूसरोंकी सहायता करना चाहते हो। मैंने जब तुम्हारा हाल सुना तो पूछा था, कि तुम कोरे विद्वान् ही हो या विवेक-वैराग्य-सम्पन्न भी हो; क्योंकि विवेकके बिना विद्या व्यर्थ है। गुरुभाव रखनेमें हानि नहीं, यदि भगवान्से आदेश मिल चुका हो। जलते हुए दीपकके पास सैकड़ों कीड़े-मकोड़े आप ही आ जाते हैं, उन्हें कोई बुलाने नहीं जाता। इस प्रकार जिसे भगवान्का आदेश प्राप्त है उसे अपने भाषणमें किसीको बुलानेकी जरूरत नहीं। चुम्बक पत्थर लोहेके टुकड़ोंको बुलाने नहीं जाता, वे स्वयं ही खिंचे चले आते हैं। इसीलिये मैं पूछता हूँ कि क्या तुम्हें दूसरोंको शिक्षा देनेके लिये भगवान्का आदेश मिल चुका है?

पण्डित—नहीं महाशय! मैं इस बातका गर्व नहीं कर सकता।

ठाकुर—तो फिर बिना आदेश पाये, तुम्हारे व्याख्यानोंकी क्या कद्र हो सकती है? देखो, अमृतसागरतक जानेके अनन्त पथ हैं। उस सागरमें किसी भी प्रकार मज्जन कर लेना काफी है। उसमें एकदम कूद पड़ना, धीरे-धीरे घुसना या किसीके धक्केसे

उसमें गिर पड़ना, सब एक ही बात हैं। यदि उस अमृतकी एक बूँदका भी पान कर पाओगे तो अमर हो जाओगे। भगवान्‌की प्राप्तिके अनेक मार्ग हैं, इनमें ज्ञान, भक्ति और कर्म मुख्य हैं। इन मार्गोंमेंसे किसी एकका अवलम्बन कर सरल हृदयसे साधन करना चाहिये, तब भगवान्‌की प्राप्ति हो सकती है।

ज्ञानयोग—ज्ञानी ब्रह्मको जानना चाहता है; 'नेति-नेति' विचारद्वारा जगत्‌का मिथ्यापन समझकर 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' का निश्चय कर लेता है। जहाँ विचार समाप्त हो जाते हैं, वहीं समाधि हो जाती है और ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है।

कर्मयोग—कर्मद्वारा ईश्वरमें मन लगाये रखना कर्मयोग कहलाता है। अनासक्त-बुद्धिसे प्राणायाम, ध्यान-धारणादि कर्म करना भी कर्मयोग है। ईश्वरको फल समर्पण कर पूजा-जपादि कर्म करना भी कर्मयोग है। अनासक्त हो, भगवान्‌को फल समर्पित कर भक्तिके साथ सांसारिक कर्म करना भी कर्मयोग कहलाता है। ईश्वरकी प्राप्ति ही कर्मयोगका उद्देश्य है।

भक्तियोग—ईश्वरका नाम-गुण-कीर्तन करना और उन्हींके चरणोंमें मनको लगाये रखना ही भक्तियोग है। कलियुगमें भक्ति-योग ही सहज मार्ग है। कर्मयोग बड़ा कठिन है। शास्त्रोंमें अनेक कर्म करनेका विधान है; अब उनका युग भी नहीं है। आयु कम है, फिर फल-कामना छोड़कर अनासक्त-भावसे कर्म करना महा-कठिन है। ज्ञानयोग भी इस युगमें महान् कष्टसाध्य है। जीवका अन्नगत प्राण है, आयु कम है, फिर देह-बुद्धि किसी तरह छूटती नहीं। देह-बुद्धिके नष्ट हुए बिना ज्ञान होना असम्भव है। ज्ञानी

कहता है, 'मैं ब्रह्म हूँ, शरीर नहीं; मुझे क्षुधा-तृषा, रोग-शोक, जन्म-मरण, सुख-दुःख कुछ भी नहीं है।' यदि रोग-शोकादिका बोध हो तो ज्ञान कहाँ? हाथमें काँटा चुभ गया है, बड़ी पीड़ा होती है, फिर भी कहता है कि हाथमें काँटा नहीं लगा। इसीलिये मैं कहता हूँ कि इस युगमें केवल भक्तियोग ही सहज है। ज्ञानयोग और कर्मयोगद्वारा भी ईश्वर-दर्शन हो सकता है, परन्तु है महाकठिन।

भक्त ईश्वरका साकार रूप देखना चाहता है, उसे प्रायः ब्रह्मज्ञानकी इच्छा नहीं होती। फिर भी भगवान् इच्छामय हैं, भक्तको भक्ति और ज्ञान दोनों ही दे सकते हैं। कलकत्तेमें जो एक वार जा पहुँचा, वह वहाँका सभी कुछ देख लेता है। जगन्माताको पा लेनेसे भक्ति और ज्ञान दोनों ही मिल जायँगे। भव-समाधिमें रूप-दर्शन होगा और निर्विकल्प-समाधिमें अखण्ड सच्चिदानन्दका साक्षात्कार होगा, तव अहंकार तथा नाम-रूपका तिरोभाव हो जायगा। भक्त यही कहता है, माँ! सकाम कर्मोंसे मुझे भय तो बहुत लगता है, परन्तु मेरी वासना है उन्हीं कर्मोंमें। सकाम कर्मोंसे फल अवश्य मिलेगा, अनासक्त होकर कर्म करना महाकठिन है, सकाम कर्म करते-करते तुझे भूल जाऊँगा। इसलिये माँ! जबतक तेरा दर्शन न हो, तबतक कर्म कम होते जायँ और जो कर्म हों वे अनासक्तभावसे ही हों और साथ-साथ भक्ति भी खूब दृढ़ होती जाय। जबतक तेरा दर्शन न हो, तबतक नये कर्म करनेमें मन न लगे। तेरा जैसा आदेश होगा वैसे ही तेरे कर्म करता रहूँगा, नहीं तो नहीं!

पण्डित—महाराज! आपने कहाँतक तीर्थयात्रा की है?

ठाकुर—मैंने कुछ तीर्थोंका दर्शन किया है, परन्तु हाजरा बहुत दूरतक गया है और बहुत ऊँचे भी चढ़ा है। वह हृषीकेश-तक हो आया है। मैं न इतनी दूर गया हूँ और न इतना ऊँचा चढ़ा हूँ। चील और गीध आकाशमें बहुत ऊँचे चढ़ जाते हैं, परन्तु उनकी दृष्टि पृथ्वीपर सड़े मुर्दोंकी ओर ही लगी रहती है। यदि यहीं बैठे तुम्हें भगवद्भक्ति मिल सके तो तीर्थोंमें जानेसे क्या प्रयोजन है? तीर्थयात्रासे यदि भक्तिकी प्राप्ति नहीं हुई तो क्या हुआ? भक्ति ही सार है। एक बात और समझो। तुम चाहे किसीको कितनी ही शिक्षा दो, परन्तु जबतक उपयुक्त समय नहीं आता, तुम्हारी शिक्षाका कोई फल नहीं हो सकता। एक बालकने अपनी माँसे कहा, 'माँ! जब मुझे टट्टी जानेकी हाजत हो तो जगा देना।' माँने कहा, 'बेटा! फिकर मत कर, जब तुझे हाजत होगी, तब तू आप ही जग जायगा।' इसी प्रकार भगवत्-प्राप्तिकी तीव्र इच्छा उपयुक्त समयपर ही होती है।

चिकित्सक तीन प्रकारके होते हैं, पहले प्रकारके वे हैं जो आकर रोगीको देखते हैं और नुसखा लिखकर चले जाते हैं। दूसरे वे हैं जो नुसखा लिखकर रोगीको दवा खानेके लिये हठ करते हैं; यदि रोगीकी इच्छा दवा खानेकी न हो तो उसे समझा-बुझाकर दवा खानेके लिये आग्रह करते हैं। तीसरे वे हैं, जो रोगीका हाथ पकड़कर यदि वह स्वयं न खाना चाहे तो उसे जबरदस्ती दवा खिलाते हैं। ऐसे ही तीन तरहके शिक्षक भी होते हैं। पहले प्रकारके वे होते हैं जो शिक्षा देकर चले जाते हैं, चाहे पीछे शिष्य उनके उपदेशोंपर अमल करे या न करे। दूसरी तरहके वे हैं जो शिष्यको शिक्षा देनेके उपरान्त उसको अच्छी तरह समझाकर उसपर अमल

करनेके लिये आग्रह करते हैं और तीसरी तरहके वे होते हैं जो शिष्यको बलात्कारसे भी धर्म-पथपर चलनेमें सहायता करते हैं।

पण्डित—यदि उत्तम प्रकारके शिक्षक भी हैं तो आप क्यों कहते हैं कि यथार्थ समय आये बिना कुछ असर न होगा ?

ठाकुर—यदि ओषधि पेटमें न जाने पावे और मुँहसे ही बाहर निकल पड़े तो फिर चिकित्सक क्या कर सकता है ? ऐसी दशामें उत्तम वैद्य भी कुछ नहीं कर सकता। तुम्हें शिष्यके योग्यतानुसार ही शिक्षा देनी चाहिये। परन्तु तुम ऐसा नहीं करते। जब कोई लड़का मेरे पास आता है तो पहले मैं उसके कुटुम्बका हाल पूछता हूँ। मान लो, उसके पिता नहीं है और पिता ऋण छोड़ गया है जो बेटेको देना पड़ेगा। इस दशामें वह लड़का भगवान्में मन कैसे लगा सकता है ? एक दिन दक्षिणेश्वरमें कुछ सिक्ख सिपाही आये और कहने लगे कि 'ईश्वर बड़ा दयालु है।' मैंने पूछा, 'तुम किस तरह जानते हो कि वह दयालु है ?' उन्होंने कहा, 'वह हमारा पालन करता है और रक्षा करता है।' मैंने कहा—'इसमें क्या आश्चर्य है ? यदि पिता पुत्रकी रक्षा न करे तो क्या पराये लोग करेंगे ?'

नरेन्द्र—तो क्या हम भगवान्को दयालु न कहें ?

ठाकुर—बेशक कहो। मेरा अभिप्राय यह है कि भगवान् हमारे आत्मीय सम्बन्धी हैं, पराये नहीं।

पण्डित—कैसे अमूल्य वचन हैं !

ठाकुर अब विदा होकर चले गये।

एक दिन पण्डित शशधर अपने ज्येष्ठ भ्राताको साथ लेकर दक्षिणेश्वर गये। पण्डितको देखकर ठाकुर भावावेशमें आ गये। तत्पश्चात् ठाकुरने कहा—'तुम विद्यासम्पन्न हो, मुझे कुछ सुनाओ।'

पण्डित—मेरा हृदय विद्याकी अधिकताके कारण शुष्क हो गया है। मैं आपके पास कुछ भक्ति लेने आया हूँ। आप ही कुछ सुनाइये।

ठाकुर—'मैं क्या कह सकता हूँ? ब्रह्मका यथार्थ वर्णन नहीं किया जा सकता।' फिर ठाकुर भावावेशमें जगन्माताका एक गान गाने लगे। तदुपरान्त पण्डितसे कहने लगे कि और भी अधिक साधना करो और भगवान्‌से सरल हृदयसे भक्तिके लिये प्रार्थना करो। पढ़नेकी अपेक्षा गुरु-मुखसे सुनना श्रेष्ठ है और सुननेकी अपेक्षा भी साक्षात्कार करना श्रेष्ठतर है, उससे समस्त शंकाएँ निवृत्त हो जाती हैं। यदि मन पवित्र न हुआ और भगवान्‌के पाद-पद्ममें श्रद्धा-भक्ति उत्पन्न न हुई तो पढ़ना-सुनना सब व्यर्थ है।

तीन दिन पीछे शशधर फिर ठाकुरसे मिले। ठाकुरने कहा, 'भक्ति तीन तरहकी है—सात्त्विक, राजस और तामस। सात्त्विक भक्तको तो ईश्वर ही जानते हैं, क्योंकि ऐसा भक्त अपने भावों तथा साधनाको सदैव गुप्त रखता है, वह किसीको कुछ बतलानेकी इच्छा नहीं करता। ऐसा भक्त आत्मानुभवके बहुत निकट है। जो राजस भक्त हैं, वे दूसरोंको दिखानेकी इच्छा रखते हैं, बड़े आडम्बरके साथ पूजा आदि कर्म करते हैं, रेशमी धोती पहनकर पूजा-घरमें जाते हैं, रुद्राक्षकी माला (मोती और सोनेके दानों-

सहित) गलेमें धारण करते हैं और तामस प्रकृतिके भक्त ऐसे होते हैं, जैसे डाकू किसीके घरपर डाका मारने जाय। वे शस्त्रादि लेकर दस-बीस पुलिसवालोंका भी मुकाबिला कर सकते हैं और मारो-लूटोकी गर्जना करते रहते हैं। इसी प्रकारके भक्त 'हर हर हर बम बम' वा 'जय काली' इत्यादि शब्दोंकी गर्जना करते हैं। इन लोगोंमें मनकी बड़ी प्रबलता होती है और श्रद्धा भी अद्भुत। कालीके उपासक इस तरहकी श्रद्धा रखते हैं। वे कहते हैं कि कालीका नाम एक बार ले लिया तो फिर पाप नहीं बन सकते। वैष्णव भक्त सदैव अपनेको तुच्छ समझते हैं, सदा माला जपते रहते हैं और भगवान्से प्रार्थना करते हैं कि 'प्रभो! मुझपर दया करो, मैं पापी हूँ, अधम हूँ' इत्यादि, परन्तु भक्तको पूरा दृढ़ विश्वास रखना चाहिये कि ईश्वरका नाम जपनेसे पाप-कर्म ठहर ही नहीं पाते। यह कैसी मूर्खता है कि रात-दिन नाम-जप करते हैं और फिर भी पापोंका स्मरण रखते हैं!

तत्पश्चात् ठाकुर गान गाने लगे, जिसका सारांश यह था कि 'माँ! यदि मैं तेरा नाम उच्चारण करते-करते प्राणत्याग करूँ तो तू उस कठिन समयमें मेरा त्याग नहीं कर सकती!'

ये बातें सुनते-सुनते पण्डितकी आँखोंसे अश्रुधारा बहने लगी। ठाकुरकी प्रेमामृत-वर्षाने पण्डितके हृदयको द्रवित कर दिया। ठाकुर भक्तोंसहित नाचने-गाने लगे और कहा, 'यह आध्यात्मिक साधनाका आनन्द है, संसारी लोग कामिनी-काञ्चनमें आनन्द खोजते हैं! इस आध्यात्मिक साधनामें जब भगवान्‌के दर्शन होते हैं तो वही परमानन्द है—ब्रह्मानन्द है।'

पण्डित—महाराज ! इस प्रकारका आनन्द प्राप्त करनेके लिये किस तरहकी उत्सुकता चाहिये ?

ठाकुर—यह उत्सुकता तब होती है, जब हृदय भगवद्दर्शनके लिये व्याकुल हो उठे । गुरुने शिष्यसे कहा, 'आ, मैं तुझे दिखलाऊँ कि भगवद्दर्शनकी व्याकुलता कैसी होती है ।' गुरु शिष्यको सरोवरके पास ले गया और जलमें उसके सिरको डुबो दिया । कुछ देर पीछे उसका सिर निकालकर बोला, 'कहो, कैसा अनुभव किया ?' शिष्यने कहा, 'भगवन् ! उस समय मुझे केवल साँस लेनेकी ही उत्कण्ठा थी ।' इतनी व्याकुलता होती है तभी उनके दर्शन होते हैं ।

पण्डित—अब यथार्थ रीतिसे स्पष्ट समझमें आया ।

ठाकुर—ईश्वरमें प्रेम ही मुख्य और सार वस्तु है, और सब गौण । केवल भक्ति ही चाहिये ।

शिष्य-महिलाएँ

श्रीरामकृष्णके पास जो स्त्रियाँ आया करती थीं, वे कहा करती थीं कि ठाकुरको हम पुरुष ही नहीं समझतीं, उनके सत्सङ्गमें बैठकर स्त्री-पुरुषका भाव ही नहीं रहता । इसीलिये हमें उनके पास बैठनेमें कुछ संकोच नहीं होता । अपने घरोंकी सब बातें निःसंकोच होकर हम कह देती हैं और बहुत-सी बातोंमें उनसे सलाह भी लिया करती हैं । कुछ स्त्रियोंको ठाकुरकी शिष्या बननेका भी सौभाग्य प्राप्त हुआ था । मनमोहन मित्रकी माँको ठाकुर शिष्य-महिलाओंमें शिरोमणि समझते थे । वास्तवमें उसकी आध्यात्मिक स्थिति उच्च कोटिकी थी । वह पूर्ण पतिव्रता

नारी थी और अपने पतिके देह-त्यागके पश्चात् अपने आपको मृतक-तुल्य ही मानती थी। एक दिन वह अन्य महिलाओंके साथ ठाकुरके पास बैठी हुई थी। ठाकुर स्त्री-धर्मका वर्णन करने लगे और कहने लगे कि स्त्रियोंके लिये पति-सेवा ही पर्याप्त है। उत्तम नारियाँ अपने पतिको ईश्वर-तुल्य ही समझती हैं। ऐसी भी स्त्रियाँ हो चुकी हैं जो पतिके देहान्तके बाद पतिदेवको श्रीकृष्ण समझकर पूजा करती थीं। एक रानी अपने पतिके जीवनकालमें लोह-कङ्कण पहना करती थी; परन्तु जब उसके पति राजाका देहान्त हो गया, तब उसने स्वर्ण-कङ्कण पहनना शुरू किया। अन्य स्त्रियोंने जब इसका कारण पूछा तो वह कहने लगी कि जबतक मेरे पतिदेव एक परिवर्तनशील शरीरमें थे तबतक तो मैंने लोह-कङ्कण पहनना उचित समझा। परन्तु अब वह अविनाशी परात्पर ब्रह्ममें लीन हो गये हैं और इस कारण मुझे स्वर्ण-कङ्कण धारण करना योग्य है। यही कारण है कि यह (मनमोहनकी माँ) भी, स्वर्ण-आभूषण पहना करती है। इसका भी वही भाव है। पाठकोंको याद रहे कि वह ठाकुरके शिष्य राखालकी सास थी। जब राखालके गृह-त्यागकी चर्चा होने लगती तो उसकी सास बहुत प्रसन्न होती थी और कहती थी कि 'यदि राखाल ब्रह्म-प्राप्तिके अभिप्रायसे घर-बार छोड़ संन्यासी हो जायगा तो मैं अपनेको बहुत भाग्यवती समझूँगी।'

एक दूसरी शिष्या योगेन्द्रकी माँ थी। वह एक धनी पुरुषकी पत्नी थी, परन्तु गार्हस्थ्य-दुर्घटनाओंके कारण सदा दुखी रहती थी। जबसे उसकी भेंट ठाकुरसे हुई, उसने अपने आत्माको

ठाकुरके अर्पण कर दिया था। वह जब कभी दक्षिणेश्वर आती तो ठाकुरकी धर्मपत्नीके साथ कई दिनोंतक रह जाती, जिससे दोनोंमें अत्यन्त प्रेम हो गया। श्रीरामकृष्णने उसकी योग्यता देखकर उसे मन्त्र-दीक्षा भी दी थी। ठाकुर उसकी भी आध्यात्मिक अवस्थाको ऊँची मानते थे और कहा करते थे कि कुछ समय पीछे इसके जीवनको देखकर लोग चकित हुआ करेंगे। हुआ भी ऐसा ही। कुछ साधना करनेके बाद ध्यानावस्थामें उसे समाधि भी होने लगी।

गुलाबकी माँ एक दूसरी भाग्यशालिनी विधवा स्त्री थी, जिसे ठाकुरके सत्सङ्गसे ईश्वर-प्रेम प्राप्त हुआ था। एक विचित्र घटना हुई। एक दिन ठाकुर गुलाबकी माँ और तीन अन्य शिष्योंको साथ लेकर कलकत्ते गये। वहाँसे लौटते समय सबको बड़ी भूख लगी। ठाकुरने पूछा कि किसीके पास कुछ पैसे भी हैं? और तो किसीके पास कुछ न था। गुलाबकी माँके पास चार पैसे निकले। ठाकुरने एक शिष्यको इन पैसोंसे बाजारसे कुछ खाद्य-वस्तु लानेको कहा। वह कुछ मिठाई ले आया और ठाकुरको दे दी। वह सब खा गये। बाकी सब देखते ही रह गये। फिर उन्होंने जल पीया और कहने लगे कि 'अब तृप्ति हुई।' आश्चर्यकी बात यह है कि इससे सब-के-सब तृप्त हो गये। इस अवसरपर श्रीकृष्ण और दुर्वासा ऋषिकी कथा याद आती है। सिद्ध पुरुष प्रकृतिके प्रभु होते हैं; वे जैसी इच्छा करते हैं वैसा ही हो जाता है।

तीन शिष्य-स्त्रियोंकी सेवासे ठाकुर बड़े प्रसन्न रहते थे और उनके हाथका बनाया हुआ भोजन भी वह रुचिसे खाते थे। उनमेंसे एक गोपालकी माँ भी थी। वह नबगोपाल घोषकी पत्नी

थी; उसका नाम अघोरमणि था। आठ वर्षकी अवस्थामें ही वह विधवा हो गयी थी। साठ वर्षकी आयुमें सन् १८८४ में उसका ठाकुरसे मिलन हुआ था। बचपनसे ही भगवान् श्रीकृष्णपर वह वात्सल्य-भाव रखती थी और सदैव अपने आपको गोपालकी माँ समझती थी। वह जो कुछ भी काम करती, गोपालके लिये ही करती। घरमें झाड़ू लगाती तो गोपालके लिये और भोजन बनाती तो गोपालके निमित्त। इस प्रकार उसका चित्त गोपालमय ही हो गया था। एक दिन वह भोजन बनाने लगी। लकड़ी गीली होनेके कारण धुआँ निकलने लगा और उलटी हवा होनेसे धुआँ उसकी आँखोंमें घुसने लगा। परन्तु किसी तरह उसने दाल-भात तैयार किया। रसोई बनाकर जब वह पत्तेपर परोसने लगी तो हवाने पत्ता ही उड़ा दिया। इसपर वह भगवान्को ही कोसने लगी कि गोपालको भोजन देनेमें वह क्यों इतनी बाधा डालते हैं। इतनेमें ही एक छोटा-सा बालक आया और उसने पत्ता उठाकर बिछा दिया। गोपालकी माँने उसपर दाल-भात परोस दिया, परन्तु वह बालक न जाने कहाँ अन्तर्धान हो गया। वह अपने अदृष्ट गोपालको सदाकी भाँति दाल-भात खिलाने लगी। पत्ता उठाकर देनेवाले बालकका विचार करते-करते वह समझ गयी कि गोपाल वही था। फिर तो उसकी यादमें वह बहुत दुखी हुई, यहाँतक कि खाना-पीना भी भूल गयी। सदैव 'मेरा गोपाल कहाँ है' 'मेरा गोपाल कहाँ है' यही पुकारने लगी। लोगोंने समझा कि वह पागल हो गयी है। एक दिन पड़ोसके लोग दक्षिणेश्वर जाने लगे। वे उसे भी साथ ले गये। यह सोचकर कि साधुके पास खाली हाथ नहीं जाना चाहिये, गोपालकी माँने कुछ कच्चे दाल-चावल मिलाकर

पल्लेमें बाँध लिये। जब सब लोग ठाकुरके पास पहुँचे तो सबने अच्छे-अच्छे फल ठाकुरको भेंट किये। अघोरमणि कच्चा अन्न भेंट करनेमें शरमाने लगी। वह उन्हें छिपाती हुई दूर कोनेमें बैठ गयी। जब सब लोग अपनी भेंट दे चुके तो ठाकुर गोपालकी माँके पीछे जा खड़े हुए और कहने लगे, 'मैं भूखा हूँ, क्या मुझे कुछ खानेको दोगी ?' गोपालकी माँने कहा, 'महाराज ! मैं क्या दे सकती हूँ, मैं निर्धन स्त्री हूँ।' ठाकुरने उस बँधी हुई गठरीकी तरफ इशारा करके कहा, 'यह क्या है ?' उसने लज्जित-सी होकर जब गठरी खोलकर दिखायी तो ठाकुरने कहा, 'मेरे लिये इसकी खिचड़ी बना दे।' इतना कहकर उसे स्वयं रसोई-घर दिखा आये। खिचड़ी बन जानेपर वह सोचने लगी कि मेरे पास न घी है, न मसाला। इस रूखी-सूखी खिचड़ीको कैसे परोसूँ ? इतनेहीमें ठाकुर आ गये और पूछने लगे कि 'माँ ! खिचड़ी तैयार हो गयी ?' गोपालकी माँने वह खिचड़ी उनके आगे परोस दी। ठाकुर बोले, 'अपने हाथसे मुझे खिला दे।' जब वह खिलाने लगी तो उसने ठाकुरकी जगह अपने उसी गोपालको देखा जो पत्ता उठाकर लाया था। 'तू ही मेरा गोपाल है' कहकर वह बड़ी प्रसन्न हुई। ठाकुरने खिचड़ी खाकर सबसे कहा, 'आज मैंने असली अमृतका भोजन किया है।' उस दिनसे वह सदैव प्रसन्न रहने लगी। कभी-कभी दक्षिणेश्वर जाकर, अपने लाये हुए दाल-चावल पकाकर वह ठाकुर-को खिला आती और बड़ी सन्तुष्ट रहती। घरके धन्धोंसे फुरसत मिलनेपर वह जप करने लगती।

एक दिन अपना जप समाप्त कर जब वह जपका फल गोपालको समर्पण करने लगी, तो उसने ठाकुरको अपने पास बैठे

देखा। वह मुस्करा रहे थे। अघोरमणि आश्चर्यमें डूब गयी। उसने जब उनका हाथ पकड़ा तो वह गोपालकी आकृतिमें एक हाथ उठाकर माखन माँगने लगे। उसने कहा, 'बेटा! मैं गरीब विधवा हूँ, माखन कहाँसे लाऊँ?' गोपालका हठ देखकर उसने कुछ मिठाई लाकर दी और कहने लगी कि 'मेरे प्यारे! इस समय यही है, खा ले।' इस घटनाके बाद वह जप इत्यादि कुछ न कर सकी। दिन निकलते ही वह पागलोंकी तरह गोपाल-गोपाल पुकारती दक्षिणेश्वरकी तरफ चली। वहाँ जाकर कमरे-में घुसी और ठाकुरके पास जा बैठी। ठाकुर समाधिस्थ हो गये। अघोरमणिकी आँखोंसे अश्रुधारा बह रही थी। अपने साथ जो माखन-मिसरी ले आयी थी, उसे ठाकुरको अत्यन्त प्रेमसे खिलाने लगी। ठाकुर बाह्यज्ञानमें आ गये, परन्तु गोपालकी माँके हृदयमें प्रेम-समुद्र वैसे ही लहरें मार रहा था; वह किसी दूसरी ही दुनियामें थी; मस्त होकर नाच रही थी। तदुपरान्त वह वापस चली गयी। भोजन बनाते समय गोपाल उसके सामने खेला करता; कभी वह नटखट उसके काममें बाधा डालता तो वह प्यार करने लगती, न मानता तो कभी उसे झिड़कने लगती।

दक्षिणेश्वरमें एक दिन जब वह माला जप रही थी तो ठाकुरने कहा, 'अब भी क्यों जप किया करती है। तेरे सब कर्म समाप्त हो गये और तूने अपना ध्येय भी प्राप्त कर लिया।' तीस वर्षकी निरन्तर साधनासे अघोरमणिने अपना इष्ट प्राप्त किया। दो मासतक वह निरन्तर गोपालका साक्षात्कार करती रही। रात-दिन गोपाल उसकी दृष्टिमें बसे रहते थे। ऐसी परमोच्च अवस्था इस युगमें बहुत ही कम लोगोंको प्राप्त होती है। कुछ

समय पश्चात् ध्यानमें उसे गोपालकी जगह ठाकुरका रूप दिखायी देने लगा । इसपर वह एक दिन ठाकुरसे पूछने लगी कि 'गोपाल ! मैंने क्या अपराध किया कि अब तेरा पहला रूप नहीं देखती ?' ठाकुर उसे सान्त्वना देते हुए कहने लगे कि 'ऐसी परमोच्च अवस्था-में रहनेपर इस युगमें शरीर बहुत दिनोंतक नहीं ठहर सकता ।' ठाकुर कहा करते थे, 'सबमें कुछ-न-कुछ अहंभाव बाकी रहता ही है, केवल दो ही व्यक्ति हैं जिनमें इसका नामोनिशान भी नहीं । एक नरेन्द्र है जिसकी ज्ञानाग्निने अहंकाररूपी समस्त कूड़े-करकट-को भस्म कर दिया है । दूसरी गोपालकी माँ है जो सांसारिक तहसे एकदम ऊँची उठी हुई है, उसके भीतर और कुछ वस्तु नहीं रही; सिरसे पैरतक केवल गोपाल-ही-गोपाल भरा हुआ है ।'

श्रीरामकृष्णका यह स्वभाव था कि जब कोई मनुष्य पहली बार दक्षिणेश्वर आता, तो ठाकुर उसकी भक्ति बढ़ानेके अभिप्रायसे उसके घर जाया करते थे । इसी प्रकार वह एक दिन किसी शिष्याके घर गये । वहाँ एक उद्धत युवक रहा करता था जो ठाकुरके अन्तःपुरमें जानेसे बहुत क्रोधित होता था । वह कहा करता था कि यह साधुवेषधारी ढोंगी है, इसी बहाने स्त्रियोंके घरोंमें जाया करता है । उसने अपने साथियोंसे मिलकर निश्चय किया कि इस ढोंगीको किसी दिन अच्छी तरह शिक्षा देंगे । कुछ दिन बाद ठाकुर फिर एक दिन उसी घरमें गये । वहाँ चालीस-पचास स्त्रियाँ बैठी हुई थीं । ठाकुर उन्हें उपदेश करते-करते अचानक वहाँसे उठकर बाहरके आँगनमें चले गये और जिस कमरेमें कुछ छोकरे बैठे हुए थे, वहाँ जाकर उन लड़कोंके सरदारकी बाँह पकड़कर बोले कि 'क्या तू ही मुझे भलीभाँति ठोंकना चाहता है ?'

लड़केने जब ठाकुरके चेहरेकी ओर देखा तो वह बहुत लज्जित हुआ और उसका क्रोध शान्त हो गया। उसने फिर दूसरे साथियोंसे कहा कि 'यदि कोई इनके ऊपर हाथ उठावेगा तो मैं उसे बहुत मारूँगा।' इस घटनाके बाद वह ठाकुरका भक्त बन गया, उसकी क्रूरता जाती रही और उसका जीवन ही पलट गया।

ठाकुरकी कई और भी शिष्याएँ थीं, विस्तारभयसे उनका जिक्र यहाँ नहीं किया जाता। नारी-समाजके प्रति ठाकुरका बड़ा आदर था, वह उन्हें भगवतीका रूप मानते थे। यहाँतक कि वेश्या भी उनकी दृष्टिमें जगन्माताका निवासस्थान ही थी।

श्रीरामकृष्णकी शिक्षा-प्रणाली

ठाकुरका शिक्षा देनेका ढंग बड़ा ही मधुर और रसीला था। यद्यपि कभी-कभी वह कठोर भी हो जाया करते थे, परन्तु साधारणतः उनका भाव मातृवत् ही रहता था। जैसे माता खेल-कूदके लिये तैयार करके पुत्रको खेलने भेज देती है और जब खेलते-खेलते उसके कपड़े धूलसे भरकर मैले हो जाते हैं तो साफ भी स्वयं ही करती है, वैसे ही ठाकुर भी अपने शिष्योंकी आध्यात्मिक उन्नतिका भार अपने ऊपर ले लेते थे। ठाकुरकी जीवनीमें एक जगह कहा जा चुका है कि जब विख्यात नाट्यकार गिरीशचन्द्र घोष केवल एक बार भी भगवत्स्मरण करनेका प्रण करनेमें असमर्थ हुए तो ठाकुरने उनसे कहा था कि 'मुझे आम-मुख्तारी दे दो, मैं तुम्हारे मोक्षका जिम्मेवार बनता हूँ।' उनका सार्वभौम प्रेम सबकी सहायता ही करना जानता था। यद्यपि उन्होंने अपनी साधनामें कठोर-से-कठोर तपस्या की थी, परन्तु

अपना लक्ष्य प्राप्तकर वह जगत्‌को सुलभ रीतिसे भगवत्प्राप्तिके साधन बतलाते थे। वह कहा करते थे कि 'यदि तुम मेरी की हुई साधनाका सोलहवाँ हिस्सा भी कर सको तो ईश्वर-प्राप्ति कर सकते हो परन्तु कुछ साधना तो अवश्य करनी ही होगी, बिना कुछ किये साधक कुछ प्राप्त नहीं कर सकता।' एक दिन किसीने उनसे कहा, 'महाराज! आपमें तो स्पर्शमात्रसे ही मनुष्यको सिद्ध बना देनेकी शक्ति है; फिर आप सबके लिये ऐसा क्यों नहीं करते?' ठाकुरने कहा, 'यदि मैं ऐसा करूँ तो लोग सिद्धिको रख नहीं सकेंगे, शिष्यको उस लक्ष्य-प्राप्तिके लिये तैयार होना चाहिये; तभी वह स्थायी रूपसे सिद्धिको धारण कर सकता है।' उन्होंने किसीको घोर त्याग या घोर तपस्या करनेके लिये कभी नहीं कहा। वह संसार त्यागनेके लिये नहीं कहा करते थे, वरं शिष्यको सांसारिक भोग भोगनेका आदेश देते थे और कहा करते थे कि 'बेटा! आनन्दमयी माँके रचे हुए भोगोंको जी भरकर भोगो, परन्तु भोगो माँका निरन्तर स्मरण रखते हुए! इस तरह भोगनेसे विषय-वासना स्वयं नष्ट हो जायगी।' किसीकी कोई बुरी आदत छुड़ानेके लिये वह एकदम छोड़नेको कभी नहीं कहा करते थे, धीरे-धीरे छुड़ाना ही उनका नियम था। उन्होंने एक दिन कहा, 'एक पुरुषने किसी वैद्यके पास जाकर कहा कि महाशय! मैं अपनी अफीम खानेकी आदतको कैसे छोड़ूँ? वैद्यने कहा कि छोड़नेकी कुछ जरूरत नहीं; केवल इतना ही किया करो कि जितनी अफीम रोज खाते हो, उतनी ही खड़ियाकी एक डली तौल लो उस डलीसे रोज तौलकर अफीम खाया करो परन्तु इतना किया करो कि खानेके बाद उस डलीसे रोज जमीनपर एक लकीर खींच

दिया करो। इस तरह करते-करते डली भी समाप्त हो गयी और अफीम खाना भी बन्द हो गया। जबतक विषयोंमें प्रीति है, लाख कोशिश करो, कभी लालसा नहीं मिटती। परन्तु घृणा उत्पन्न होते ही उनसे छुटकारा मिल जाता है और ऐसा भगवत्स्मरण और सत्संगसे ही हो सकता है।' भले-बुरे सभी उनकी सहायताके पात्र बनते थे, सबका पुनरुत्थान करना उनकी बान थी, सब ही उनके प्रेम-भाजन थे। वह किसीके चेहरेपर उदासी देखना पसंद नहीं करते थे और कहा करते थे कि आनन्दमयी माँके पुत्रोंको सदैव प्रसन्नवदन रहना चाहिये। यदि कोई प्रसन्नमुख नहीं रह सकता तो उसे चाहिये कि वह किसीको अपना दुखी चेहरा न दिखावे। चेहरेसे ही वह समझ जाते थे कि अमुक व्यक्ति किस योग्य है। यदि कोई झूठे धार्मिक जीवनका ढोंग बनाता तो उसे कह देते कि 'जाओ, पहले गृहस्थी भोगो।' यदि किसीमें वैराग्यकी मात्रा कम देखते थे तो उसे भी एकदम गृह-त्यागका आदेश नहीं देते थे। उसे ऐसी साधना बतलाते, जिससे धीरे-धीरे स्वयं ही वह गृहस्थाश्रमका त्याग कर दे।

श्रीरामकृष्ण सब मुमुक्षुओंके लिये एक प्रकारकी ही साधना-विधिका उपदेश नहीं करते थे, जैसी कि प्रायः सभी साम्प्रदायिक गुरुओंकी रीति है; बल्कि प्रत्येक शिष्यके भाव, प्रकृति तथा आध्यात्मिक अवस्थाके अनुसार ही उनकी शिक्षा होती थी। इसीलिये किसीको ज्ञानमार्ग, किसीको भक्तिमार्ग तथा किसीको कर्मपथपर आरूढ़ होनेका आदेश करते थे। वह स्वयं बहुत थोड़ा और साधारण आहार करते थे; परन्तु दूसरोंको सुन्दर स्वादिष्ट पदार्थ खिलाकर बड़े प्रसन्न होते थे। जब कभी भक्त लोग फलादि

वा मिष्टान्न लाकर उन्हें भेंट करते थे, तब वह अपने शिष्योंके लिये उन्हें रख छोड़ते और उन्हें खिलाकर बड़े सन्तुष्ट होते। कभी शिष्योंको वट-वृक्षके नीचे ध्यान करनेकी आज्ञा देते; स्वयं आसनों-को उठाकर वहाँ ले जाते और मातृवत् उनकी देख-भाल रखते। कभी छोटे बालकोंसे आँख-मिचौनी खेलते और कभी उन्हें कहानियाँ सुनाकर प्रसन्न करते। उनके विचारमें धार्मिक जीवन आमोद-प्रमोद और आनन्दपूर्ण था। उदास, चिन्तामय तथा गम्भीरभावको वह पसंद नहीं करते थे। धर्म-पथको वह ऊँचे चढ़नेका मार्ग समझते थे। शिष्यको उसकी वर्तमान स्थितिसे उठाकर ऊँची श्रेणीपर पहुँचा देना उनकी रीति थी। वह कहा करते थे कि जीवको ब्रह्मसे विमुख करनेका कारण केवल अहंकार ही है। यह बड़ा भयानक शत्रु है, इसका नाश होते ही मुक्ति तो सम्मुख खड़ी हो जाती है। इस अहंकारका नाश करना महा कठिन है। यदि इसका नाश न हो तो इसे परमेश्वरका दास बनाये रक्खो। जबतक अहंभाव बाकी है, तबतक 'शिवोऽहम्' कहनेका किसीको भी अधिकार नहीं। इस अवस्थामें तो 'दासोऽहम्' की ही रट लगाते रहना चाहिये।

(१७)

कण्ठ-रोग

यहाँतक ठाकुरके अद्भुत, अपूर्व और भावपूर्ण चरित्रोंका वर्णन किया गया। आशा है, पाठकोंको यह चरित्र अत्यन्त शिक्षाप्रद तथा आध्यात्मिक जीवनके लिये लाभदायक प्रतीत होगा। महापुरुषोंके चरित्रोंका मनन तथा अनुवर्तन करके हम अपनी आत्माको बहुत उन्नत बना सकते हैं। अब श्रीरामकृष्णकी अन्तिम इहलौकिक लीलाका कुछ उल्लेख कर यह खण्ड समाप्त किया जाता है।

सन् १८८५ के गर्मीके मौसममें ठाकुरको गर्मीकी सख्तीने बहुत सताया। बार-बार जल पीनेसे कण्ठमें पीड़ा होने लगी। पहले तो रोग साधारण समझा गया था; परन्तु वह उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। ठाकुर जब कभी बोलते या समाधिमग्न होते तो पीड़ा बढ़

जाती। इससे शिष्योंको बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने कण्ठरोगके खास डाक्टर श्रीराखालचन्द्र घोषको बुलाकर उनका इलाज कराना शुरू किया। डाक्टरने कुछ दवा दी और कहा कि यदि बोलना और समाधिस्थ होना बंद कर दिया जाय तो रोग शीघ्र ही शान्त हो जायगा। परन्तु यहाँ शरीरकी किसे परवा थी? चिकित्सककी आज्ञाके विरुद्ध ठाकुर एक दिन एक संकीर्तनमें चले गये, वहां बारंबार समाधिस्थ होनेके कारण रोग बहुत बढ़ गया। डाक्टरने कहा कि यदि ऐसा ही होता रहा तो रोग असाध्य हो जायगा। शिष्य लोग अब बड़ी सावधानीसे रक्षा करने लगे, जहांतक होता वे बोलने और समाधिस्थ होनेके कारणोंको रोका करते। परन्तु कोई भक्त यदि दर्शनार्थ आ जाता तो वह बोलनेसे न रुकते। कोई मना करता तो कहते, 'लोग दूरसे मिलने आते हैं, यदि कुछ न बोलूँ तो वे निराश होंगे।' इस प्रकार पीड़ा बढ़ते-बढ़ते इतनी तीव्र हो गयी कि खानेमें भी बड़ा कष्ट होने लगा; लेकिन उन्होंने बोलना और समाधिमग्न होना न छोड़ा। लोगोंका भी आना-जाना बढ़ने लगा। दयार्द्रहृदय होनेके कारण वह आनेवाले लोगोंको निराश करना नहीं चाहते थे। इसलिये भगवत्-चर्चा किये बिना उनसे रहा नहीं जाता था। यद्यपि वह किसीसे अपनी तन्दुरुस्ती खराब होते जानेकी बात नहीं कहा करते थे, परन्तु उन्हें इस बातका बोध अवश्य था कि शरीरकी अवस्था बिगड़ती जा रही है। कभी-कभी वह जगन्मातासे यों कहते सुने गये कि 'माँ! तू मेरे पास ऐसे लोगोंको क्यों भेजती है जो एक भाग दूधके साथ पाँच भाग पानी मिले हुएकी तरह हैं? उनके पानीको जलानेके लिये अत्यन्त परिश्रम करते-करते यह शरीर रोगी

हो गया । अब मेरी शक्तिसे परे है । यदि तुझे ऐसा ही शौक है तो तू आप ही उपाय कर या ऐसे लोगोंको भेज जो थोड़े ही शब्दोंसे जागृत हो जायँ ।' कभी-कभी वे कहते—'तू भीड़-की-भीड़ लोगों-को यहाँ भेजती है, जिससे मुझे खाने-सोनेका भी अवकाश नहीं मिलता, अब यह शरीर खोखले, फूटे ढोल-सा हो गया है, यदि अब भी इसे बजाती रहेगी तो कबतक चलेगा ?'

शिष्योंने जब देखा कि रोग घटता ही नहीं तो सबको बड़ी चिन्ता हुई । आखिर यही निश्चय किया गया कि उन्हें कलकत्ते ले जाकर इलाज कराया जाय । इस अभिप्रायसे वे उन्हें कलकत्ते ले गये । श्यामापूकुरमें एक मकान किरायेपर लेकर वहाँ डाक्टरका इलाज करने लगे । ठाकुरकी पत्नी भी वहाँ आ गयीं और सब लोग तन-मनसे उनकी सेवा करने लगे । कुछ शिष्य भी सेवा करनेके लिये रात-दिन वहीं रहने लगे । वे रातको बारी-बारीसे जागते रहते । कलकत्तेमें रहनेके लिये खर्चकी सबको चिन्ता थी । ब्रह्मचारी शिष्य लोग तो सब निर्धन थे, गृहस्थोंमें भी किसीके पास इतना धन नहीं था जिससे वह अपने कुटुम्बका पालन करते हुए ठाकुरका और शिष्योंका खर्च स्वयं बरदाश्त कर सके । उनकी सेवा करनेके अभिप्रायसे आपसमें यह सम्मति हुई कि सुरेन्द्र घरका किराया दे और बलराम, रामचन्द्र, महेन्द्र और गिरीश आदि भक्त बाकी खर्च चलावें । इस प्रकार एकान्त सेवा-भावसे सब लोग गुरुदेवकी निःस्वार्थ सेवामें तत्पर हो गये ।

डाक्टर महेन्द्रलाल सरकारको ठाकुरकी चिकित्सा करनेका कार्य सौंपा गया । वह कलकत्तेके बड़े प्रसिद्ध डाक्टर थे । उन्होंने जी-जानसे ठाकुरकी सेवा करना शुरू किया । ठाकुरके महत्त्वका

उन्हें भी पता लग गया। वह कई बार रोज उन्हें देखने आने लगे और ठाकुरके वचनामृतसे शान्ति प्राप्त करने लगे। सरल स्वभाव और पवित्र-हृदयवाले शिष्योंसे भी उनका प्रेम बढ़ गया। एक दिन ठाकुरको समाधिस्थ देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ, क्योंकि पहले यह अवस्था उन्होंने कभी नहीं देखी थी। नाड़ी तथा हृदयकी चाल देखनेसे उन्हें मालूम हुआ कि दोनों बंद हैं और आँखोंमें दृष्टि भी नहीं है, परन्तु वह जीवित जरूर मालूम होते हैं। इसपर वह कहने लगे कि 'यहाँ पाश्चात्य विज्ञानकी पहुँच नहीं है।' कई सप्ताह हो गये, परन्तु रोगमें कुछ भी फर्क़ न पड़ा। जब डाक्टरने देखा कि इतने दिनोंतक इलाज करनेसे भी रोगमें कुछ कमी न हुई तो उन्होंने सलाह दी कि इन्हें शहरसे बाहर किसी बगीचेमें ठहराया जाय जहाँ निर्मल वायु हो। सम्भव है, हवा बदलनेसे रोग कुछ घटे। तदनुसार काशीपुरमें एक अच्छा खुला हुआ मकान ८०) भाड़ेमें लेकर ठाकुरको वहाँ ले गये। इस सुन्दर स्थानको देखकर ठाकुर बड़े प्रसन्न हुए। यह ११ दिसम्बर सन् १८८५ की घटना थी।

महासमाधि

मकानमें श्रीरामकृष्णके आरामके लिये सब तरहका बन्दोबस्त कर दिया गया। नरेन्द्रने ठाकुरकी सेवाका भार अपने जिम्मे लिया। यद्यपि वह वकालतकी परीक्षाकी तैयारी कर रहे थे और उधर अपने कुटुम्बियोंसे मुकदमा भी छिड़ा हुआ था, फिर इन बातोंकी परवा न कर वह रात-दिन वहीं रहने लगे और उनकी सेवामें तत्पर हो गये। जब सेवासे समय मिलता तो कुछ अध्ययन भी कर लेते। उनका

विचार था कि अपनी माँ और भाइयोंके लिये कुछ धन जमा करके उनके निर्वाहमात्रका प्रबन्ध कर दूँगा और फिर गृहस्थाश्रमका त्याग कर संन्यासाश्रममें प्रविष्ट हो जाऊँगा, परन्तु ईश्वरको कुछ और ही मंजूर था ।

ठाकुर दिनोंदिन कमजोर होते गये। एक दिन उन्होंने कहा, 'निर्बलता बढ़ती जानेसे कमरेके बाहर जाकर शौचादि क्रिया करना भी असम्भव हो जायगा ।' इस इशारेपर लाटू बोला कि 'महाराज ! मैं आपका भंगी बन जाऊँगा ।' इसपर सब हँसने लगे । सब काम नियमपूर्वक चलने लगा । नवयुवक शिष्य प्रायः रात-दिन वहीं रहने लगे और नरेन्द्र सबके मुखिया बने । जब वे लोग ठाकुरकी सेवासे फुरसत पाते तो नरेन्द्र सबको इकट्ठा कर उन्हें ध्यान, भजन तथा अध्ययनमें लगा देते अथवा उनसे आध्यात्मिक विषयोंपर बात-चीत करने लगते । इस प्रकार उन युवकोंका संघ नरेन्द्रके नेतृत्वमें सुदृढ़रूपसे संगठित हो गया । उन युवकोंकी संख्या बारह थी । उत्तम जल-वायुवाले स्थानमें रहनेसे ठाकुरका रोग कुछ घटता दिखायी देने लगा । निर्बलता कम होती जा रही थी और कमरेसे बाहर निकलकर वह कुछ टहल भी लेते थे । इस समय पं० शशधर आये और ठाकुरसे कहने लगे, 'महाशय ! शास्त्रोंमें लिखा है कि आप-जैसे महापुरुष अपनी मानसिक शक्तिसे ही रोगको नष्ट कर सकते हैं । यदि आप भी ऐसा ही करें तो रोग शीघ्र निवृत्त हो जाय ।' इसपर ठाकुर कहने लगे, 'तुम पण्डित हो फिर भी ऐसी विचारहीन बात कहते हो । यह मन तो अब भगवान्के पादपद्मोंमें समर्पित हो चुका , अब इसे वापस लेकर इस नाशवान् शरीरमें कैसे जोड़ूँ ?' शशधर चुप रह गये । उनके चले जानेपर नरेन्द्र

गया । ठाकुर

आदि ठाकुरके इन वचनोंसे सन्तुष्ट न हुए। उन्होंने उनसे कहा, 'महाराज! इस रोगको हमारे हितार्थ ही नष्ट कर दीजिये।' ठाकुरने कहा—'यह काम माँपर निर्भर करता है, मैं कुछ नहीं जानता।' नरेन्द्रने कहा, 'माँसे प्रार्थना कीजिये, वह आपकी बात जरूर मान लेगी।'

ठाकुर—मैं ऐसा नहीं कर सकता।

नरेन्द्र—नहीं, आपको हमारे लिये ऐसा करना ही होगा।

ठाकुर—अच्छा, मैं कोशिश करूँगा।

कुछ समय बाद नरेन्द्रने पूछा, 'आपने प्रार्थना की थी?' ठाकुर बोले—'हाँ, मैंने उससे कहा कि इस पीड़ाके कारण मैं खा भी नहीं सकता, ऐसा उपाय कर कि थोड़ा-सा खा तो लिया करूँ। इसपर माँ बोली कि क्या तू इतने मुखोंसे नहीं खा रहा है (शिष्योंकी तरफ इशारा करके)। मुझे फिर लज्जा आ गयी और कुछ न कह सका।'

एक दिन ठाकुरने महेन्द्रसे कहा, 'मेरा कार्य पूरा हो गया, अब मैं किसीको शिक्षा नहीं दे सकता। अब समस्त जगत्‌को ईश्वररूप ही देख रहा हूँ। मैं देख रहा हूँ कि यह जगत् नाम-रूप-रहित साक्षात् सच्चिदानन्द ही है।' एक समय ठाकुर बगीचेमें थोड़ा टहलने गये, वहाँ कुछ शिष्य बैठे बात कर रहे थे। ठाकुर वहीं चले गये और गिरीशको सम्बोधन कर बोले—'गिरीश! मेरे अंदर तू क्या देखता है जो सबसे कहता फिरता है कि यह भगवान्‌का ही अवतार है?' गिरीशने चरणोंमें गिरकर कहा, 'भगवन्! मैं तुच्छ प्राणी उस परात्पर ब्रह्मकी क्या महिमा वर्णन

कर सकता हूँ जिसे व्यासादि ऋषि-मुनि भी स्वरूपतः नहीं जान सके ?' इसपर ठाकुरने सन्तुष्ट होकर आशीर्वाद दिया कि 'तुम सबको ब्रह्मज्ञानकी प्राप्ति हो।' फिर वह भावावस्थित हो गये। सब शिष्य साष्टांग चरणोंपर गिर गये। इसपर ठाकुरने एक-एकको स्पर्श किया। स्पर्श होते ही किसीको अपने इष्टदेवके साक्षात् दर्शन हुए, किसीको देदीप्यमान ज्योतिके दर्शन हुए। सबने अपूर्व आनन्दका अनुभव किया। इस घटनाके बाद ठाकुरके शरीरमें जलन मालूम होने लगी, जिससे मालूम हुआ कि ठाकुरने सबके पाप अपने ऊपर ले लिये। ठाकुरने अपने शरीरपर गंगाजल छिड़कनेको कहा। जल छिड़कनेसे दाह शान्त हो गया। यह घटना १ जनवरी सन् १८८६ की है।

नरेन्द्रके मनमें इस समय ब्रह्म-साक्षात्कारकी तीव्र उत्कण्ठा हुई। इस दशाका वर्णन उन्होंने महेन्द्रसे इस प्रकार किया था।

नरेन्द्र—दो जनवरीको मैं ध्यान कर रहा था कि अचानक मेरे हृदयमें एक विचित्र स्फुरणा हुई।

महेन्द्र—क्या कुण्डलिनीकी जागृति ?

नरेन्द्र—शायद ऐसा ही हुआ हो; क्योंकि उस समय मैंने ईड़ा, पिंगला नाड़ियोंका प्रत्यक्ष अनुभव किया। फिर मैं ठाकुरके पास गया और बोला कि सबको तो आपने ब्रह्म-साक्षात्कार करा दिया, क्या मैं ही वञ्चित रहूँगा ? उन्होंने कहा—'पहले तू अपने कुटुम्बके निर्वाहका कुछ प्रबन्ध कर दे, फिर तुझे सब कुछ मिल जायगा। तू क्या चाहता है ?' मैंने कहा कि मैं तीन-चार दिनोंतक निरन्तर समाधिमें रहना चाहता हूँ। उन्होंने कहा कि

न भूलें है, इस समाधिसे भी ऊँची अवस्था और है। जब तू कुटुम्बके निर्वाहका प्रबन्ध कर ले तो मेरे पास आना, फिर तुझे समाधिसे भी उच्च अवस्था प्राप्त होगी। मैं घर गया और कमरेमें बैठकर वकालतकी पुस्तकोंका अध्ययन करने लगा। मुझे पढ़नेसे भयानक डर मालूम होने लगा। पुस्तकोंको छोड़ मैं यहाँ भाग आया। ४ जनवरीकी रातको ठाकुरका रोग बढ़ने लगा, पीड़ा बहुत होने लगी, परन्तु फिर भी धीमी-धीमी आवाजसे वह कहने लगे—'नरेन्द्रकी अद्भुत दशा देखो। वह ब्रह्मसाक्षात्कारके लिये लालायित हो रहा है, वह शीघ्र ही अपना ध्येय प्राप्त करेगा।' उसी रातको मैं अपने दो गुरुभाइयोंके साथ बैठकर ध्यान करने लगा। ठाकुरके आज्ञानुसार साधन करते-करते मुझे भिन्न-भिन्न प्रकारके अनुभव होने लगे, जिन अनुभवोंद्वारा ठाकुरके पश्चात् मुझे बहुत कुछ कार्य करना था।

फिर ठाकुरने नरेन्द्रसे कहा—'इन बालकोंको मैं तेरी देख-भालमें छोड़ता हूँ; सावधान रहना; ऐसा न होने पावे कि ये ध्यानादि छोड़कर अपने-अपने घरको लौट जायँ।' ठाकुर उन शिष्योंको संन्यास-मार्गकी तरफ बढ़ा रहे थे। एक दिन उन्होंने उनसे कहा—'आज गृहस्थोंके घरोंसे कुछ भिक्षा माँग लाओ।' इस बातसे सब बड़े प्रसन्न हुए और झोली लेकर भिक्षा ले आये। भिक्षान्नसे भोजन तैयार कर जब ठाकुरको अर्पण किया तो उन्होंने एक-दो चावल खाकर कहा, 'यह बड़ा पवित्र अन्न है।'

शिवरात्रिको शिष्योंने रातभर भजन-ध्यान किया। नरेन्द्रने अपनी पैदा की हुई शक्ति और सिद्धिकी परीक्षा करनेके अभिप्राय-

से कालीसे कहा—'जब मैं ध्यानमें बैठूँ तो तू मुझे स्पर्श करना।' जब वह ध्यानमें बैठे तो कालीने थोड़ी देर बाद उन्हें स्पर्श किया। उसी क्षण बिना इच्छाके ही काली भी ध्यान-मग्न हो गया। यह बात ठाकुरके भी कानोंतक जा पहुँची। उन्होंने नरेन्द्रको बहुत झिड़का कि अपनी शक्तियोंको क्यों वृथा नष्ट करता है? ठाकुरकी दशा दिनोंदिन बिगड़ती जाती थी, यहाँतक कि अब आहार भी नाममात्रको रह गया था। इस अवस्थामें रुधिर-स्राव होनेसे उन्हें निश्चय हुआ कि वह अब शरीर छोड़ना ही चाहते हैं, परन्तु उनकी मुखाकृति सदैवकी भाँति प्रसन्न ही रही। वह कहने लगे—'हे मन! इस शरीर और उसकी वेदनाकी चिन्ता छोड़ और नित्य आनन्दमें ही निवास कर।' फिर कहा—'मैं परमात्माके नाना रूपोंको देख रहा हूँ और यह (अपनी तरफ इशारा करके) भी उन्हींमेंसे एक है। जानते हो मैं क्या देख रहा हूँ? सब कुछ ब्रह्म ही है, चराचर जगत् उन्हींका रूप है, वही सबको चैतन्य दे रहे हैं।'

जब कोई भी इलाज ठाकुरके रोगको नष्ट न कर सका तो माताजी (उनकी धर्मपत्नी) ने तारकेश्वरनाथ शिवसे प्रार्थना करके ठाकुरको रोगमुक्त करानेकी चेष्टा की। इस अभिप्रायसे वह तारकेश्वर गयीं और मन्दिरमें लेटकर प्रण किया कि जबतक मेरी मनोकामना पूर्ण न होगी, तबतक मैं अन्न-जल स्पर्श न करूँगी। दूसरी रातको उन्हें एक जोरका शब्द सुनायी दिया, जिससे उनके मनमें तीव्र वैराग्यका सञ्चार हो गया और वह सोचने लगीं कि यह सांसारिक सम्बन्ध स्वप्नवत् भ्रममात्र ही है। इस अनुभवके बाद वह वहाँसे लौटकर काशीपुर आ गयीं। ठाकुरने पूछा कि

क्या हुआ । माताजीने सब हाल सुनाया; ठाकुर मुस्कुराकर चुप हो गये ।

एक दिन नरेन्द्र ध्यानमें बैठे थे कि अचानक निर्विकल्प समाधिमें मग्न हो गये । थोड़े समय बाद जब उन्हें जगत्का भान हुआ तो वह पागल-से हो गये, मानो किसी अपरिचित स्थानमें आ गये हों । उन्हें अपने शरीरकी भी सुधि न थी। ठाकुरको जब यह बात सुनायी गयी तो वह कहने लगे कि वह बारंबार इसके लिये कहता रहता था, उसे अभी कुछ देर इस अवस्थामें रहने दो । नरेन्द्रके चेहरेपर अपूर्व आनन्दकी छटा थी । वह जब ठाकुरके पास आये तो उन्होंने कहा—'माँने अब तुझे सब कुछ दिखा दिया है परन्तु यह अद्वितीय अनुभव (निर्विकल्प समाधि) अभी संदूकमें बंद रहेगा, ताली उसकी मेरे पास रहेगी । जब तू 'माँ' का कार्य पूरा कर लेगा, तब वह वस्तु तुझे फिर मिलेगी ।' एक दूसरे दिन ठाकुरने नरेन्द्रको राम-नामकी दीक्षा दी, जिससे उनके हृदयमें अद्भुत आनन्दका सञ्चार हुआ और उसीमें आनन्दमग्न होकर वह राम-नामका उच्चारण करते हुए इधर-उधर घूमने लगे । कई घंटे उनकी यह दशा रही; तत्पश्चात् वह अपनी साधारण अवस्थाको प्राप्त हो गये ।

ठाकुर जबसे काशीपुरके बगीचेमें पधारे थे तबसे नाग महाशय उनसे मिलने बहुत कम आते थे, क्योंकि उनकी तीव्र वेदनाको देखना उनके लिये असह्य था । एक दिन जब वह मिलने गये तो ठाकुरने उन्हें छातीसे लगाकर कहा—'दुर्गाचरण ! डाक्टरोंसे तो कुछ न हो सका, क्या तू रोग-निवृत्तिका कुछ उपाय

कर सकता है ?' नाग महाशय कुछ देर सोचते रहे और यह निश्चय करके कि इनका रोग मैं अपने शरीरमें ले लूँगा, कहने लगे—'हाँ महाशय ! मैं आपके रोगका इलाज कर सकता हूँ ।' यह कहकर वह ठाकुरकी तरफ बढ़े । परन्तु ठाकुर उनके मनकी शक्तिका प्रभाव जानते थे कि यह मेरा रोग अपने शरीरमें ले लेगा, इसलिये उन्हें हटा दिया और कहा कि 'मैं जानता हूँ, तू कर सकता है ।'

अपनी महासमाधिसे आठ-नौ दिन पहले श्रीरामकृष्णने योगेन्द्रसे कहा कि श्रावणकी २५ तारीखसे आगेके दिनोंका हाल पत्रेमेंसे मुझे सुना । यह ९ अगस्तकी बात है । योगेन्द्र सुनाने लगा । श्रावणके अन्तिम दिनका वृत्तान्त सुनकर ठाकुरने कहा, 'बस और सुनानेकी जरूरत नहीं ।' पाँच-छः दिन बाद उन्होंने नरेन्द्रको बुलाया । उस समय कमरेमें दूसरा कोई आदमी नहीं था । उन्हें अपने सामने बिठाकर वह उनकी तरफ देखने लगे और समाधिस्थ हो गये । इसपर नरेन्द्रके शरीरमें बिजली-सी दौड़ने लगी और वह भी बाह्य-ज्ञान-शून्य हो गये । नरेन्द्रको कुछ न जान पड़ा कि वह उस दशामें कितनी देर रहे । जब होश आया तो उन्होंने ठाकुरको रोते देखा । कारण पूछनेपर उन्होंने कहा, 'आज मैंने अपनी सारी पूँजी तुझे दे दी है और मैं फकीर हो गया । इस शक्तिसे तू जगत्का बड़ा उपकार करके फिर निज धामको जायगा ।'

रविवार १५ अगस्तको ठाकुरके शरीरमें बहुत पीड़ा होने लगी । नाड़ी भी रुक-रुककर चलने लगी और श्वास-प्रश्वासमें भी

कठिनाई प्रतीत होने लगी। शिष्य लोग रोने लगे और सब उनके बिछौनेके पास खड़े हो गये। ठाकुरको भूख मालूम हुई तो उन्हें कुछ पतली-सी चीज़ पीनेको दी गयी। तदुपरान्त वह समाधिमग्न हो गये और फिर शरीर भी अचेतन-सा हो गया। आधी रातको उन्हें फिर होश आया; उन्हें बड़ी भूख मालूम होने लगी। कुछ आहार देनेके बाद उन्हें फिर लिटा दिया गया। उस समय उन्होंने 'माँ काली'का नाम तीन बार उच्चारण किया और धीरेसे लेट गये। एक घंटे बाद शरीरमें कुछ कम्प हुआ और रोमाञ्च हो गया। आँखोंकी दृष्टि नासिकाके अग्र-भागमें जम गयी, चेहरा प्रदीप्त और प्रसन्न दीखने लगा और फिर महासमाधिमें प्रवेश कर गये। शिष्यगण अत्यन्त शोकग्रस्त हुए। वे अनाथोंकी भाँति अपने आपको असहाय समझने लगे। यह सूचना पाकर बहुत लोग ठाकुरके अन्तिम दर्शन करनेके निमित्त आये। उनके शरीरकी अन्तिम क्रिया करके जयध्वनि करते हुए सब बगीचेमें लौट आये।

ठाकुरके शरीरकी अन्तिम क्रिया करनेके बाद उनकी अस्थियों और राखका बहुत-सा भाग तो बलराम बोसके घर पहुँचाया गया और बाकीको काँकड़गाछीमें ले जाकर जन्माष्टमीके दिन पृथ्वीमें गाड़ दिया। रामने वहाँ नित्य पूजा करना आरम्भ कर दिया। बगीचेके मकानमें ही कुछ शिष्य तो रात-दिन रहने लगे और कुछ रोज वहाँ आते और सन्ध्याको वापस अपने-अपने घर चले जाते। जो वहाँ रहने लगे थे उन्होंने तो गृहस्थाश्रमको त्याग ही दिया था; दूसरे भी त्यागनेका विचार करने लगे। सुरेन्द्रनाथ मित्रने बारानगरमें एक मकान किरायेपर ले लिया और वह त्यागी युवक वहीं रहने लगे। यह श्रीरामकृष्ण-संघका पहला मठ था।

युवकोंके हृदयमें वैराग्यकी अग्नि धधक रही थी। उन्होंने अपने माता-पिता तथा सम्बन्धियोंके समझाने-बुझानेपर भी गृहस्थाश्रममें रहना स्वीकार नहीं किया और वे ब्रह्मसाक्षात्कार करनेकी तीव्र इच्छासे साधनामें तत्पर हो गये। उसी बारानगर मठमें उन्होंने बलराम बोसके घरसे अस्थियाँ लाकर स्थापित कीं और उसकी नित्य पूजा करने लगे। माताजी भी वृन्दावन, कलकत्ते और कभी अपने जन्मस्थानमें रहकर साधना करने लगीं। गृहस्थ शिष्य भी ब्रह्मदर्शनके लिये लालायित हुए। नाग महाशय तो मानो आत्मानुभवके लिये पागल ही हो उठे। उन्होंने इस लगनमें खाना-पीना और सोना भी भुला दिया। जब कोई उनसे खानेके लिये आग्रह करता तो कहते कि 'क्या इस शरीरको मैं भोजन दूँ जिसने अभीतक ईश्वर-दर्शन नहीं किया ?' महेन्द्र, बलराम, गिरीश, देवेन्द्र आदि भी ठाकुरके अन्तर्धान होनेसे बड़े दुखी हुए, परन्तु इन युवकोंके उत्कट वैराग्यको देखकर वे लोग सन्तुष्ट रहते थे। नरेन्द्रनाथ, जो अब स्वामी सच्चिदानन्द हो गये थे (पीछे अमेरिका जाते समय उन्होंने फिर अपना नाम बदलकर स्वामी विवेकानन्द रखा था), उन सब संन्यासियोंके नेता थे। सभी युवक अब संन्यासी बन गये थे। नरेन्द्र सबको इकट्ठा करके अपनी अद्भुत बुद्धि और आत्मबलके प्रभावसे अपने गुरुभाइयोंके जीवनको उन्नत बनानेमें लग गये। वह उनके साथ विविध विषयोंपर गम्भीरतासे वार्तालाप करते या शास्त्रचर्चा किया करते, जिससे उनका वैराग्य अधिकाधिक बढ़ने लगा। उनकी रहन-सहन बड़ी ही सादी थी। भिक्षासे जो कुछ अन्न मिल जाता था, उसीको खाकर जीवन-निर्वाह करते थे। अब सबकी इच्छा देशाटन करनेकी हुई। एक-एक करके सब बाहर निकल गये। एक शशि (स्वामी राम-

कृष्णानन्द) कहीं नहीं गये। वह मठमें ही रहकर ठाकुरकी अस्थियोंकी पूजा करनेमें लगे रहे। वे परम त्यागकी मूर्तियाँ सारे भारतमें भ्रमण करने लगीं। यह सारा चमत्कार और उन युवकोंको परम धर्म तथा आत्मबलके साँचेमें ढालना श्रीरामकृष्ण परमहंसका ही काम था। उनके अपूर्व जीवन, अनुपम शक्ति तथा उपदेशोंके प्रभावके कारण उन युवकोंमें अध्यात्मविद्याकी परमज्योति जगमगाने लगी, जिससे जगत्‌का बड़ा भारी कल्याण हुआ। सच तो यह है कि भारतमें उन दिनों जो पाश्चात्य शिक्षाके कारण नास्तिकता, धर्मग्लानि और अपनी प्राचीन सभ्यताके प्रति घृणाकी बाढ़ बढ़ती जा रही थी, वह श्रीरामकृष्णके भारतमें अवतीर्ण होनेसे रुकने लगी। स्वामी विवेकानन्दके अमेरिकासे लौटनेपर उनके प्रभावशाली व्याख्यानोंने तो मानो सारे देशको सोतेसे जगा दिया। आज जो देशमें जागृति देखनेमें आ रही है, इसका प्रधान कारण स्वामीजी महाराजकी वक्तृताएँ हैं। अमेरिकामें व्याख्यान देते हुए स्वामी विवेकानन्दने एक बार कहा था कि 'यदि मैंने मन, वचन, कर्मसे कुछ प्राप्त किया है या मेरे मुखसे कुछ ऐसे शब्द निकले हैं जिनसे संसारका कुछ कल्याण हुआ है, तो इसका समस्त श्रेय उन महापुरुषको है, मुझे कुछ नहीं। परन्तु यदि मेरे किसी शब्दने किसीके चित्तको दुखाया हो या मेरी वाणीसे घृणाके शब्द निकले हों तो वे मेरे हैं, उनके नहीं। जितनी भी मुझमें कमजोरियाँ हैं, सब मेरी हैं और मुझमें जो पवित्रता, पुरुषार्थ है, वह उन्हीं महात्माका दान है। मेरे मित्रो! जगत् किसी समय उनके गुणोंको भलीभाँति समझकर कल्याण-पथका अनुगामी होगा?'

परिशिष्ट

परमहंसदेवके उपदेश

संग्रहकर्त्ता

श्रीबनवारीलाल मुख्तार

परमहंसदेवके उपदेश

१—दो मनुष्योंमें एक विवाद उठ खड़ा हुआ। एकने कहा—'उस खजूरपर जो गिरगिट रहता है वह सुन्दर लाल रंगका है।' दूसरेने कहा—'तुम भूल करते हो, उस गिरगिटका रंग लाल नहीं है, नीला है।' विवादमें कुछ निश्चय न हो सकनेके कारण वे दोनों मनुष्य उस खजूर-वृक्षके नीचे पहुँचे और वहाँ रहनेवाले आदमीसे उनमेंसे एकने पूछा—'भाई, तुम्हारे इस खजूरपर लाल रंगका गिरगिट रहता है न?' उसने उत्तर दिया—'हाँ।' फिर दूसरा बोला—'अजी, क्या कहते हो, वह तो नीले रंगका है।' उस आदमीने उसे भी उत्तर दिया, 'हाँ, वह नीले रंगका है।' वह जानता था कि गिरगिट बहुत रूप बदलता है, इसलिये दोनोंके उत्तरमें 'हाँ' कर दिया था। सच्चिदानन्द प्रभुके भी अनेक

रूप हैं, जिस साधकने हरिके जिस रूपको देखा है वह उनके उसी रूपको जानता है। परन्तु जिसने उनके अनेक रूप देखे हैं, वही कह सकता है कि ये सारे रूप उस एक ही बहुरूपिया हरिके हैं।

२—गैसकी रोशनी विभिन्न स्थानमें विभिन्न प्रकारसे जलती है, परन्तु आती है एक ही आधारसे; उसी प्रकार विभिन्न देशके विभिन्न महापुरुष उसी एक परमेश्वरसे आते हैं।

३—आँख-मिचौनीके खेलमें गोल छू देनेपर फिर चोर नहीं होना पड़ता; उसी प्रकार ईश्वरको छूनेपर फिर सांसारिक बन्धन नहीं बाँधते। जिस प्रकार गोल छू देनेपर खेलाड़ी लड़का जहाँ चाहे वहाँ घूमता है, फिर उसे चोर बननेका डर नहीं लगता, उसी प्रकार ईश्वरको छू देनेपर संसारमें कोई भय नहीं रह जाता। जो ईश्वरको छू चुका है (प्राप्त कर चुका है) वह संसारकी सब अवस्थाओंमें निर्भय रहता है, उसे फिर किसी प्रकार माया बद्ध नहीं कर सकती।

४—लोहा जब एक बार पारसको छूकर सोना हो जाता है तब उसे चाहे मिट्टीके भीतर रक्खो या कूड़ेमें फेंक दो, वह जहाँ रहेगा, सोना ही रहेगा, लोहा नहीं होगा। इसी प्रकार जो ईश्वरको पा चुका है उसकी भी यही दशा है। वह बस्तीमें रहे या जंगलमें, उसको फिर दाग नहीं लग सकता।

५—लोहेकी तलवार पारसके स्पर्शसे सोनेकी बन जाती है, किन्तु आकार वही रहता है, पर उससे फिर हिंसाका काम नहीं

होता। इसी प्रकार ईश्वरको छूनेपर (प्राप्त कर लेनेपर) मनुष्य-का आकार वही रहता है, पर उससे अशुभ कर्म नहीं होते।

६—समुद्रके भीतर छिपा हुआ चुम्बकका पहाड़ जैसे अचानक जहाजकी लोहेकी कांटियोंको खोलकर उसे खण्ड-खण्ड कर डुबा देता है, उसी प्रकार ज्ञान-चैतन्य उदय होकर अहङ्कार और स्वार्थपूर्ण जीवनको क्षणभरमें छिन्न-भिन्न कर उसे ईश्वरके प्रेम-समुद्रमें डुबा देता है।

७—दूध और पानी एक साथ रहनेसे मिल जाते हैं, परन्तु दूधका मक्खन निकाल लेनेपर वह मक्खन पानीमें नहीं मिलता। इसी प्रकार ईश्वरको प्राप्त कर लेनेपर मनुष्य हजारों सांसारिक बद्ध जीवोंके साथ रहनेपर भी बद्ध नहीं होता।

८—गृहस्थाश्रममें स्त्री सर्वदा नाना प्रकारके सांसारिक कार्यों-में लगी रहती है, पर पुत्र-प्रसवके समय सब काम छोड़ देती है। प्रसवके उपरान्त उसे अन्य कार्य नहीं भाते; उस समय वह सारे दिन अपने बालकका लालन-पालन करने तथा उसके मुख-चुम्बनमें ही आनन्द पाती है। मनुष्य भी अज्ञानावस्थामें अनेकों कार्य करता है, पर ईश्वर-दर्शन पाते ही उसे वे काम फिर अच्छे नहीं लगते। उस समय वह ईश्वरके कार्यके सिवा अन्य कार्योंमें सुख नहीं पाता तथा एक क्षण भी ईश्वरको छोड़ना नहीं चाहता।

९—हाटसे दूर रहनेपर केवल हाटका हो-हल्ला सुन पड़ता है, किन्तु उसके भीतर जानेपर वैसा शब्द नहीं सुन पड़ता। उस समय स्पष्ट सुनायी देता है कि कोई आलूका मोल कर रहा है तो कोई परवलका। इसी प्रकार ईश्वरसे दूर रहनेपर मनुष्यको

केवल तर्क-मीमांसा-युक्तिके गोलमालमें पड़े रहना पड़ता है, परन्तु उसके निकट पहुँचनेपर फिर तर्क-मीमांसा नहीं ठहरते। उस समय सब कुछ समझमें आ जाता है।

१०—जैसे बाँस, रस्सी, सीढ़ी आदि नाना साधनोंसे घरके कोठेपर चढ़ा जाता है, वैसे ही ईश्वरके पास जानेके अनेकों उपाय हैं, प्रत्येक धर्म एक-एक उपाय दिखला रहा है।

११—एक माताके पाँच पुत्र हैं; वह किसीको चटनी, किसीको खिलौना, किसीको कुछ, किसीको कुछ देकर भुलाये रखती है तथा निश्चिन्त हो अपना काम करती जाती है। उनमें जो लड़का अपना खिलौना छोड़कर 'माँ माँ' पुकारते हुए रोने लगता है, माँ तुरन्त काम छोड़कर आती है और उसको गोदमें लेकर चुप कराती है। इसी प्रकार हे मनुष्यो! तुम भी संसारकी वस्तुओंमें भूले हुए हो। यह छोड़कर जब तुम भी ईश्वरके लिये रोओगे, तब वह प्रभु तुरत आकर तुम्हें गोदमें ले लेंगे।

१२—*प्रश्न*—'यदि ईश्वर सर्वत्र विराजमान हैं तो हमलोग उन्हें देखते क्यों नहीं?'

उत्तर—तुमलोग पत्तोंसे ढके हुए तालाबके किनारे खड़े होकर कहते हो कि तालाबमें जल नहीं है! यदि जल देखनेकी इच्छा हो तो पत्ते हटाओ। मायासे ढकी हुई आँखोंसे देखते हुए कहते हो, 'ईश्वरको हम क्यों नहीं देखते?' ईश्वरको देखना चाहते हो तो मायाको हटा दो।

१३—*प्रश्न*—आनन्दमयी माँको हमलोग क्यों नहीं देख पाते?

उत्तर—वह बड़े आदमीकी लड़की चिकके आड़में रहती है। भक्तरूपी सन्तानगण ही चिकके भीतर जाकर उसे देख सकते हैं।

१४—जिस प्रकार हजारों वर्षके अँधेरे घरमें दीप जलानेसे तुरन्त प्रकाश होता है, उसी प्रकार हजारों जन्मके पाप ईश्वरकी एक बारकी कृपादृष्टिसे दूर हो जाते हैं।

१५—चन्दनके वृक्षको स्पर्श करती हुई जो हवा बहती है उसके स्पर्शसे सारयुक्त वृक्ष चन्दन हो जाते हैं; परन्तु सारहीन वृक्ष जैसे पपीता, केला या बाँसमें उसका कुछ भी असर नहीं पड़ता। इसी प्रकार भगवत्-कृपा होनेसे जिनमें सार है, वे लोग क्षणभरमें बदलकर पवित्र और ईश्वरीय भावसे पूर्ण हो जाते हैं; किन्तु सारहीन विषयासक्त पुरुषोंको उससे कुछ लाभ नहीं होता।

१६—*प्रश्न*—अन्नके लिये चिन्ता लगी रहती है, फिर साधना कैसे की जाय?

उत्तर—जिसका काम करोगे, वही भोजन देगा; इसकी क्या चिन्ता? जिसने तुम्हें भेजा है उसने तुम्हारे भोजनका प्रबन्ध पहलेसे कर रक्खा है।

१७—जिसकी साधना करनेकी तीव्र उत्कण्ठा होती है, भगवान् उसके पास सद्गुरु भेज देते हैं। गुरुके लिये साधकको चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती।

१८—एक समय कहीं जाते समय एक साधुका पैर किसी दुष्ट मनुष्यके शरीरमें लग गया। उसने क्रोधान्ध हो साधुको बहुत मारा। साधु अचेत हो गये। उनके शिष्योंने सेवा-शुश्रूषा

कर उन्हें चङ्गा किया और पूछा—'कहिये तो आपकी सेवा कौन कर रहा है ?' साधु बोले—'वह, जिसने हमें मारा था ।'

१९—मनुष्य तकियेकी खोलके समान हैं । जिस प्रकार खोल ऊपरसे देखनेमें कोई लाल, कोई काली, कोई पीली देख पड़ती है, परन्तु सबके भीतर रूई भरी हुई होती है, उसी प्रकार मनुष्य भी देखनेमें कोई रूपवान्, कोई कुरूप, कोई साधु, कोई असाधु देख पड़ते हैं, परन्तु उन सबके भीतर एक ही ईश्वर विराजते हैं ।

२०—बाघमें भी ईश्वर हैं, यह सत्य है, परन्तु बाघके सम्मुख जाना उचित नहीं । उसी प्रकार दुष्ट मनुष्यमें भी ईश्वर हैं, परन्तु उनका सङ्ग करना उचित नहीं ।

२१—गुरुने शिष्यसे कहा, 'सब कुछ नारायण हैं ।' शिष्य समझ गया । रास्तेमें एक हाथी आता था । उसके पीठपर बैठा हुआ महावत कहता जाता था—'हट जाओ,' 'हट जाओ ।' शिष्यने सोचा—'मैं क्यों हटूँ ? मैं भी नारायण हूँ, हाथी भी नारायण है; नारायणको नारायणसे भय क्या ?' शिष्य नहीं हटा । हाथीने सूँड़से शिष्यको उठाकर दूर फेंक दिया । उसको बहुत चोट आयी । वह गुरुके निकट गया और उनसे सब समाचार कहे । गुरु बोले—'ठीक कहते हो, तुम भी नारायण, हाथी भी नारायण; परन्तु ऊपरसे एक महावतरूप नारायण तुमको हटनेके लिये कहता था, तुमने उसकी बात क्यों नहीं सुनी ?'

२२—एक किसानने दिनभर अपने खेतमें पानी चलाया; परन्तु शामको देखता क्या है कि एक बूँद भी पानी उसके

खेतमें नहीं गया है, बल्कि सब समीपके एक बिलमें वह गया है। उसे इससे बड़ा अफसोस हुआ। ठीक इसी प्रकार जो मनुष्य विषय-वासना, सांसारिक मान-प्रतिष्ठा तथा सुख-स्वच्छन्दता-की कामना रखकर उपासना करते हैं, वे जीवनभर उपासना करके अन्तमें देखेंगे कि विषय-वासनारूप छेदसे उनकी सब उपासना नष्ट हो गयी है और वे जैसे-के-तैसे ही बने हुए हैं, कुछ भी उन्नति नहीं कर सके हैं।

२३—जो लोग उपासनासे ठट्ठा करते हैं, धर्म तथा धार्मिकों-की निन्दा करते हैं, साधन-अवस्थामें ऐसे मनुष्योंसे एकदम दूर रहना चाहिये।

२४—जिस प्रकार दूध जलके साथ रहनेसे उसमें मिल जाता है, अलग नहीं रह सकता, उसी प्रकार धर्म-पिपासु नये साधक संसारके सब प्रकारके मनुष्योंके संग रहनेसे अपना धर्म खो बैठते हैं। उनका विश्वास, भक्ति, उत्साह कहाँ चला जाता है, इसका उन्हें पता भी नहीं रहता।

२५—बदली जैसे सूर्यको छिपा देती है, वैसे ही मायाने ईश्वरको छिपा रक्खा है। बदली हट जानेसे जिस प्रकार सूर्य दीख पड़ता है, मायाके दूर होनेसे उसी प्रकार ईश्वर दीख पड़ते हैं।

२६—मायाको पहचान लेनेपर वह तुरन्त भाग जाती है। इसपर एक दृष्टान्त है—एक गुरु अपने एक शिष्यके घर जा रहे थे। उनके साथ कोई नौकर नहीं था। रास्तेमें एक मोची मिला, उससे उन्होंने कहा—'अरे, क्या तू मेरे साथ चलेगा? अच्छा खाना मिलेगा, आदरसे रहेगा, चल न।' मोची बोला—

'ठाकुर! मैं अति नीच-जातिका आदमी हूँ, कैसे आपका नौकर बन सकता हूँ?' गुरु बोले—'इस बातकी चिन्ता तू मत कर, तू किसीको अपना परिचय मत देना और किसीसे मित्रता न करना।' मोची राजी हो गया। दोनों उस शिष्यके घर पहुँचे। सन्ध्या-समय गुरुदेव वहाँ सन्ध्या करने लगे। उसी समय एक ब्राह्मण वहाँ आया और नौकरसे बोला—'अरे, मेरा जूता वहाँसे ला।' नौकरने कुछ उत्तर नहीं दिया। ब्राह्मणने फिर कहा, परन्तु तब भी नौकर न उठा। अन्तमें ब्राह्मण विरक्त होकर बोले—'अरे, तू ब्राह्मणकी बात नहीं सुनता, क्या तू चमार है?' मोची यह सुनकर मारे डरके काँपने लगा और गुरुकी ओर देखकर बोला—'गुरुदेव, गुरुदेव! मुझे इन्होंने पहचान लिया, अब मैं भागता हूँ।'

२७—हरिदास बाघके मुँहकी शक्ल कागजपर बनाकर और उससे अपना मुख ढककर एक लड़केको डराता था। उस लड़केकी माँ उसका डर दूर करनेके लिये बोली—'उससे क्या डर? वह तो हमलोगोंका हरि है, कागजके चित्रसे अपना मुँह ढक लिया है।' लड़का इसपर भी नहीं माना। परन्तु जब हरिदास मुँहपरसे कागज हटाकर लड़केके सामने खड़ा हुआ और उसने कागज उसके हाथमें देकर उसे शान्त किया, तब वह लड़का समझ गया और तबसे मुखपर कागज लगानेसे वह नहीं डरता था। इसी प्रकार जो मायासे छिपे हुए हैं, उनको पहचान लेनेपर फिर मायासे डर नहीं होता।

२८—*प्रश्न*—जीवात्मा और परमात्मा क्या हैं?

उत्तर—जिस प्रकार स्रोतके जलमें एक लाठी या पटरा खड़ा कर देनेसे दो भागमें (जलमें और जलके ऊपर) वह दो दीख पड़ता है, उसी प्रकार अखण्ड परमात्मा मायारूपी उपाधिद्वारा दो दीख पड़ता है ।

२९—पानीका बुलबुला जैसे जलहीसे उठता है, जलहीपर ठहरता है और जलहीमें लोप हो जाता है, वैसे ही जीवात्मा और परमात्मा एक ही हैं । भिन्नता केवल बड़े और छोटेकी, आश्रय और आश्रितकी है ।

३०—समुद्रका पानी दूरसे काला दीख पड़ता है, परन्तु समीप जानेसे स्वच्छ और निर्मल दिखायी देने लगता है। इसी प्रकार श्रीकृष्णका रूप दूरसे काला दीख पड़ता है; निकट जानेपर वह स्वच्छ और निर्मल दिखलायी देने लगता है ।

३१—ईश्वरकी इच्छासे यह सृष्टि हुई है । वह अपनी ही मायाका आश्रय कर इस सम्पूर्ण जीव-जगत्‌की रचना करके प्रकाशमान है ।

३२—ईश्वरको तुमलोग देख नहीं सकते; क्या इसीसे तुम कहोगे कि वह है ही नहीं ? दिनको तारे नहीं दीख पड़ते, तो क्या तुम कहोगे कि आकाशमें तारे हैं ही नहीं ? सूरजके तीखे तेजमें दिनको तारे नहीं दीख-पड़ते। वैसे ही माया और अहंकारके कारण मनुष्य ईश्वरको नहीं देख सकता ।

३३—दूधमें मक्खन रहता है, पर मथनेसे ही निकलता है ।

३४—भगवान् सगुण भी है, निर्गुण भी है और गुणातीत अर्थात् गुणोंसे परे भी है।

३५—जब वह सगुण रहता है तब उसे ईश्वर कहते हैं; जब निर्गुण रहता है तब उसे ब्रह्म कहते हैं और उसकी गुणातीत अवस्थाको हम मुँहसे कहकर समझा नहीं सकते।

३६—ईश्वर सर्वशक्तिमान् है, इच्छा होनेपर वह सब कुछ कर सकता है।

३७—एक ज्ञान ज्ञान है; बहुत ज्ञान अज्ञान है।

३८—ब्रह्म और उसकी शक्तिमें भेद नहीं है। एकके विना दूसरेका चिन्तन नहीं किया जा सकता। जैसे आग और उसकी जलानेवाली शक्ति तथा दूध और उसके उजलेपनमें एकके विना दूसरेका चिन्तन नहीं किया जा सकता।

३९—शक्तिके विना केवल ब्रह्मसे कोई काम नहीं होता। जैसे, केवल मिट्टीसे कोई वस्तु नहीं बन सकती, मिट्टीमें पानी मिलानेपर ही उससे कोई वस्तु बनेगी।

४०—ईश्वर साकार, निराकार और क्या-क्या है, यह हम-लोग नहीं जानते।

४१—उसका साकार रूप भी सत्य है और निराकार रूप भी सत्य है। तुम्हें जो अच्छा लगे, उसीमें विश्वास कर तुम उसे पुकारो; तुम उसीके द्वारा उसे पाओगे। मिसरीकी डलीको चाहे जिस ओरसे, चाहे जिस ढंगसे तोड़कर खाओ, मीठी लगेगी ही।

४२—मन सफेद कपड़ा है, इसे जिस रंगमें डुबाओगे वही चढ़ जायगा।

४३—जहाज खुद अनायास जाता ही है, साथ-साथ बड़े-बड़े बोटोंको भी खींच ले जाता है। इसी प्रकार जब महापुरुष अवतार लेते हैं तब वे भी अनायास बद्ध जीवोंको साथ खींच ले जाते हैं।

४४—बड़े-बड़े शहतीर जब बहते हैं तब कितने ही मनुष्य उनपर चढ़कर चले जाते हैं, वे नहीं डूबते। पर एक छोटे तिनके-पर एक कौवा भी बैठे तो वह डूब जाता है। इसी प्रकार जब महापुरुष आते हैं तो उनका आश्रय लेकर कितने मनुष्य तर जाते हैं।

४५—*प्रश्न*—साधु-महात्माओंको उनके निकटके आत्मीय मनुष्य नहीं पहचानते, दूरके मनुष्योंमें उनका आदर होता है, इसका क्या कारण है ?

उत्तर—जादूगरका तमाशा उसके आत्मीय लोग देखते ही नहीं, दूरके लोग उसे देखकर अचरज मानते हैं।

४६—लालटेनके नीचे अन्धकार रहता है। दूरमें उसका प्रकाश होता है। इसी प्रकार महापुरुषके निकटके मनुष्य उन्हें नहीं जान सकते, दूरके मनुष्य उनके भावसे मुग्ध हो जाते हैं।

४७—*प्रश्न*—जिस मनुष्यसे कोई शिक्षा मिलती है उसे गुरु न मानकर एक निर्दिष्ट व्यक्तिको ही गुरु क्यों माना जाय ?

उत्तर—व्याकुल-प्राणसे जो ईश्वरको पुकारते हैं उनको गुरु करनेकी आवश्यकता नहीं है। परन्तु सबमें वैसी व्याकुलता नहीं देखी जाती। इसी कारण गुरुकी आवश्यकता होती है। गुरु एक,

वही उपगुरु है, अवधूतने इसी प्रकारके चौबीस उपगुरु किये थे। (भागवत एकादश स्कन्ध अ० ७ से ९ पर्यन्त)

४८—जैसे किसी अनजान स्थानपर जाना होता है तो जो आदमी वहाँका रास्ता जानता है उसीसे पूछकर उसके अनुसार चलना होता है, अनेकोंसे पूछनेसे गड़बड़ होनेकी आशङ्का बनी रहती है, उसी प्रकार ईश्वरके निकट जानेवालोंको गुरुके आज्ञानुसार चलना होता है। इसीलिये एक गुरुकी आवश्यकता होती है।

४९—एक दिन अवधूतने रास्तेमें जाते-जाते देखा कि एक खूब सजी हुई बारात बाजे-गाजेके साथ चली आ रही है, निकट ही एक बाघ अपने आहारपर लक्ष्य किये हुए है और उसमें वह इतना दत्तचित्त है कि बारातकी उसे तनिक भी खबर नहीं। अवधूत उस बाघको नमस्कार करके बोले—'हे प्रभु! तुम्हीं हमारे गुरु हो। जिस समय मैं ध्यान करने बैठूँ, तब मेरा भी इसी प्रकारका लक्ष्य हो।'

५०—एक मछुआ बंसीसे मछली पकड़ रहा था। अवधूत उसके निकट पहुँचे और उससे पूछने लगे—'अमुक स्थानको कौन रास्ता जायगा?' उस समय बंसीको मछली पकड़ रही थी, अतएव वह आदमी कुछ उत्तर न दे सका। उसने अपना मन मछलीकी ओर लगा रक्खा। कार्य हो जानेपर उसने पीछे फिरकर पूछा—'क्या कहते हो?' अवधूतने उसे प्रणाम किया और कहा—'आप मेरे गुरु हैं। मैं जिस समय परमात्माका ध्यान करने बैठूँ, उस समय मैं भी अपना काम बिना समाप्त किये दूसरी ओर ध्यान न दूँ।'

५१—एक बगुला धीरे-धीरे मछली पकड़नेके लिये जा रहा था। पीछेसे व्याधा उस बगुलेको मारनेके लिये निशाना साध रहा था, परन्तु बगुलेने उस तरफ फिरकर देखा भी नहीं। अवधूत उस बगुलेको नमस्कार करके बोले—'हे प्रभु! तुम मेरे गुरु हो, जब ध्यान करने बैठूँ, तब मैं भी इसी प्रकार पीछे न देखूँ।'

५२—एक चील चोंचमें मछली लिये उड़ रही थी। उसके पीछे अनेक कौवे और चील मछली छीननेकी चेष्टामें उसे चोंच मार-मारकर तंग करते हुए उड़ रहे थे। वह जिधर भागती थी उधर ही सब उसके पीछे लगे जाते थे। अन्तमें वह निराश हो गयी और मुखसे मछली फेंककर निश्चिन्त एक वृक्षपर जा बैठी। कौवे और चील उसे छोड़कर और मछली उठाकर झगड़ने लगे। अवधूतने पहली चीलकी निरापद अवस्थाको देखकर प्रणाम कर कहा—'मैं समझ गया, संसारका भार उतार फेंकनेमें ही शान्ति है, नहीं तो महाविपत्ति है।'

५३—सच्चा शिष्य गुरुके किसी बाहरी कामपर लक्ष्य नहीं करता, वह तो केवल गुरुकी आज्ञाको ही सिर नवाकर पालन करता है।

५४—चार अन्धे हाथी देखने गये। एकने हाथीके पैरको हाथसे टटोला और आकर कहा—'हाथी खम्भेके समान होता है।' दूसरा दाँतपर हाथ रखकर बोला—'हाथी मोटी लाठीके समान होता है।' तीसरा पहुँचा; वह हाथीके पेटको छूकर आया और बोला—'हाथी सन्दूक-जैसा होता है।' चौथा उठा; वह हाथीका कान टटोलकर आया और बोला—'हाथी सूप-जैसा होता है।' इस प्रकार सब आपसमें 'हाथी कैसा होता है' इस विषयपर

झगड़ने लगे। एक मनुष्यने उन्हें झगड़ते देखकर कहा—'तुम लोग क्यों शोर कर रहे हो ? तुममेंसे किसीने हाथीको पूर्णरूपसे नहीं देखा है। हाथी खम्भेके समान नहीं होता, उसके पैर खम्भे-जैसे होते हैं; न हाथी लाठीके समान ही होता है, उसके दाँत लाठी-जैसे होते हैं। इसी प्रकार हाथीके कान सूप-जैसे होते हैं और उसका पेट सन्दूक-जैसा होता है। सबको इकट्ठा करनेसे जो होता है वह हाथी है।' इसी प्रकार जिन लोगोंने ईश्वरके एक-एक अंशको देखा है वे ही आपसमें लड़ते-झगड़ते हैं।

५५—मेंढकीकी पूँछ गिर जानेपर वह मेंढक हो जाता है, तब वह जलमें भी रह सकता है और स्थलमें भी रह सकता है। इसी प्रकार अविद्यारूप पूँछके गिर पड़नेपर मनुष्य मुक्त हो जाता है; फिर वह सच्चिदानन्दमें भी रह सकता है और संसारमें भी।

५६—*प्रश्न*—बाह्य चिह्न उपवीत (जनेऊ) आदि रखना ठीक है या नहीं ?

उत्तर—आत्मज्ञान प्राप्त हो जानेपर तो कोई बन्धन नहीं रहता। उस समय सब बन्धन अपने आप छूट जाते हैं, ब्राह्मण-शूद्रका ज्ञान नहीं रहता। उस अवस्थामें जनेऊ अपने आप गिर पड़ता है। परन्तु जबतक ब्राह्मण-शूद्रका ज्ञान है तबतक जनेऊ छोड़ना कभी उचित नहीं।

५७—हंसकी चोंचमें ऐसी शक्ति है कि वह मिले हुए दूध-पानीमेंसे दूध-दूध पी लेता है, पानी छोड़ देता है। दूसरा पक्षी ऐसा नहीं कर सकता। इसी प्रकार ईश्वर मायामें ओत-प्रोत (मिले हुए) हैं। जो परमहंस हैं, वे ही मायाको छोड़ ईश्वरको ग्रहण करते हैं।

५८-*प्रश्न*—यह शरीर जब असार और अनित्य है तो साधु-भक्तगण इसके लिये इतना जतन क्यों करते हैं ? खाली सन्दूकका तो कोई उतना जतन नहीं करता ।

उत्तर—जिस सन्दूकमें द्रव्य रहता है उसीका विशेष जतन किया जाता है । जिस शरीररूपी सन्दूकके गर्भ (हृदय) में ईश्वररूपी अमूल्य रत्न है, साधु-भक्तगण उस शरीरका जतन बिना किये कैसे रह सकते हैं ?

५९.—लड़कियाँ रातको अपने स्वामीसे जो बातें करती हैं उन्हें किसीसे नहीं कहतीं; कहनेकी इच्छा भी उनके मनमें नहीं होती । किसी तरह उन बातोंके खुल जानेपर वे लज्जित हो जाती हैं । परन्तु अपनी हमजोली एक उमरवाली सखियोंसे वे सब बातें कह देती हैं; बल्कि उनसे कहनेके लिये व्याकुल रहती हैं और कहकर आनन्द प्राप्त करती हैं । ईश्वरके भक्त भी जिस भावसे प्रभुसे प्रेम करते हैं, उसे जिस-तिससे नहीं कहते; कहनेमें सुख भी नहीं पाते, क्योंकि इससे हृदयसे वह भाव चला जाता है । परन्तु भक्तके निकट वे हृदय खोलकर सब बातें कह देते हैं । उसे कहनेमें सुख पाते हैं तथा कहनेके लिये व्याकुल रहते हैं ।

६०-*प्रश्न*—भक्त लोग भगवान्‌के लिये सर्वस्वका त्याग क्यों करते हैं ?

उत्तर—पतङ्ग एक बार रोशनी देखनेपर फिर अन्धकारमें नहीं जाता, चींटियाँ गुड़में प्राण दे देती हैं पर वहाँसे लौटती नहीं । इसी प्रकार भक्त जब एक बार प्रभु-दर्शनका रसास्वाद कर लेते हैं तो उसके लिये [illegible] दे देते हैं [illegible] लौटते [illegible]

६१–*प्रश्न*—माँ कहनेसे भक्त लोग इतना आनन्दित क्यों होते हैं?

उत्तर–क्योंकि माँके समीप उनका आदर अधिक होता है।

६२–गायोंके झुण्डमें यदि कोई दूसरा पशु आवे तो वे उसे सींग मारकर भगा देती हैं; किन्तु गायके आनेपर सब उसे चाटने लगती हैं। इसी प्रकार जब भक्तकी भक्तसे भेंट होती है तब वे दोनों आनन्दित हो उठते हैं और अलग होना नहीं चाहते, परन्तु अभक्तके आनेपर भक्त उससे वैसे नहीं मिलते।

६३–संसारमें रहकर जो साधन कर सकते हैं, यथार्थमें वे ही वीर पुरुष हैं।

६४–*प्रश्न*—सांसारिक सुख-प्राप्ति और ईश्वर-प्राप्ति दोनों कार्य क्या एक साथ हो सकते हैं?

उत्तर—एक स्त्री एक हाथसे ढेंकीमें चिउड़ा चला रही है और दूसरे हाथसे बालकको दूध पिला रही है, और मुँहसे चिउड़े-का दर-दाम कर रही है। इस प्रकार वह अनेक काम करती है; पर उसका ध्यान सदा इस बातपर रहता है कि कहीं ढेंकीका मूसल हाथपर न गिर जाय। इसी प्रकार संसारमें रहकर सब काम करो, पर खयाल रक्खो कि कहीं ईश्वरके लक्ष्यसे मन हट न जाय।

६५–मगरको जलके ऊपर तैरना बहुत पसंद है, पर क्या करे? मनुष्यके अत्याचार तथा प्राणभयसे उसे जलके भीतर ही रहना पड़ता है, वह ऊपर नहीं तैर सकता। तो भी अवसर पाकर वह जल्दीसे जलके ऊपर आकर कभी-कभी तैरने लगता है। हे सांसारिक जीव! मैं जानता हूँ, सच्चिदानन्दसागरमें तैरनेकी तुम्हारी

भी इच्छा होती है; पर क्या हो ! यदि स्त्री-पुत्र-परिजन तुझे अपने कामोंमें डुबाये रक्खें तो भी बीच-बीचमें एक-आध बार हरिको स्मरण करो. उससे व्याकुल प्राणोंसे प्रार्थना करो, अपना दुःख सुनाओ. वह ठीक समयपर अवश्य ही तुमको मुक्त कर देगा ।

६६—कुलटा स्त्रियां माता-पिता तथा परिवारवालोंके साथ रहकर संसारके सभी कार्य करती हैं; परन्तु उनका मन सदा अपने यार (उपपति) में लगा रहता है । हे संसारी जीव ! तुम भी मनको ईश्वरमें लगाकर माता-पिता तथा परिवारका काम करते रहो ।

६७—ईश्वरके दर्शनकी इच्छा रखनेवालोंको नाममें विश्वास रखना तथा सत्यासत्यका विचार करते रहना चाहिये ।

६८—हाथी स्वतन्त्र होनेपर चारों ओरके वृक्षोंको तोड़ता फिरता है, किन्तु उसके सिरमें अंकुश मारनेसे वह स्थिर हो जाता है । इसी प्रकार मनको भी खुला छोड़ देनेसे वह नाना प्रकारके सङ्कल्प-विकल्प करने लगता है, विचाररूपी अंकुशके मारनेसे वह स्थिर हो जाता है ।

६९—उपासना तभीतक आवश्यक होती है जबतक नाम लेते ही प्रेमाश्रु न बहें । हरिनाम सुनते ही जिसकी आँखोंसे प्रेमाश्रु बह निकलते हैं उसे उपासनाकी आवश्यकता नहीं रह जाती ।

७०—एक डुबकीमें रत्न नहीं मिला, इससे रत्नाकरको रत्नहीन मत समझो । डुबकी लगाते ही जाओ, रत्न अवश्य मिलेगा । अल्प साधना करनेपर ईश्वर-दर्शन न हो तो हताश नहीं होना चाहिये । धीरज रखकर साधना करते रहो, यथासमय अवश्य ही तुम्हारे

७१–एक लकड़हारा लकड़ी बेच-बेचकर बड़े दुःखसे दिन बिताता था। एक दिन एक ब्राह्मण उस रास्तेसे निकले और उसे दुःखित देखकर बोले, 'अरे भाई, कुछ और आगे बढ़ो।' ब्राह्मणकी बात सुनकर जब वह लकड़हारा कुछ आगे बढ़ा तब उसे एक चन्दनका वन मिला। वहाँसे वह यथाशक्ति चन्दनकी लकड़ी काट लाया और उसे बाजारमें बेचकर उसने पहलेसे बहुत अधिक पैसे पाये। दूसरे दिन वह मन-ही-मन सोचने लगा कि ब्राह्मण देवताने तो कल मुझे चन्दनकी बात कुछ भी नहीं कही थी, केवल इतना ही कहा था कि 'कुछ और आगे बढ़ो।' ऐसा विचारकर वह कुछ और आगे बढ़ा। आज उसे ताँबेकी खान मिली, उसने वहाँसे ताँबा लाकर बेचा तथा पहलेसे भी अधिक द्रव्य प्राप्त किया। इतनेपर ही वह सन्तुष्ट नहीं हुआ, वह प्रतिदिन आगे बढ़ता ही गया और क्रमशः चाँदी, सोने तथा हीरेकी खान पाकर वह मालामाल हो गया। धर्मकी भी यही दशा है। ज्ञानी होना चाहते हो तो आगे बढ़ते जाओ। साधनाकी विशेष अवस्था या आनन्दमें मत भूलो, बराबर आगे बढ़ते जाओ, तुम्हें अन्तमें अमृतत्वकी प्राप्ति होगी।

७२–साधु-सङ्गको धर्मका एक प्रधान अङ्ग समझना चाहिये।

७३–मरनेके समय मनमें जैसा भाव होता है दूसरे जन्ममें वैसा ही आकार, वैसा ही शरीर मिलता है; इसीलिये साधनाकी आवश्यकता होती है। क्रमशः अभ्याससे मनमें और कोई भाव नहीं उठता, केवल ईश्वर ही याद आते हैं।

७४–प्रश्न–क्या 'अहम्' सम्पूर्ण दूर हो सकता है?

उत्तर—कमलका पत्ता गिर जाता है, परन्तु उसका दाग नहीं मिटता; इसी प्रकार 'अहम्' चला जाता है, पर उसका कुछ दाग रह ही जाता है किन्तु उस दागसे कोई कार्य नहीं होता।

७५–प्रश्न—साधकका बल क्या है ?

उत्तर—बालकोंकी नाई रोना ही साधकका एकमात्र बल है।

७६–प्रश्न—मानवीय भाव कैसे दूर हो ?

उत्तर—फलके बड़े होनेपर फूल अपने-आप गिर जाता है; इसी प्रकार देवत्वके बढ़नेसे नरत्व नहीं रहता।

७७–मधुमक्खी तभीतक फूलके चारों ओर भनभनाती है जबतक उसे मधु नहीं मिलता। मधु प्राप्त हो जानेपर वह नहीं भनभनाती; चुपचाप मधुपान करने लगती है। इसी प्रकार मनुष्य तभीतक धर्मके विषयमें तर्क-वितर्क करता है जबतक उसे धर्मका स्वाद नहीं मिलता। स्वाद मिलनेपर वह चुपचाप साधन करने लगता है।

७८–तैरना सीखनेके लिये बहुत दिनोंतक जलमें हाथ-पैर पीटना तथा कभी-कभी गोता खाना पड़ता है; तैरना एक-ब-एक नहीं आता। इसी प्रकार ब्रह्म-सागरमें भी तैरना सीखनेके लिये पहले अनेकों बार उठना-गिरना पड़ता है, एक ही बारमें सिद्धि नहीं मिलती।

७९–'यात्रा-दल' (रामलीला करनेवालोंकी भाँति बंगालमें नाटक करनेवाली मण्डलियाँ होती हैं) में जबतक मृदङ्ग खूब जोरसे बजता रहता है और सब 'कृष्ण एसो हे !' (अर्थात्, 'हे कृष्ण आओ') कहते हुए चिल्लाकर गाते रहते हैं तबतक

कृष्णका पता नहीं लगता। परन्तु जैसे ही बाजा बंद हो जाता है और नारद मुनि मृदु स्वरसे प्रेमभरा हुआ गान प्रारम्भ करते हैं, फिर श्रीकृष्ण रुक नहीं सकते, तुरन्त ही तड़फड़ाते हुए पहुँचते हैं। साधक भी जबतक 'प्रभु एसो हे' (अर्थात्, 'हे प्रभु आओ') कहकर चिल्लाता है तबतक प्रभु वहाँ नहीं आते हैं। प्रभु तब आवेंगे जब साधक प्रेममें गद्गद हो जायगा, उसका चिल्लाना रुक जायगा। साधक जब गद्गद हो पुकारता है तब प्रभु विलम्ब नहीं कर सकते।

८०—ईश्वरके अनन्त नाम हैं, अनन्त रूप हैं, अनन्त भाव हैं, उसे किसी नामसे, किसी रूपसे और किसी भावसे कोई पुकारे, वह सबकी पुकार सुन सकता है, वह सबकी मनोकामना पूरी कर सकता है।

८१—घरका जो मुखिया है, उसके साथ अनेक लोगोंके अनेक प्रकारके सम्बन्ध हैं। वह किसीका बाप है, किसीका चचा, किसीका मामा, किसीका भाई, किसीका स्वामी आदि। वैसे ही परमात्मा एक है, उसकी अनेक लोग अनेक भावोंसे उपासना करते हैं।

८२—जल एक है—उसे कोई कहता है 'पानी', कोई कहता है 'वाटर', कोई कहता है 'एकोया', कोई कहता है 'अप्'। वैसे ही भगवान्‌को कोई कहता है 'गॉड', कोई कहता है 'हरि', कोई कहता है 'राम', कोई कहता है 'यीशु' और कोई कहता है 'अल्लाह'। वस्तु एक ही है, केवल नाममें भेद है।

८३—जिस वनमें बाघ चला जाता है, उस वनसे दूसरे जीव उसके डरके मारे भाग जाते हैं; वैसे ही जिस हृदयमें ईश्वरका प्रेम प्रवेश कर गया उस हृदयसे काम, क्रोध, अहङ्कार आदि सब भाग जाते हैं, वे फिर ठहर नहीं सकते।

८४—तलैयाके बँधे पानीमें काई जमती है, बहते पानीमें वह नहीं जमती। जहाँ धर्मके विषयमें संकीर्ण भाव है, वहीं गड़बड़ होती है। जहाँ विशुद्ध ईश्वरभाव रहता है, जहाँ हृदयकी उदारता रहती है, वहाँ कुछ गड़बड़ नहीं। कोई सम्प्रदाय-भेद नहीं।

८५—गृहस्थकी स्त्री घरके सब लोगोंकी सेवा-टहल करती है, किन्तु स्वामीको छोड़कर और किसीके साथ सोती नहीं। उसी तरह सब धर्मोंका आदर करो, पर अपने मनको अपनी ही धर्म-निष्ठासे तृप्त करो।

८६—ब्रह्मकी जिस शक्तिसे सृष्टि, स्थिति और प्रलय होता है, उसीका नाम माया है।

८७—माया दो प्रकारकी है—विद्या और अविद्या।

८८—जिसके अन्तर्गत किये हुए कर्मोंसे जीव ईश्वरकी ओर झुकता है, जिसके घेरेमें विवेक और वैराग्यकी क्रियाएँ पायी जाती हैं, उसे विद्या-माया कहते हैं।

८९—जहाँ काम, क्रोध आदि शत्रुओंके कार्य पाये जाते हैं, जिसके घेरेमें किये हुए कामोंसे जीव संसारमें दिन-दिन बँधता जाता है, उसे अविद्या-माया कहते हैं।

९०—अविद्या-मायाके हाथसे छुटकारा पानेके लिये विद्या-मायाका आश्रय लेना पड़ता है। पीछे जब ईश्वर मिल जाता है—ज्ञान होता है, तब दोनों ही माया चली जाती हैं। जैसे एक काँटा चुभ जानेपर उसके निकालनेके लिये एक दूसरे काँटेका सहारा लेना पड़ता है। अन्तमें जब पहला काँटा निकल जाता है, तब दोनोंको फेंक देते हैं।

९१—मनुष्य विदेश जाता है—काम-काज करनेके लिये, रोजगार-धन्धा करनेके लिये। उसी प्रकार यह जीव संसारमें आया है कर्म करनेके लिये, रोजगार करनेके लिये। साधन-भजनके द्वारा ईश्वरको पाकर वह फिर अपने धामको चला जायगा।

९२—अपनेको जाननेसे ही ईश्वर जाना जाता है।

९३—ईश्वर हमलोगोंके अपने हैं, वह हमलोगोंकी अपनी माता हैं। यह मानी हुई माता या धर्म-माता नहीं हैं। उनके पास हमलोगोंका जोर करना, मचलना चल सकता है।

९४—ईश्वर और जीवका सम्बन्ध वैसा ही है जैसा लोहे और चुम्बकका। लोहा अगर खूब साफ होगा, तो चुम्बक उसको झट खींच लेगा, किन्तु यदि लोहेमें मैल लगी रहेगी, तो चुम्बक नहीं खींचेगा। उसी प्रकार जीव मायासे घिरा रहनेके कारण ईश्वरके निकट नहीं जा सकता।

९५—यदि कहीं बुरी जगह जाना पड़े तो माँ आनन्दमयी-को साथ ले लो। अनेकों बुरे कामोंकी इच्छा होनेपर भी उनसे बच निकलोगे। माँके पास रहनेपर लज्जावश नीच काम तुमसे नहीं हो सकेंगे।

९६–*प्रश्न*–कभी-कभी मनमें बहुत ही अच्छे भाव आते हैं, पर वे ठहरते क्यों नहीं ?

उत्तर–बाँसकी आगको फूँकते रहना पड़ता है, नहीं तो वह बुझ जाती है। उसी प्रकार साधनामें लगे ही रहना चाहिये, नहीं तो सब किया-कराया नष्ट हो जायगा।

९७–जैसे राजा अपने किसी नौकरके घर जानेके पहले अपने भण्डारसे घरके सजानेकी वस्तुएँ, अपने बैठनेयोग्य आसन तथा भोजनकी सामग्री पहले भेज देता है, वैसे ही ईश्वर अपने आनेके पहले अपनी सब सामग्री पहले भक्तके घर भेज देते हैं। साधकके हृदयमें प्रेम, भक्ति, विश्वास तथा व्याकुलता पहले ही भर देते हैं।

९८–*प्रश्न*–हृदयकी किस अवस्थामें ईश्वरका दर्शन होता है।

उत्तर–हृदय स्थिर होनेसे ईश्वरका दर्शन होता है। हृदयरूपी सरोवरमें जबतक कामनारूपी हवा बहती हुई उसे चञ्चल करती रहती है, तबतक ईश्वरका दर्शन असम्भव है।

९९–गायका तुरन्तका जन्मा हुआ बच्चा जैसे बीसों बार गिरने-उठनेपर कहीं खड़ा हो पाता है, वैसे ही साधना करते समय साधक अनेक बार गिरने-पड़नेपर कहीं अन्तमें सिद्धि-लाभ करता है।

१००–समुद्रमें एक प्रकारकी सीप रहती है जो सदा मुँह खोले जलपर तैरती रहती है, पर स्वाती-नक्षत्रका एक बूँद भी जल यदि उसके मुँहमें पड़ जाय तो वह मुँह बन्द कर एकदम पानीके भीतर चली जाती है, फिर ऊपर नहीं आती। तत्त्व-

जिज्ञासु विश्वासी साधक भी इसी प्रकार गुरु-मन्त्ररूप एक बूँद जल पाकर साधनाके अगाध जलमें एकदम डूब जाते हैं, फिर दूसरी ओर दृष्टि नहीं डालते।

१०१–सैकड़ों वर्ष जलके भीतर पड़े रहनेपर भी चकमक पत्थरकी आग नहीं नष्ट होती; उसे उठाकर हथौड़ेसे आघात करते ही उसमेंसे आगकी चिनगारियाँ निकलने लगती हैं। उसी प्रकार हजारों सांसारिक जीवोंके बीच पड़े रहनेपर भी सच्चे विश्वासी भक्तका विश्वास तथा भक्ति किसी प्रकार नष्ट नहीं होती। भगवच्चर्चा होते ही वह उन्मत्त हो उठता है।

१०२–पत्थर हजारों वर्षतक पानीमें पड़ा रहता है तो भी उसके भीतर जल नहीं प्रवेश करता, परन्तु मिट्टी जलमें पड़ते ही तुरन्त गल जाती है। इसी प्रकार विश्वासी पुरुष हजारों बार परीक्षा होनेपर भी हताश नहीं होते। अविश्वासी मनुष्य मामूली-सा कारण होनेपर ही बदल जाते हैं।

१०३–बालकोंकी रुचि जैसे रुपये-पैसे छोड़कर केवल खिलौना लेनेकी ओर ही होती है, उसी प्रकार विश्वासी भक्त ईश्वरके सिवा सांसारिक धन-मान कुछ भी लेना नहीं चाहता।

१०४–जीव चार प्रकारके हैं—बद्ध, मुमुक्षु, मुक्त और नित्यमुक्त।

१०५–बद्ध जीव कामिनी-काञ्चनमें बिल्कुल लिप्त रहते हैं। वे भूलकर भी ईश्वरकी ओर मन नहीं लगाते।

१०६–गरम लोहेपर जलका छींटा पड़ते ही जैसे वह सूख जाता है, वैसे ही भगवान्‌की चर्चा भी बद्ध जीवोंके निकट व्यर्थ हो जाती है।

१०७—जो जीव संसारके जालसे मुक्त होनेके लिये विकल होकर यत्न करते हैं, उन्हें मुमुक्षु जीव कहते हैं।

१०८—जो जीव कामिनी-काञ्चनके हाथसे छुटकारा पा चुके हैं, जिनके मनमें विषय-वासना बिल्कुल नहीं है और जो सदा भगवान्‌के चरणोंका ही चिन्तन किया करते हैं, वे ही मुक्त जीव हैं।

१०९—नित्यमुक्त जीव कभी संसारमें लिप्त नहीं होते, उनका ईश्वरमें विश्वास स्वतःसिद्ध है। वे सदा हरिरस-पानमें ही मत्त रहते हैं, वे विषय-रसको जरा भी नहीं छूते।

११०—संसारमें ईश्वर ही केवल सत्य है, और सभी असत्य हैं।

१११—दुर्लभ मनुष्य-जन्म पाकर जो व्यक्ति ईश्वरकी प्राप्तिके लिये यत्न नहीं करता, उसका जन्म वृथा ही है।

११२—हाथमें तेल लगाकर कटहल काटनेसे उसका लासा हाथमें नहीं लगता। वैसे ही ईश्वरमें भक्ति और विश्वास करके संसारका सब काम करनेसे जीव संसारके बन्धनमें नहीं पड़ता।

११३—जो जादू जानता है वह अपने गलेमें साँप लपेटकर तमाशा करता है। वैसे ही जो ईश्वरका चरण-कमल प्राप्त कर सकता है, वह संसारसे नहीं डरता।

११४—बालक खूँटा पकड़कर कितनी ही बार चारों ओर घूमने लगता है, पर गिरता नहीं। वैसे ही ईश्वरका चरण-कमल पकड़कर संसारका काम करो, बन्धनका डर नहीं रहेगा।

११५–पहले ईश्वर-प्राप्तिका यत्न करो; पीछे जो इच्छा हो कर सकते हो।

११६–मनुष्यका मन संसारके नाना प्रकारके विषयोंमें लग गया है; उस मनको और सब विषयोंसे हटाकर ईश्वरमें स्थिर करनेका ही नाम 'योग' है।

११७–सूखा पत्ता डालसे छूटनेपर जैसे हवाके झोंकेमें उड़ता फिरता है, खुद कोई चेष्टा नहीं करता, वैसे ही जो ईश्वरपर निर्भर करते हैं, उन्हें ईश्वर जैसे चलाते हैं वे वैसे ही चलते हैं, उनकी अपनी कोई चेष्टा नहीं होती।

११८–*प्रश्न*–गेरुआ वस्त्र पहननेकी क्या आवश्यकता है?

उत्तर–गेरुआ वस्त्र पहननेसे ही मनमें पवित्र भाव आता है; जैसे फटी जूती तथा फटा वस्त्र पहनकर निकलनेसे ही दीन-भाव मनमें आता है। कोट, पतलून और बूट पहननेसे सहज ही मनमें अहंकार उठता है; काले किनारेकी धोती, गलेमें बेला-फूलकी माला पहननेसे स्वतः ही खराब गाना गानेकी इच्छा होती है।

११९–गुरु लाखों मिलते हैं, पर चेला एक भी नहीं मिलता। उपदेश करनेवाले अनेकों मिलते हैं, पर उपदेश पालन करनेवाले विरले ही मिलते हैं।

१२०–सूर्यकी किरणें यद्यपि सब जगह समान पड़ती हैं, तथापि जलमें, दर्पणमें और सब प्रकारकी स्वच्छ वस्तुओंमें वे अधिक उज्ज्वल दीख पड़ती हैं। उसी प्रकार ईश्वरका प्रकाश सबके

हृदयमें समान होनेपर भी वह साधुओंके हृदयमें अधिक प्रकाशित होता है।

१२१–प्रश्न–धर्म विकृतभाव क्यों धारण करता है?

उत्तर–आकाशका जल निर्मल रहता है, परन्तु जब वह गंदे छप्पर तथा नालीमें होकर गिरता है तब गंदा हो जाता है।

१२२–नमककी पोटली, कपड़ेकी गाँठ और पत्थरके टुकड़ेको समुद्रमें फेंकनेसे नमक तो गलकर एकदम उसमें घुल-मिल जाता है, उसका अस्तित्व भी नहीं रहता। कपड़ेकी गाँठमें जल प्रवेश करता है पर वह जलमें मिल नहीं जाती, इच्छा होनेपर उसे जलसे बाहर भी निकाल सकते हैं और पत्थरमें तो जल किसी प्रकार प्रवेश ही नहीं करता। मुक्त जीव नमक-जैसे, सांसारिक जीव कपड़ेकी गाँठके समान और बद्ध जीव पत्थरके ऐसे होते हैं।

१२३–प्रश्न–समाधि-अवस्थामें मनका भाव कैसा होता है?

उत्तर–जीती मछलीको तालाबमें छोड़ देनेसे उसको जैसा आनन्द होता है।

१२४–एक ज्ञानी और एक प्रेमिक साधक वनमें जा रहे थे, रास्तेमें उन्हें एक बाघ आता हुआ दिखायी दिया। ज्ञानी बोला—'हमलोगोंको भागनेकी कोई आवश्यकता नहीं, सर्वशक्तिमान् परमेश्वर निश्चय ही हमलोगोंकी रक्षा करेंगे।' प्रेमिक बोला—'नहीं भाई, चलो हमलोग भाग चलें, जो कार्य हमलोगोंसे हो सकता है उसके लिये भगवान्‌को क्यों वृथा परिश्रम दें?'

१२५–ज्ञान पुरुष है, भक्ति स्त्री है। ज्ञान ईश्वरके घरके बाहरतक ही जा सकता है; अन्तःपुरमें भक्तिके सिवा और कोई नहीं जा सकता।

१२६–पार्थिव-लाभकी आशामें सांसारिक पुरुष अनेक प्रकारके धर्म-कर्म करते हैं, पर विपत्ति, दुःख-दरिद्रता तथा मृत्युके आनेपर सब भूल जाते हैं। तोता दिनभर 'राधाकृष्ण' 'राधाकृष्ण' रटा करता है; पर जब बिल्ली उसपर झपटती है तब कृष्ण नाम भूलकर 'ट्याँ, ट्याँ' करने लगता है।

१२७–काजलकी कोठरीमें कितना भी बचकर रहो, कुछ-न-कुछ कलौंस लगेगा ही। इसी प्रकार युवतीके साथ बहुत सावधानीसे रहनेपर भी कुछ-न-कुछ काम जागेगा ही।

१२८–एक संन्यासीकी किसी ब्राह्मणसे भेंट हुई। सांसारिक धर्मसम्बन्धी अनेकों बातें होनेके बाद संन्यासी ब्राह्मणसे बोले—'देखो बाबा! इस जगत्में कोई किसीका नहीं है।' ब्राह्मणको इसपर विश्वास न हुआ, उसने सोचा कि जिन स्त्री-पुत्र, माता-पिता आदिके लिये दिनभर परिश्रम किया जाता है, भला इनमें कोई भी अपना नहीं है? उसने संन्यासीसे कहा—'स्वामीजी! मेरे सिरमें जरा दर्द हो जानेसे ही माँ व्याकुल हो जाती है, मुझे सुखी करनेके लिये घरके सब लोग लालायित रहते हैं और मेरा दुःख निवारण करनेके लिये प्राणतक देनेको तैयार रहते हैं; तो क्या इनमेंसे कोई भी मेरा नहीं है?' संन्यासी बोले—'ऐसी बात है तो वे सब तुम्हारे अपने हैं, परन्तु यह बात ठीक नहीं। तुम भ्रममें हो। तुम्हारी माँ, स्त्री, पुत्र कोई भी तुम्हारे लिये अपने प्राण नहीं दे सकता। मेरे इस कथनपर विश्वास न हो तो परीक्षा करके देख लो। आज घर जाकर सिर-दर्दका बहाना करके जोरसे छटपटाना शुरू करो, मैं आकर सब तमाशा दिखला दूँगा।

ब्राह्मणने वैसा ही किया। डाक्टर बुलाया गया, पर उसका दर्द कम न हुआ, घरवाले व्याकुल हो उठे। उसी समय वह संन्यासीजी जा पहुँचे और बोले—'इसकी बीमारी असाध्य है, अब इसका बचना कठिन है। हाँ, यदि कोई इसके बदले अपने प्राण दे सके तो यह बच सकता है। यह सुन सभी अवाक् हो गये। संन्यासीने उसकी बूढ़ी माताको बुलाकर कहा—'माँ, इस बुढ़ापेमें ऐसे योग्य पुत्रको खोकर तुम्हारा जीना मरनेके समान है। तुम इसके बदले अपना प्राण दे दो तो मैं इसको बचा सकता हूँ और यदि तुम माँ होकर भी अपने पुत्रके लिये प्राण नहीं दे सकती हो तो भला फिर इस संसारमें इसके लिये दूसरा कौन प्राण देनेके लिये तैयार होगा?' बुढ़िया रोते-रोते बोली—'बाबा, इसके लिये तुम जो कहोगे मैं वही करूँगी। पर प्राण—ऐसे पुत्रके लिये प्राण भी क्या चीज है, किन्तु सोचती हूँ कि फिर बाल-बच्चोंकी क्या दशा होगी? मेरी किस्मत फूटी न होती तो मेरी ऐसी दशा क्यों होती?' उधर इस बातको सुनते ही उस ब्राह्मणकी स्त्री रो उठी—'बाप रे बाप! तुम्हारे बच्चोंको छोड़कर मैं कैसे प्राण दे सकूँगी?' संन्यासी बोले—'इसकी माँ तो इसके लिये प्राण नहीं दे सकी। तू स्त्री होकर भी क्या अपने स्वामीके प्राण नहीं बचावेगी?' स्त्री बोली—'मैं अभागी हूँ, भाग्यमें जो लिखा है वही होगा। वृथा प्राण देकर अपने माता-पिताको क्यों रुलाऊँ?' इसी प्रकार सबने अपना-अपना रास्ता निकाल लिया। तब संन्यासीने रोगीसे कहा—'देखा, कोई तुम्हारे लिये प्राण नहीं देना चाहता। अब तो समझ गये न कि यहाँ कोई भी

किसीका अपना नहीं है ?' ब्राह्मण यह देखकर संसारको छोड़ साधुके साथ चला गया ।

१२९—जैसे पत्थरमें काँटी नहीं घुसती, मिट्टीमें घुस जाती है, वैसे ही साधुके उपदेश बद्ध जीवोंके हृदयमें प्रवेश नहीं करते; विश्वासीके हृदयमें सहज ही प्रवेश कर जाते हैं ।

१३०—जैसे बालकको स्त्री-प्रसङ्गका सुख समझाया नहीं जा सकता, वैसे ही विषयासक्त माया-मुग्ध संसारी जीवको ब्रह्म समझाया नहीं जा सकता ।

१३१—जिस प्रकार दर्पणमें मैल बैठ जानेपर उसमें मुख नहीं दिखलायी देता, उसी प्रकार मलिन हृदयमें ईश्वरकी मूर्तिका दर्शन नहीं होता । मैल हटा देनेसे जैसे दर्पणमें मुँह दिखलायी देने लगता है, वैसे ही हृदयके स्वच्छ होते ही भगवान्‌का रूप दिखलायी देने लगता है ।

१३२—लोहारकी दूकानमें लोहा जबतक भट्ठीमें रहता है तबतक लाल रहता है, भट्ठीसे निकाल लेनेके बाद फिर काला-का-काला हो जाता है; इसी प्रकार सांसारिक मनुष्य जबतक धर्म-मन्दिरमें या धार्मिक लोगोंके समीप सत्संगमें रहते हैं तबतक धर्मभावसे पूर्ण रहते हैं, पर बाहर निकलते ही उनका वह भाव चला जाता है ।

१३३—बद्ध जीव न तो स्वयं हरि-नामका श्रवण करते हैं और न दूसरोंको श्रवण करने देते हैं । वे धर्म तथा धर्माचरण करनेवालोंकी निन्दा करते हैं और उपासनाका ठट्ठा करते हैं ।

१३४—मगरके शरीरपर अस्त्र मारनेसे वह उसके शरीरमें नहीं धँसता, बाहर ही फिसल जाता है; उसी प्रकार बद्ध जीवके समीप चाहे कितनी ही धर्मकी बातें हों, वे उसके मनमें किसी प्रकार भी नहीं धँसतीं।

१३५—दुष्ट मनुष्योंका मन कुत्तेकी पूँछके समान होता है। कुत्तेकी पूँछको चाहे कितना ही सीधा करो वह टेढ़ी-की-टेढ़ी ही हो जाती है। इसी प्रकार दुष्ट मनुष्योंका मन कभी नहीं बदल सकता।

१३६—छोटे बच्चे अपने घरमें गुड़िया पुतली आदि खिलौनोंसे खेलते रहते हैं; उन्हें दूसरी कोई चिन्ता नहीं रहती। परन्तु जैसे ही उनकी माँ आती है, वैसे ही सब खेल छोड़कर वे 'माँ-माँ' कहकर उसके नजदीक दौड़ पड़ते हैं, कोई खेल उनको अच्छा नहीं लगता। इसी प्रकार तुमलोग भी धन, मान, यशरूपी खिलौनोंसे निश्चिन्त होकर खेल रहे हो, कोई भी भय अथवा चिन्ता नहीं है। परन्तु एक बार भी यदि माँ आनन्दमयीको देख पाओगे तो फिर धन, यश, मान तुम्हें अच्छे न लगेंगे, सब छोड़कर तुम उसीके निकट चले जाओगे।

१३७—योग चार तरहका है—हठयोग, कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग।

१३८—ईश्वरको अपना समझकर किसी एक भावसे उसकी सेवा-पूजा करनेका नाम भक्तियोग है।

१३९—कलियुगमें अन्य योगोंकी अपेक्षा भक्तियोगसे सहज ही ईश्वरकी प्राप्ति होती है।

१४०—ध्यान करना चाहो तो तीन जगह कर सकते हो—मनमें, घरके कोनेमें और वनमें।

१४१—पेड़के नीचे खड़े होकर ताली बजानेसे पेड़के सब पखेरू उड़ जाते हैं। उसी तरह ताली बजाकर भगवान्‌का नाम-कीर्तन करनेसे शरीरके सब पाप और कुवृत्तियाँ दूर हो जाती हैं।

१४२—केवल ईश्वरज्ञान ही ज्ञान है और सब अज्ञान है।

१४३—छोटे पौधेको बाड़ लगाकर नहीं रखनेसे बकरी, बैल आदि पशु उसे खा डालते हैं। पहले यदि बाड़ लगाकर उसे बचा लिया जाय तो पीछे बड़ा होनेपर उसकी जड़में हाथी भी बाँध दीजिये तो उसकी कोई हानि नहीं हो सकती। वैसे ही पहले-पहल अपने भावकी खूब सावधानीसे रक्षा करनी चाहिये, नाना भावोंवाले लोगोंके साथ मिलने-जुलनेसे वह भाव नष्ट हो जाता है। लेकिन जब अपना भाव खूब पक्का हो जाय, तब किसी भी भावके लोगोंसे मिलो-जुलो, तुम्हारे भावके बिगड़नेका भय नहीं रहेगा।

१४४—भगवान् भक्तिके वश हैं; वह अपनी ओर ममता और प्रेम चाहता है।

१४५—जिसके मनमें ईश्वरका प्रेम उत्पन्न हो गया उसे संसारका और सुख अच्छा नहीं लगता। जो एक बार भी बढ़िया मिस्रीका स्वाद ले चुका है, वह क्या राब खाना चाहेगा?

१४६—जो उसके प्रेममें बावला हो गया है, जिसने अपना सब कुछ उसके चरणोंमें अर्पण कर दिया है, उसका सारा भार

ठाकुर जब कभी बोलते थे समाधि...

वह अपने ऊपर ले लेता है। जो नाबालिग है वह स्वयं भला-बुरा कुछ नहीं समझता। उसका सब भार उसके संरक्षक ले लेते हैं।

१४७-दो आदमी बगीचेमें घूमने-फिरने गये थे। एक आदमी यह हिसाब करने लगा कि, इस बगीचेमें कितने पेड़ हैं, कितने फल हैं, बगीचेके दाम कितने हैं इत्यादि। दूसरा आदमी मालिकके साथ मेल-जोल करके आम तोड़-तोड़कर खाने लगा। इनमें यह पिछला आदमी ही चतुर था। ऐसे ही संसारमें आकर भगवान्के विषयमें तर्क, युक्ति, विचार आदि करनेसे कुछ लाभ नहीं। जो उसको प्राप्त कर आनन्दानुभव कर सकता है वही धन्य है।

१४८-वर्षाका जल जैसे एक ओरसे आता है और दूसरी ओर बह जाता है, उसी प्रकार सांसारिक बद्ध जीव भी धर्मकी बातें एक कानसे सुनते हैं और दूसरेसे निकाल देते हैं।

१४९-*प्रश्न*-यदि एक सच्चिदानन्द ही सत्य है तो फिर शास्त्रविहित बाह्य आचार-व्यवहारकी क्या आवश्यकता है?

उत्तर-आवश्यकता चावलकी होती है, परन्तु चावल बोनेसे उपजता नहीं; चावल पानेके लिये धान ही बोना पड़ता है। धानमें भी छिलका यद्यपि अनावश्यक है, पर छिलके बिना धान नहीं उगता। उसी प्रकार शास्त्र-विहित आचारोंका पालन किये बिना धर्म प्राप्त नहीं होता।

१५०-कच्चा बाँस आसानीसे नवाया जा सकता है, पक्का बाँस नवानेसे टूट जाता है। उसी प्रकार लड़कोंका मन सहज ही

ईश्वरकी ओर ले जाया जा सकता है, पर बुढ़ापेमें मनको ईश्वरकी ओर खींचनेसे वह भाग जाता है।

१५१–*प्रश्न*–क्या सब मनुष्य भगवान्‌को देख सकेंगे?

उत्तर–कोई भी मनुष्य बिल्कुल भूखा नहीं रहेगा, कोई दो बजे, कोई सन्ध्या-समय और कोई रातको नौ बजे भोजन पावेगा ही; इसी प्रकार सभी मनुष्य जन्म-जन्मान्तरमें कभी-न-कभी भगवान्‌को देखेंगे ही।

१५२–*प्रश्न*–हमें किस पथका अवलम्बन करना चाहिये?

उत्तर–आर्य ऋषियोंका सनातन पथ श्रेय है, अतः उसीका अवलम्बन तुम्हें करना चाहिये। [श्रीरामकृष्ण परमहंसदेव सभी धर्मावलम्बियोंका समान आदर करते थे; यहाँ हिन्दुओंके लिये हिन्दू-धर्मको श्रेय बतलाते हैं। इससे यह नहीं समझना चाहिये कि वह किसी खास सम्प्रदायके पक्षपाती थे। वह तो सभी मतावलम्बियोंको अपने-अपने धर्म-पालनका उपदेश देते थे।]

१५३–*प्रश्न*–वर्तमान समयमें जो धर्म-प्रचार हो रहा है, उसे आप कैसा समझते हैं?

उत्तर–अन्य मनुष्योंसे भजन न कराकर स्वयं भजन करना ही यथार्थ प्रचार है। जो स्वयं मुक्त होनेकी चेष्टा करता है वही वस्तुतः प्रचार करता है। जो स्वयं मुक्त है उसके पास स्वयमेव सैकड़ों मनुष्य आकर शिक्षा ग्रहण करेंगे; जैसे गुलाबके खिलनेपर भौंरे अपने-आप ही उसके पास आ जाते हैं।

१५४–आग जलते ही पतङ्ग अपने-आप वहाँ आ जाते हैं। आग कभी पतङ्गोंको बुलाने नहीं जाती। सिद्ध पुरुषोंका प्रचार

भी उसी प्रकारका होता है। वे लोग किसीको बुलाने नहीं जाते, बल्कि सैकड़ों मनुष्य आप ही उनके निकट आकर शिक्षा ग्रहण करते हैं।

१५५—कलियुगमें अनेकों मनुष्य कीर्तन करेंगे तथा नाच-नाच, गा-गाकर भगवान्‌को पायेंगे।

१५६—सूईके छिद्रमें तागा पहनाना चाहते हो तो उसे पतला करो। मनको ईश्वरमें पिरोना चाहते हो तो दीन-हीन अकिञ्चन बनो।

१५७—भक्तका हृदय भगवान्‌की बैठक है। ईश्वर सब जीवोंमें है सही, किन्तु भक्तके हृदयमें उसका प्रकाश अधिक है।

१५८—सब अक्षर एक-एक हैं, लेकिन 'स' अक्षर तीन है अर्थात् श, ष, स। इन तीनोंका तात्पर्य है—सहो, सहो, सहो। संसारमें जो जितना सह सकता है वह उतना ही महात्मा है।

१५९—जहाजको समुद्रकी तरङ्गोंके अनुसार ही चलना पड़ता है, पर जिस जहाजमें कम्पास लगा है उसमें दिशाकी भूल होनेका डर नहीं है, क्योंकि कम्पासकी सूई सदा उत्तर-दक्षिणकी ही ओर रहती है। वैसे ही इस संसार-समुद्रमें तरङ्ग-पर-तरङ्ग उठती हैं, किन्तु जिसका मनरूप कम्पास भगवान्‌के चरण-कमलोंकी ओर रहता है, उसके डूब जाने या राह भूलनेका डर नहीं रहता।

१६०—आलू, बैंगन सिद्ध हो जानेपर (सीझ जानेपर) जैसे नरम हो जाते हैं वैसे ही सिद्ध पुरुष नरम अर्थात् विनयी और दीनभावयुक्त हो जाते हैं।

१६१—पेटकी चिन्ता रहनेसे ईश्वरकी चिन्ता नहीं होती। बंगलामें एक कहावत है जिसका आशय यह है कि, खाने-पीनेकी अत्यन्त चिन्तासे लोग बावले हो जाते हैं।

१६२—बच्चा कितनी ही बार गिरता है, कितनी ही बार उठता है तब कहीं धीरे-धीरे खड़ा होना सीखता है। वैसे ही साधनकी राहमें भी कई बार उठना-गिरना होता है। फिर समय आ जानेपर साधन ठीक हो जाता है।

१६३—सर्वदा सत्य बोलना चाहिये। कलिकालमें सत्यका आश्रय लेनेके बाद और किसी साधन-भजनका काम नहीं। सत्य ही कलिकालकी तपस्या है।

१६४—लोग भली कहें या बुरी, उनकी बातोंकी ओर ध्यान नहीं देना चाहिये। संसारके यश और निन्दाकी कोई परवा न करके ईश्वरपथमें चलना चाहिये।

१६५—जो साधु दवा देता और नशा-पानी करता है वह सच्चा साधु नहीं है। उसकी सङ्गत करना उचित नहीं है।

१६६—साधु, गुरु और देवताके दर्शनके लिये खाली हाथ नहीं जाना चाहिये; कुछ न रहे तो एक हर्रे ही हाथमें लेकर जाना चाहिये।

१६७—एक आग जलाता है तो दस तापते हैं। वैसे ही एक महात्माकी कृपासे कितने ही जीवोंका उद्धार हो जाता है।

१६८—जलपात्रके नीचे छेद होनेसे सभी जल गिर पड़ता है। उसी प्रकार साधकके भीतर यदि कुछ भी आसक्ति है तो समस्त साधना व्यर्थ चली जायगी।

१६९–(भगवान् कहते हैं) मैं साँप होकर काटता हूँ और ओझा होकर झाड़ता हूँ। हाकिम होकर हुकुम देता हूँ और प्यादा होकर मारता हूँ।

१७०–साँपके सामने मेंढक नचाओ, जिससे साँप उसे न पकड़ सके; तथा अमृत-सागरमें स्नान करो जिससे केश न भीगे।

१७१–प्रश्न–अहङ्कार कैसे जाता है ?

उत्तर– (१) चावल छाँटनेके समय बीच-बीचमें देखना पड़ता है कि वह ठीक हुआ या नहीं। यदि नहीं हुआ होता है तो और छाँटना पड़ता है। (२) किसी वस्तुको तौलनेके समय बार-बार देखना पड़ता है कि वजन ठीक हुआ या नहीं; जबतक दोनों पलड़े बराबर नहीं आते, तबतक उसे देखना तथा बराबर करनेके लिये यत्न करना ही पड़ता है। अहङ्कारके त्यागनेके लिये भी इसी प्रकार बराबर देखते रहना पड़ता है।

१७२–प्रतिमा आदि साकार मूर्तिमें ईश्वर-भाव रहनेसे ईश्वरकी प्राप्ति होती है। परन्तु 'मिट्टी है,' 'पत्थर है'—इस प्रकारका भाव रहनेसे कुछ भी प्राप्त नहीं होता।

१७३–राम, सीता और लक्ष्मण वन जा रहे थे। सबसे आगे राम थे, तब सीता थीं और सबसे पीछे लक्ष्मण थे। लक्ष्मण रामको देखनेके लिये व्याकुल हो उठे; उनके प्रार्थना करनेपर सीता किनारे हो गयीं तब कहीं रामका उनको दर्शन हुआ। यही बात ब्रह्म, माया और जीवकी है। मायाके हटे बिना जीव ब्रह्मको नहीं देख सकता।

१७४–*प्रश्न*–प्रेमा-भक्ति कैसे स्थायी होती है ?

उत्तर–घड़ेमें जल भरकर सिकहरपर टाँग दो तो वह दो-तीन दिनमें सूख जायगा। किन्तु उसी जलसे भरे घड़ेको गङ्गा-जलमें डुबाये रक्खो तो कभी न सूखेगा। इसी प्रकार जो ईश्वरमें नित्य डूबा रहता है उसकी प्रेमा-भक्ति नहीं सूखती; परन्तु दो-एक दिनकी भक्तिसे ही जो सन्तुष्ट तथा निश्चिन्त रहता है, उसकी भक्ति सिकहरपर रखे हुए घड़ेके जलके समान दो दिनके बाद ही सूख जाती है।

१७५–*प्रश्न*–साधनाकी गति कैसी होनी चाहिये ?

उत्तर–साधनाकी तीन प्रकारकी गति होती है—पक्षीगति, वानरगति तथा पिपीलिकागति।

पक्षीगति–पक्षी पेड़के एक फलको ठोर मारता है, फल नीचे गिर पड़ता है, परन्तु पक्षी उसे चोंचमें लेकर उड़ नहीं सकता।

वानरगति–वानर फलको मुखमें लेकर जैसे ही उछलता है वैसे ही फल गिर पड़ता है।

पिपीलिकागति–चींटियाँ धीरे-धीरे अपने भोजनके पास जाती हैं, भोजनके पदार्थको धीरेसे मुँहमें लेती हैं और धीरे-धीरे ही उसको चखती हैं। इस पिपीलिकागतिके अनुसार ही साधन करना श्रेष्ठ कहलाता है।

१७६–कितनी मछलियाँ जालमें फँसी होनेपर विपत्तिमें भी भागनेकी चेष्टा नहीं करतीं, वहाँ ही चुप पड़ी रहती हैं; कितनी मछलियाँ भागनेके लिये छटपटाती हैं, परन्तु भाग नहीं सकतीं;

और कितनी मछलियाँ जालमें फँसनेपर उसे तोड़कर भाग निकलती हैं । इसी प्रकार इस संसारमें तीन प्रकारके जीव होते हैं—बद्ध, मुमुक्षु और मुक्त ।

१७७–प्रश्न–ईश्वर कहाँ है, उनसे कैसे भेंट होती है ?

उत्तर–समुद्रमें रत्न हैं, उसे पानेके लिये यत्न करना होता है । वैसे ही जगत्में ईश्वर व्याप्त हैं; पर उनको पानेके लिये साधना करनी पड़ती है ।

१७८–दादको जिस प्रकार खुजलाते समय तो सुख होता है किन्तु पीछे दाहसे मनुष्य व्याकुल हो जाता है, उसी प्रकार संसार भी है । पहले तो इसमें बहुत सुख मिलता है परन्तु पीछे सन्तापसे व्याकुलता हो जाती है ।

१७९–जिस सरसोंसे भूत भगाना चाहते हो उसीमें यदि भूत लगा हुआ रहे तो तुम उस भूतको कैसे भगा सकते हो ? इसी प्रकार जिस मनसे साधना करनी है वही यदि विषयासक्त हो जाय तो फिर साधना असम्भव ही समझो ।

१८०–जलमें नाव रहे तो कोई हानि नहीं, पर नावमें जल नहीं रहना चाहिये । साधक संसारमें रहे तो कोई हानि नहीं; परन्तु साधकके भीतर संसार नहीं होना चाहिये ।

१८१–मन और मुखको एक करना ही असली साधना है । नहीं तो जो मुखसे तो कहते हैं कि 'तुम्हीं मेरे सर्वस्व हो', और मनमें विषयको ही सर्वस्व माने बैठे हैं, ऐसे मनुष्योंकी सारी साधना विफल समझो ।

१८२–राजा चाहे कितना ही बड़ा हो, वह जिस प्रकार प्रजाकी साधारण भेंटको भी प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण करता है, उसी प्रकार ईश्वर महान् होनेपर भी अपने भक्तका तुच्छ उपहार प्रेमपूर्वक प्रसन्न हो ग्रहण करते हैं।

१८३–जैसे निशाना मारनेका अभ्यास करते समय पहले मोटी वस्तुपर निशाना लगाना होता है, पीछे सूक्ष्म वस्तुपर भी निशाना मारना सुगम हो जाता है, वैसे ही साकार मूर्तिमें मन स्थिर हो जानेपर निराकारमें भी मनका स्थिर करना सुगम हो जाता है।

१८४–जैसे एक ही चीनीसे विभिन्न प्रकारकी मिठाइयाँ तैयार की जाती हैं, वैसे ही एक ही ईश्वर विभिन्न देशमें विभिन्न प्रकारसे पूजे जाते हैं।

१८५–एक गुरुको एक टुकड़े छींटके कपड़ेकी आवश्यकता पड़ी; वह अपने एक शिष्यकी कपड़ेकी दूकानपर गये और उससे अपनी आवश्यकता सुनायी। शिष्यने उत्तर दिया—'ठीक है, पर कुछ देर पहले आप आये होते, तो एक टुकड़ा यों ही पड़ा था, जिसे अभी मैंने दूसरेको दे दिया है, आपहीको दे देता। अच्छा, अब जो टुकड़ा बचेगा, उसे मैं आपके लिये रक्खे रहूँगा। कभी-कभी बीच-बीचमें आकर खबर लेते रहियेगा।' गुरुदेव इसीपर राजी हो गये। उधर शिष्यकी स्त्री घरके भीतरसे सब बातें सुन रही थी। उसने गुरुदेवको वापस लौटता हुआ देख एक मनुष्यद्वारा उन्हें भीतर बुला भेजा। गुरुदेव जब भीतर गये तो उसने पूछा—'मेरे स्वामीसे आप क्या माँगते थे?' गुरुने सब

बातें साफ-साफ कह दीं। शिष्यकी स्त्रीने कहा—'अच्छा, जाइये कल आपके घर मैं छींट भेजवा दूँगी।' गुरु तथास्तु कहकर चले गये।

रातको जब शिष्य दूकान बन्द करके घर आया तो उसकी स्त्री बोली—'क्या तुम दूकान बन्द करके आये हो?' शिष्यने उत्तर दिया—'हाँ, क्यों?' स्त्री बोली—'अच्छा, अभी वापस जाकर मेरे लिये दो टुकड़े अच्छी छींटके ला दो।' शिष्य बोला—'इसके लिये जल्दी क्या है? मैं कल तुम्हें खूब अच्छी छींटके दो टुकड़े ला दूँगा।' स्त्री बोली—'सो नहीं होगा, अभी ला दो।' पति बोला—'मैं शपथ करके कहता हूँ, कल तुम्हें छींट अवश्य ला दूँगा।' स्त्री बोली—'नहीं, मुझे तो अभी ही ला दो।'

अब पति बेचारा क्या करे? यहाँ गुरुदेव तो हैं नहीं जिन्हें बीच-बीचमें आकर खबर लेनेका बहाना कर टाल दे; यहाँ तो गुरुके भी गुरु महागुरु हैं, इनकी आज्ञाका उल्लङ्घन कैसे हो सकता है? लाचार, उसी समय दूकान खोलकर उसने दो टुकड़े लाकर स्त्रीको दिये। स्त्रीने उन छींटके दोनों टुकड़ोंके साथ गुरुको कहला भेजा—'आपको जब किसी वस्तुकी आवश्यकता हो तो मुझे आज्ञा दें।'

बद्ध जीवोंकी अवस्था इसी शिष्यके समान होती है।

१८६—एक ब्राह्मणने एक बाग लगाया। वह दिन-रात उसीकी निगरानीमें रहता था। एक दिन एक बैल आकर उस बागकी एक बेलको खाने लगा। ब्राह्मणको यह देखकर बड़ा क्रोध हुआ और उसने लाठी उठा जोरसे बैलको दे मारा। बैल मर

गया। लोगोंने ब्राह्मणको गोहत्याका दोषी बतलाया। परन्तु ब्राह्मणने अपनेको दोषी नहीं माना। वह कहने लगा कि 'मेरा क्या दोष है? बैलको तो हाथने मारा है और हाथका राजा इन्द्र है, इसलिये सारा दोष इन्द्रको लगेगा।' इन्द्र बड़ी विपत्तिमें पड़े; अतएव वह ब्राह्मणको उसका दोष समझानेके लिये एक ब्राह्मणका रूप धारण कर उसी बागमें पहुँचे और उससे बोले—'महाराज! यह बगीचा किसका है?' ब्राह्मण बोला—'मेरा है।' इन्द्रने कहा—'अच्छा बगीचा है, आपका माली बहुत अच्छा है, कैसे सजाकर उसने वृक्षोंको लगाया है!' ब्राह्मण बोला—'नहीं महाशय, ये सब पेड़ मेरे निजके लगाये हुए हैं।' इन्द्रने कहा—'बागके रास्ते भी बहुत ही सुन्दर हैं, ये किसके बनाये हुए हैं?' ब्राह्मण बोला—'सब मेरे अपने बनाये हुए हैं।' तब इन्द्रने कहा, 'ऐसी बात है? यह सब तो आपके बनाये हुए हैं, केवल बैलको मारनेके लिये इन्द्र आ गये थे?'

इस प्रकार बहुतेरे मनुष्य कर्म स्वयं करते हैं और दोष भगवान्के ऊपर मढ़ते हैं कि वही सब करा रहे हैं।

१८७—रेलका इञ्जिन मालसे भरी गाड़ियोंको अनायास खींच ले जाता है; ऐसे ही अवतार भी पापसे लदे जीवोंको अनायास मुक्तिकी ओर खींच ले जाते हैं।

१८८—जो राजा होता है उसीकी अमलदारीके सिक्के चलते हैं; वैसे ही जब जो अवतार होता है तब उसीके आदेशके अनुसार चलना चाहिये। इससे झटपट काम बनता है।

१८९–'भगवान् नीचे खड़े हैं, मेरी रक्षा करेंगे' ऐसा विश्वास करके जो आदमी हाथ-पैर छोड़कर खुशीसे ताड़के पेड़से कूद सकता है वही संन्यासी होनेका उपयुक्त पात्र है।

१९०–विकारवाले रोगीको यदि अरुचि हो, तो उसके बचनेकी आशा नहीं रहती। किन्तु जिसके मुँहमें रुचि है उसके बचनेकी सोलहों आने आशा है। वैसे ही जिस आदमीकी ईश्वरके नाममें रुचि है, भगवान्‌की ओर जिसकी लगन लग गयी है, उसका संसारविकार अवश्य दूर होगा। उसपर भगवान्‌की कृपा अवश्य होगी।

१९१–अपने सब कर्म-फल ईश्वरको अर्पण कर दो, अपने लिये किसी फलकी कामना न करो।

१९२–वासना यदि लेशमात्र भी रहे तो भगवान् नहीं मिल सकते। तागेमें अगर जरा भी खूँदा हो तो वह सूईमें नहीं समाता।

१९३–मनुष्यको अहङ्कार करना अच्छा नहीं है। अहङ्कारकी आड़ होनेसे ईश्वर नहीं देख पड़ते।

१९४–अहङ्कारकी बड़ी ही दुर्दशा होती है। बछड़ा 'हम-हम', 'मैं-मैं' करता है, इससे उसे अनेक तरहकी दुर्गति सहनी पड़ती है। माँका दूध वह नहीं पीने पाता, उससे गायको चटवाकर दूध दूसरे दुह लेते हैं। वह जब बड़ा होता है तब या तो हल खींचता है या कसाइयोंके पाले पड़ता है। मोची उसके चमड़ेसे जूते बनाते हैं, जो पैरोंके नीचे रहते हैं। इतनेपर भी उसकी दुर्गतिका अन्त नहीं होता। उसकी आँतसे ताँत बनती [illegible]

तब वह 'तैं-तैं' करता है। जब 'तैं-तैं' करता है तब उसकी दुर्गतिका अन्त होता है। 'मैं' और 'मेरा' रूप ज्ञानके कारण ही मनुष्यकी सारी दुर्गति है। अहंबुद्धिके जाते ही सब जंजाल दूर हो जाते हैं।

१९५–मुक्त होगे कब ? 'अहम्' जायगा जब।

१९६–मैं उसका दास हूँ, मैं उसकी सन्तान हूँ, मैं उसका अंश हूँ—ये सब अहंकार अच्छे हैं। ऐसे अभिमानसे भगवान् मिलता है।

१९७–जीवकी अहंताका नाश होनेपर शिवत्व प्राप्त होता है। यही शिव जब शव होता है अर्थात् मृत हो जाता है तब आनन्दमयी माता उसके मनमें विराजमान होती हैं।

१९८–एक चोर राजाके महलमें चोरी करने गया। वहाँ उसने राजाको रानीसे कहते सुना कि, 'गङ्गाके किनारे जो साधु टिके हुए हैं उनमेंसे एकको बुलाकर कल राजकन्यासे विवाह कर दिया जाय।' चोरने सोचा कि 'मैं भी साधुका वेष धारणकर वहीं जा बैठूँ, हो सकता है राजा मुझे ही बुलाकर राजकन्यासे विवाह कर दें।' चोरने वैसा ही किया।

दूसरे दिन राजाके कर्मचारी साधुको बुलाने गये, परन्तु विवाहकी बात सुनकर कोई भी साधु राजी न हुआ। तब वे उस साधुवेषधारी चोरके पास गये। चोर तुरन्त राजी न होकर कुछ देरतक चुप रहा। राजकर्मचारी उसके मनकी बात जान राजाके पास पहुँचे और बोले—'एक युवा साधु है जो राजी हो सकता

उस साधुवेषधारी चोरके पास गया और नाना प्रकारसे अनुनय-विनय करने लगा। राजाको इस प्रकार सामने आकर आदरपूर्वक बातें करते देखकर चोरका मन बदल गया! उसने सोचा कि 'केवल साधुका वेष बनानेसे ही जब राजा मेरे निकट आकर प्रार्थना करते हैं, तब यदि मैं सच्चा साधु हो जाऊँ तो न जाने किस अवस्थामें पहुँच जाऊँगा?' इस विचारसे उसका मन संसारसे विरक्त हो गया और वह सच्चा साधु बननेकी चेष्टा करने लगा। घड़ीभर साधुका वेश धारणकर साधुओंके निकट बैठनेसे चोरका मन इतना बदल गया। साधु-सङ्गतिकी महिमा अद्भुत है।

१९९—जिसका यहाँ ठीक है उसका वहाँ भी ठीक है और जिसका यहाँ नहीं है उसका वहाँ भी नहीं है।

२००—जिसका जैसा भाव होता है, उसको वैसा ही फल होता है। दो आदमी एक साथ जा रहे थे। रास्तेमें भागवतकी कथा हो रही थी। एक आदमी बोला—'चलो भाई, थोड़ी देर बैठकर कथा सुन लें।' दूसरा बोला—'नहीं भाई, भागवत सुनकर क्या होगा? चलो वेश्याके घर चलकर आनन्द करें।' इसपर पहला राजी नहीं हुआ, वह तो बैठकर भागवत सुनने लगा और दूसरा वेश्याके घर चला गया। जो वेश्याके घर गया था, उसको वहाँ आनन्द नहीं मिला, वह केवल यही सोचता रहा कि 'हा! मैं कैसा अभागा हूँ जो वेश्याके घर आया हूँ; न जाने मेरा वह साथी वहाँ कितनी कथा सुन चुका होगा?' और जो भागवत सुनने बैठा था, वह सोचने लगा—'मैं नाहक ही यहाँ बैठा हूँ। मेरा मित्र वेश्याके घर आनन्द लूट रहा होगा।' इस प्रकार दोनोंके [illegible] परि[illegible] हुआ कि जो वेश्याके घर गया

था, उसको तो भागवत सुननेका फल मिला और जो भागवत सुनने गया था उसे वेश्याके घर जानेका फल मिला ।

२०१–बंगालमें एक अशिक्षित ब्राह्मण थे, वह नित्य अठारहों अध्याय गीताका पाठ किया करते थे तथा पाठ करते समय निरन्तर रोते जाते थे । गीताके श्लोकोंका शुद्ध उच्चारण उनसे न हो पाता था और न वह अर्थ ही जानते थे । इस कारण सभी उनका उपहास किया करते थे । पर वह उन सबके उपहास तथा निन्दा-का कुछ खयाल न कर मनसे प्रतिदिन पाठ करते जाते तथा पुलकायमान होकर आनन्दाश्रु बरसाते जाते थे । एक दिन श्रीगौराङ्गदेवने उनके सामने जाकर पूछा—'बाबा ! किस अर्थसे तुम्हें इतना आनन्द मिलता है ?' ब्राह्मणने उत्तर दिया—'गुरुकी आज्ञासे मैं गीताका पाठ करता हूँ और जबतक पाठ करता हूँ तबतक देखता हूँ कि श्रीकृष्ण अर्जुनके रथपर बैठकर उनको उपदेश दे रहे हैं । इसीसे मुझे आनन्द मिलता है ।' श्रीगौराङ्गदेव उनका आलिङ्गन कर बोले—'भाई, तुम्हीं गीताका सार धर्म समझते हो ।'

२०२–बिल्ली अपने बच्चोंको दाँतसे पकड़ती है, पर दाँत उन्हें नहीं गड़ते; परन्तु वही जब चूहोंको पकड़ती है तो वे मर जाते हैं; इसी प्रकार माया भक्तको बचाती है तथा दूसरोंको नष्ट कर देती है ।

२०३–स्वच्छ वस्त्रमें थोड़ी भी स्याहीका दाग पड़नेसे वह दाग बहुत स्पष्ट दीखता है; उसी प्रकार पवित्र मनुष्योंका थोड़ा दोष भी अधिक दिखलायी देता है ।

१९ जब कभी बोलते या समाधि

२०४—जिस घरमें नित्य हरि-संकीर्तन होता है वहाँ कलियुग प्रवेश नहीं कर सकता ।

२०५—कल्पतरुके तलमें बैठकर एक मनुष्यने ज्यों ही मनमें सोचा कि 'मैं राजा होऊँ' त्यों ही वह राजा हो गया । फिर सोचा—'सुन्दरी स्त्री मिल जाती', वह भी मिल गयी । तदनन्तर उसके मनमें आया—'यदि बाघ आकर मुझे खा जाता' बस, तत्काल एक बाघ आकर उसे खा गया ।

अतः जब भगवान्‌के आश्रित हो रहे हो तो 'यह न हुआ, वह न हुआ'—आदि चिन्ताओंमें मत पड़ो ।

२०६—खानदानी किसान बारह वर्ष भी वर्षा न हो तो खेती करना नहीं छोड़ता । ठीक इसी प्रकार विश्वासी भक्त आजीवन भगवान्‌का दर्शन न मिलनेपर भी भगवान्‌को नहीं छोड़ता ।

२०७—श्रीरामचन्द्रजीको पुल बाँधकर समुद्र पार करना पड़ा था; परन्तु श्रीहनुमान्‌जीने एक बार 'जय राम' कहा और एक ही छलाँगमें पार हो गये । सच है, विश्वासमें अद्भुत शक्ति है ।

२०८—सीताजीकी जब अग्नि-परीक्षा होने लगी तो श्रीहनुमान्‌जी क्रोधित हो कह उठे—'को रामः' अर्थात् 'रामको मैं नहीं मानता ।'

२०९—लज्जा, घृणा और भय ये तीनों जिस मनुष्यमें वर्तमान हैं उसे ईश्वरका दर्शन कहाँसे हो सकता है ?

२१०—अवधूतका एक गुरु था भ्रमर । उसने अत्यन्त कष्ट सह-सहकर मधु सञ्चय किया । कहींसे एक मनुष्य आया और

उसके मधुका छत्ता तोड़कर सारा मधु ले गया। अपने चिरसञ्चित मधुका उपभोग वह भ्रमर न कर सका। अवधूतने यह देखकर भ्रमरको प्रणाम किया और कहा—'प्रभो! तुम मेरे गुरु हो। सञ्चय करनेसे क्या परिणाम होता है, यह मैंने तुमसे आज सीख लिया।'

२११—संसार कच्चा कुआँ है। इसके किनारेपर खूब सावधानीसे खड़ा होना चाहिये। तनिक असावधान होते ही कुएँमें गिर पड़ोगे; तब निकलना कठिन हो जायगा।

२१२—भिखमंगे दोनों हाथोंसे बाजे बजाते, मुँहसे गीत गाते और नाचते हैं। संसारी! तुम संसारका सब काम करो, किन्तु मन हर घड़ी ईश्वरकी ओर रक्खो।

करसे कर्म करै विधि नाना। मन राखै जहँ कृपानिधाना॥

२१३—कामिनी और काञ्चन ही माया है। इनके आकर्षणमें पड़नेसे जीवकी सब स्वाधीनता चली जाती है। इनके मोहमें पड़कर जीव संसारके बन्धनमें पड़ जाता है।

२१४—संसारमें रहनेसे सुख-दुःख रहेगा ही। ईश्वरकी बात अलग है और उसके चरण-कमलमें मन लगाना अलग है। दुःखके हाथसे छुटकारा पानेका और कोई उपाय नहीं है।

२१५—चावलका धोवन पीनेसे शराबका नशा उतर जाता है; ऐसे ही साधु-सङ्ग करनेसे जीवका मायारूपी नशा उतर जाता है।

२१६—लोहारखानेकी आगको धौंकनीसे बीच-बीचमें जलाना पड़ता है; वैसे ही अगर तुम अपने धर्मभावको मनमें जगा रखना चाहो तो कभी-कभी सत्सङ्ग किया करो।

२१७—एक मनुष्यने गृह त्यागकर, चौदह वर्ष निर्जनमें साधना करके कुछ शक्ति प्राप्त की। तदनन्तर वह घर आकर अपने भाईसे आनन्दपूर्वक कहने लगा—'भाई, मैंने सिद्धि पा ली है।' उसके भाईने पूछा—'कौन-सी सिद्धि पायी है?' वह बोला—'मैं गंगापर चलकर पार हो सकता हूँ।' उसके भाईने कहा—'छिः! चौदह वर्ष तपस्या करके अन्तमें अधेलेका रोजगार करना सीखा! तू चौदह वर्ष तप करके जो कर सकता है, एक आदमी आधा पैसा खर्च करके वही करता है अर्थात् अधेला उतराई देकर गंगा-पार जा सकता है।'

२१८—यदि किसीको दस आदमी जानते, मानते तथा आदर-सत्कार करते हों तो समझना चाहिये कि उसके भीतर भगवान्‌की विभूति अधिक है।

२१९—जो सोचता है 'मैं जीव हूँ'—वह जीव है; और जो सोचता है 'मैं शिव हूँ' वह शिव है।

२२०—एक (१) के आगे शून्य बढ़ाते जानेसे जैसे संख्या दसगुनी बढ़ती जाती है, पर एकके मिटाते ही कुछ नहीं रहता। उसी प्रकार एक ईश्वरको पकड़े रहनेसे इहलौकिक, पारलौकिक अनेकों लाभ होते हैं, पर ईश्वरको त्यागते ही जीवका सब कुछ व्यर्थ हो जाता है।

२२१—गुरुने दो अंगुलियाँ उठाकर कहा—'देखो, दो तत्त्व हैं—ब्रह्म और माया।' फिर एक अंगुली गिराकर बोले—'मायाके चले जानेपर देखो, ब्रह्म-ही-ब्रह्म रह जाता है।'

२२२—एक ब्राह्मणने एक राजाके [illegible] जाकर कहा—'[illegible] लीजिये।' राजा बोले—'आपने

अभीतक भागवतको समझा नहीं है, अच्छी तरह पढ़कर आइये तब सुनाइयेगा ।' ब्राह्मण खिसियाकर चले गये; राजाको उत्तर देनेकी शक्ति उनमें नहीं थी। घरपर आकर उन्होंने भागवतका पाठ करना प्रारम्भ किया। जब उनके मनमें निश्चय हो गया कि मेरा भागवत-पाठ ठीक हो गया है, तब वह फिर राजाके पास पहुँचे। राजाने पुनः कहा—'आप पहले अच्छी तरह पढ़कर आइये, तब मैं सुनूँगा।' ब्राह्मणने राजाकी बातका कुछ उत्तर नहीं दिया, वह बड़े ही विषादयुक्त हो घर लौट आये। घर आकर उन्होंने विचारा, 'राजा बारंबार मुझे यह बात क्यों कहते हैं, इसके भीतर अवश्य ही कोई रहस्य है।' उन्होंने फिर भागवतका पाठ करना प्रारम्भ किया। अबकी वह जितना ही पाठ करते जाते, उतने ही नये-नये दिव्य भाव उनके मनमें उठते। वह भावमें मग्न हो अकेले ही घर बैठ भागवत-पाठ करते, प्रेमसे उछलते और व्याकुल हो उठते थे।

कुछ दिनोंके बाद राजाको स्मरण आया कि ब्राह्मण-देवता अब क्यों नहीं आते। राजा स्वयं उनके घर गये और वहाँ जाकर देखते क्या हैं कि ब्राह्मण भागवत-पाठ कर रहे हैं और उनके नेत्रोंसे आनन्दाश्रु प्रवाहित हो रहा है। राजा बोल उठे—'अब आपका भागवत-पाठ ठीक हुआ।'

२२३—व्याकुल होकर उसके लिये रोनेसे ही वह मिलता है। लोग लड़के-बालेके लिये, रुपये-पैसेके लिये कितना रोते हैं; किन्तु भगवान्‌के लिये क्या कोई एक बूँद भी आँसू टपकाता है? उसके लिये रोओ, आँसू बहाओ, तब उसको पाओगे।

ठाकुर जब कभी बोलते थे समाधिम...

२२४—ईश्वरके पानेका उपाय केवल विश्वास है। जिसे विश्वास हो गया उसका काम बन गया।

२२५—भावके मकानमें चोरी न करो अर्थात् 'मुँहमें राम बगलमें छुरी' मत रक्खो।

२२६—ईश्वरके नाममें ऐसा विश्वास चाहिये कि मैंने उसका नाम लिया है, इससे अब मेरे पाप कहाँ? मेरे अब बन्धन कहाँ?

२२७—एक ईश्वर ही सबका गुरु है। चाँद मामा सबका मामा है।

२२८—मनुष्यगुरु कानमें मन्त्र फूँकते हैं और जगद्गुरु हृदयमें मन्त्र देते हैं।

२२९—'गुरु मिलैं अनेक, चेला मिलै न एक।'

२३०—साँप जैसे केंचुलसे अलग है, वैसे ही आत्मा देहसे अलग है।

२३१—पञ्चभूतके फंदेमें पड़कर ब्रह्म रोता है अर्थात् परमात्मा मायाके फंदेमें पड़कर जीव बनकर दुःख-भोग करता है।

२३२—धान जबतक सीझता नहीं तबतक उग सकता है। लेकिन एक बार भी सीझ जानेपर वह धान नहीं उगता। वैसे ही जो जीव एक बार ज्ञानाग्निमें पक गया, उसे फिर जन्म लेना नहीं पड़ता। जबतक अज्ञान है, तभीतक आना-जाना है।

२३३—दूसरेको मार डालनेमें ढाल-तलवारकी जरूरत पड़ती है, आत्महत्या तो एक आलपीनसे ही हो सकती है। वैसे ही अपनी मुक्ति आत्मज्ञानसे, केवल थोड़े ज्ञानसे ही हो सकती है, दूसरेको सिखानेमें बहुत ज्ञानका प्रयोजन है।

२३४—दूसरेको सिखानेके लिये व्याकुल मत हो । जिससे तुम्हें ज्ञान-भक्ति प्राप्त हो, ईश्वरके चरण-कमलमें मन लगे, वही उपाय करो ।

२३५—परनिन्दा और परचर्चा कभी मत करो । इससे आत्म-चर्चा और परमार्थ-चर्चामें बड़ा विघ्न होता है ।

२३६—'मानुष' दो तरहके हैं, एक वे, जिनके हृदयमें कुछ सार नहीं है, जो संसारमें डूबे हुए हैं और दूसरे 'मानहुंस' जिन्हें हुंस* या होश अर्थात् ईश्वर-ज्ञान है ।

२३७—किसी गाँवमें एक दरिद्र निष्ठावान् ब्राह्मण रहते थे । वह गाँवमें लोगोंके घर चण्डी-पाठ कर अपने दिन काटते थे । उनके एक कन्या थी । उसका नाम था सर्वमंगला । उसको अत्यन्त रूपवती देखकर दूसरे गाँवके एक जमींदार ब्राह्मणने उसे अपनी पुत्र-वधू बनाया । एक दिन चण्डी-पाठ करते-करते उन ब्राह्मणने मन-ही-मन प्रार्थना की कि 'माँ, मैं दरिद्र हूँ, इसलिये क्या तुम्हारी पूजा नहीं कर पाऊँगा ? क्या केवल धनवान् ही तुम्हारी पूजा कर सकते हैं ?' इस प्रकार ब्राह्मणके मनमें दुर्गा-पूजा करनेकी धुन सवार हुई और उन्होंने अपने मनका भाव ब्राह्मणीसे भी कहा । ब्राह्मणी सहमत हो गयी । ज्यों-त्यों करके एक वर्ष बीता, दोनों स्त्री-पुरुषने एक-एक पैसा बचाकर बारह रुपये इकट्ठे किये । पूजाका दिन समीप आया, ब्राह्मणने एक अठन्नी लेकर कुम्हारके घर जाकर कहा—'भाई ! यह अठन्नी लो और जैसी हो सके एक दुर्गाकी प्रतिमा गढ़ दो ।' कुम्हार बोला—'ब्राह्मणदेवता, आप

* बंगलामें 'हुंस' होशको कहते हैं ।

पागल तो नहीं हो गये हैं ? दुर्गा-पूजा करेंगे—ऐसी सामर्थ्य आपमें कहाँ है ?' ब्राह्मणने कहा—'आज एक वर्षसे मनमें सोच रहा हूँ कि माँके चरणोंमें गंगाजल और बिल्वदल दूँगा; भाई, इसमें सामर्थ्य-असामर्थ्यकी बात क्या है ? तुम अठन्नीमें जैसी प्रतिमा गढ़ सकते हो, गढ़ दो।' कुम्हार बोला—'अच्छा आप अठन्नी ले जाइये, मैं आपको एक प्रतिमा गढ़ दूँगा।' ब्राह्मणने कहा—'नहीं भाई, यह नहीं होगा। इसी आठ आनेमें जैसा हो सके तुम मेरे लिये एक प्रतिमा गढ़ दो।'

जब ब्राह्मणको किसी प्रकार राजी होते न देखा तो कुम्हारने अठन्नी लेकर एक अच्छी प्रतिमा बना दी। ब्राह्मणीने सर्वमंगलाको बुलानेके लिये कहा, पर ब्राह्मणदेवता राजी न हुए। उन्होंने सोचा कि मैं वैसी पूजा तो करता नहीं कि सम्बन्धियोंको निमन्त्रण भेजूँ, दूसरे सर्वमंगलाके घरके लोग बड़े आदमी हैं, और उनके घर भी जब पूजा हो रही है तो वे लोग उसे भेजेंगे ही कैसे ?

पञ्चमीके दिन ब्राह्मण प्रतिमाको घर ले आये। उसी समय ब्राह्मणीने आकर कहा—'अब क्या होगा, मैं तो आज रजस्वला हो गयी ! माँका कार्य कौन करेगा ?' ब्राह्मणने यह सुनते ही माथेपर हाथ रक्खा, वह कुछ स्थिर न कर सके कि क्या किया जाय। इतनेमें ब्राह्मणी बोली—'सर्वमंगलाको तो अब लाना ही होगा।' ब्राह्मणदेवता लाचार होकर सर्वमंगलाके घर गये, परन्तु उसके सास-ससुरने भेजा नहीं। ब्राह्मणने सर्वमंगलासे भेंट की; वह अपने बापकी विपद्का हाल सुनकर रोने लगी। पर कर ही क्या सकती थी, सास-ससुरकी आज्ञाके बिना वह कैसे जा सकती थी ? ब्राह्मण

उसको सान्त्वना दे लौटे आ रहे थे कि रास्तेमें उन्हें किसीने पीछेसे पुकारा—'पिताजी, पिताजी, मैं आ गयी !'

ब्राह्मणने पीछे फिरकर देखा तो सर्वमंगलाको दौड़ते हुए आते पाया। उनके आनन्दका पारावार न रहा। पास आनेपर उन्होंने पूछा—'क्यों सर्वमंगला, उन लोगोंसे पूछे बिना चली आयी, वे इससे नाराज तो नहीं होंगे ?' सर्वमंगलाने उत्तर दिया—'नहीं पिताजी, इसके लिये कोई भय नहीं।'

ब्राह्मणदेवता सर्वमंगलाको घर ले आये, ब्राह्मणी भी उसे देख अत्यन्त आनन्दित हुई।

सप्तमी और अष्टमीको माँकी पूजा हुई। नवमीके दिन प्रातः-काल सर्वमंगलाने पितासे पूछा—'पिताजी पूजामें ब्राह्मण-भोजन भी कराना होता है न ?' ब्राह्मण बोले—'नियम तो है, पर मैं धन कहाँसे लाऊँ ब्राह्मण-भोजनके लिये ? यदि माँकी दया हुई तो अगले वर्ष देखा जायगा।' सर्वमंगला बोली—'तो पिताजी मैं पड़ोसियोंको निमन्त्रण दे आती हूँ।'

ब्राह्मणने मना किया, परन्तु सर्वमंगला नहीं मानी, उसने पड़ोसियोंको प्रसाद पानेका निमन्त्रण दे ही डाला। यथासमय प्रसाद पानेके लिये दल-के-दल लोग पहुँच गये। मनुष्योंकी भीड़ देखकर ब्राह्मण देवता डर गये और सर्वमंगलाका नाना प्रकारसे तिरस्कार करने लगे। सर्वमंगला बोली—'पिताजी, डरते क्यों हैं ? मैं इन लोगोंको प्रसाद-भोजन करा दूँगी। जो माँ दुनियाभरको खिलाती है, वही आज तुम्हारे यहाँ उपस्थित है। तुम भय क्यों करते हो ? वह क्या इतने आदमियोंको भी न खिला सकेगी ?'

इतना कह सर्वमंगला बाहर आ निमन्त्रित मनुष्योंसे बोली—मेरे पिता दीन-दुखी हैं, वह आपलोगोंको भाँति-भाँतिके भोजन करानेकी सामर्थ्य नहीं रखते, केवल महाप्रसाद पानेके लिये आप-लोगोंको निमन्त्रित किया था, इसलिये आते जाइये और महाप्रसाद पाते जाइये।'

सर्वमंगलाने जैसे ही महाप्रसाद निकाला, उसमेंसे ऐसी सुमधुर सुगन्ध फूट निकली जैसी किसीने न कभी देखी थी, न सुनी थी। सर्वमंगलाने थोड़ा-थोड़ा प्रसाद सबको दिया, उसीसे सबकी तृप्ति हो गयी और सब प्रसाद पा आश्चर्य करते हुए अपने-अपने घर चले गये।

ब्राह्मणदेवता अबतक एकान्तमें भगवतीका स्मरण कर रहे थे। सब लोगोंके चले जानेके बाद उनकी आँखें खुलीं; वह सर्व-मंगलाको पुकारकर बोले—'क्या सब लोग शाप देकर चले गये?' सर्वमंगलाने उत्तर दिया—'शाप क्यों पिताजी! सभी तो प्रसाद-से परितृप्त होकर गये हैं, देखो न, अभी तो इतना प्रसाद बचा हुआ है कि गाँवके सभी आदमियोंको खिलाया जा सकता है। ब्राह्मणदेवता यह सुनकर प्रसन्न हुए और सर्वमंगलाकी प्रशंसा करने लगे।

दूसरे दिन विजयादशमी थी। ब्राह्मणदेवताने दही-चिउड़ा लाकर नेत्र मूँद भगवतीको चढ़ाया। पर आँख खोलते ही देखते हैं कि सर्वमंगला उसे पा रही है। ब्राह्मणदेवता क्रोधित हो ब्राह्मणीको पुकारकर कहने लगे—'देखो, अपनी लड़कीके काम तो देखो। क्या सर्वनाश कर रही है। कल भगवतीकी कृपासे

ब्राह्मणोंके शापसे रक्षा हुई, आज इसने प्रसादको उच्छिष्ट कर मुझे भगवतीके कोपका भाजन बनाया है।' सर्वमंगला यह सुन रोने लगी। उसको रोते देख ब्राह्मणी ब्राह्मणको शान्त कर फिर दही-चिउड़ा लाने गयी।

ब्राह्मणदेवताने पुनः दही-चिउड़ा माँको निवेदन किया, परन्तु फिर भी सर्वमंगलाने उसे जूठा कर दिया। तीसरी बार ब्राह्मणी दही-चिउड़ा ले आयी, परन्तु इस बार भी सर्वमंगलाने उसे जूठा कर दिया। यह देखकर ब्राह्मणदेवता अस्थिर हो गये और उन्होंने सर्वमंगलाको 'दूर हो यहाँसे'—कहकर वहाँसे हटा दिया।

सर्वमंगला रोती हुई ब्राह्मणीके पास गयी और बोली 'माँ! पिताजीने मुझे दूर हो जानेके लिये कह दिया है, इसलिये मैं जाती हूँ। आज तीन दिनोंसे मैंने कुछ भी नहीं खाया था, बहुत दूर जाना था और मुझे भूख भी बहुत लगी थी, इसीलिये मैंने दही-चिउड़ा खा लिया था। पिताजी इसीसे रंज हो गये। अच्छा, माँ, अब मैं विदा होती हूँ। ब्राह्मणी फिर दही-चिउड़ेका जुगाड़ कर रही थी परन्तु उसने पीछे फिरकर देखा कि सर्वमंगला नहीं है। वह सर्व-मंगलाको उच्च स्वरसे पुकारने लगी, पर सर्वमंगला तो चली गयी थी। सर्वमंगलाको न पाकर ब्राह्मणी व्याकुल हो उठी। ब्राह्मणने जब यह समाचार सुना तो सर्वमंगलाके लिये उनके भी प्राण रो उठे।

ब्राह्मणदेवता तुरन्त ही सर्वमंगलाकी ससुराल पहुँचे। सर्व-मंगला सब समाचार सुनकर अचरजमें डूब गयी और बोली—'पिताजी, तुम क्या कह रहे हो? मैं कब तुम्हारे घर गयी, कब मैंने दही-चिउड़ा खाया तथा कब तुमने मुझे दूर होनेके लिये

कहा ? मैं तो यह सब कुछ नहीं समझ रही हूँ । मैं तो जैसे यहाँ थी वैसे ही हूँ ।'

कन्याकी बात सुनकर ब्राह्मणदेवता अवाक् हो गये । माँकी सारी लीला अब उनकी समझमें आ गयी । वह अपनी छातीमें मुक्का मारकर बेहोश हो गिर पड़े । होश आनेपर अपनेको धिक्कारने लगे ! हाय, मैंने क्या किया, परम पदार्थ घरमें पाकर भी मैं उसे पहचान न सका ! हाय ! माँ, तुम मुझसे क्यों इस तरह वञ्चना करती हो ? मुझ अधमके घर यदि तुम दया करके आयी, पिता कह मुझे पुकारा, फिर माँ ! तुमने मेरी आँखें क्यों न खोल दीं जिससे मैं तुम्हारे नित्यरूपको देखकर कृतार्थ हो जाता ।

इस प्रकार पछताते हुए ब्राह्मणदेवता अपने घर पहुँचे और उन्होंने सारा हाल ब्राह्मणीको सुनाया । ब्राह्मणी भी माँकी इस लीलाको जानकर चकित हुई और पछताने लगी ।

२३८—मायाको कोई नहीं देख सकता । एक बार नारदजी-ने प्रभुसे प्रार्थना की—'नाथ ! अपनी अघटनघटनापटीयसी माया मुझे दिखला दो ।' प्रभु बोले—'तथास्तु' । पीछे एक दिन नारदको साथ लेकर भगवान् घूमने निकले । बहुत दूर जानेपर भगवान्को प्यास लगी, जिससे वह व्याकुल हो बैठ गये और नारदजीसे बोले—'नारद ! जहाँसे भी हो सके, थोड़ा जल लाकर मुझे पिलाओ ।

नारदजी शीघ्र ही जलकी खोजमें निकले । कुछ दूर जानेपर उन्हें एक नदी दिखलायी पड़ी । नारदजीने वहाँ एक परम सुन्दरी युवतीको बैठे देखा । उसके रूपको देखकर नारदजी मोहित हो

गये। समीप पहुँचते ही वह स्त्री नारदजीसे प्रेमालाप करने लगी। थोड़ी ही देरमें दोनोंमें प्रेम-प्रणय हो गया। नारदजी उसे लेकर वहीं नदीके किनारे गृहस्थी करने लगे। क्रमशः नारदजीको उस सुन्दरीसे अनेक बालक-बालिकाएँ उत्पन्न हुईं। नारदजी आनन्द-पूर्वक बाल-बच्चोंमें दिन काटने लगे। कुछ ही दिनोंके उपरान्त वहाँ महामारीका प्रकोप हुआ, जहाँ-तहाँ लोग मरने लगे। नारद-जीके सब बाल-बच्चे तथा उनकी स्त्री भी उसीमें मर गयी। नारद-जी बड़े दुखी हुए और सिरपर हाथ रख शोकसे विह्वल हो फूट-फूटकर रोने लगे। उसी समय भगवान्‌ने सामने उपस्थित हो उनसे पूछा—'नारद! जल कहाँ है और तुम रो क्यों रहे हो?' नारदजी भगवान्‌का दर्शन पा होशमें आये, वह बड़े ही विस्मित हुए और सब रहस्य समझकर बोले—'प्रभो! तुम्हें नमस्कार और तुम्हारी प्रबल मायाको नमस्कार!'

२३९—जनताको न भला कहते देर लगती है और न बुरा कहते। इसलिये जनताकी बातपर ध्यान न देना ही ठीक है।

२४०—एक शैव था। उसकी भक्तिके जोरसे भगवान् शूलपाणि उसको दर्शन देकर बोले—'देखो भाई, तुमने भक्तिके बलसे मेरा दर्शन पाया है परन्तु जबतक कमलापति हरिके प्रति तुम्हारा द्वेष-भाव नहीं जायगा, तबतक मैं तुमपर प्रसन्न नहीं होऊँगा। इस बातको शैव सिर नीचा किये सुनता रहा। शिव भगवान् चले गये और शैव फिर साधना करने लगा। उसने अपनी कठिन तपस्यासे भगवान् शङ्करको विचलित कर दिया, जिससे उन्हें फिर आकर दर्शन देना पड़ा। परन्तु इस बार शिवजी आधी हरि और आधी हरकी मूर्त्तिसे उसके निकट आविर्भूत हुए।

शैव हरकी आधी मूर्त्ति देखकर आनन्दित और हरिकी शेष आधी मूर्त्ति देख दुःखित हुआ। उसने हरकी मूर्त्तिके चरणोंकी तो श्रद्धापूर्वक पूजा की, पर हरिकी मूर्त्तिके चरणोंको छूना तो दूर रहा, उसकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा। भगवान् शूलपाणि बोले—'देखो! तुम्हारी मनोकामना तो पूरी होगी, पर हरिसे द्वेष करनेके कारण तुम्हें अनेक कष्ट भोगने पड़ेंगे। मैंने तुम्हें अपनी हरि-हर मूर्त्ति इसीलिये दिखलायी कि हरिमें और मुझमें अभिन्नता है परन्तु तुम्हारी समझमें यह बात नहीं आयी।' इतना कह शिवजी अन्तर्धान हो गये।

शैवने आकर एक गाँवमें वास किया। धीरे-धीरे गाँववाले उसके भावसे परिचित हो गये। अन्तमें यह हाल हुआ कि उसे देखते ही गाँवके सभी लोग 'हरि-हरि' कहकर ताली बजाने लगे। शैवने निरुपाय होकर दोनों कानोंमें दो घण्टे लटका लिये। जैसे ही लड़के 'हरि-हरि' बोलते, वह दोनों कानोंके घण्टोंको जोर-जोरसे बजाने लगता। उनके शब्दसे उसे हरि-नाम सुनायी नहीं पड़ता था। वह शैव घण्टाकर्णके नामसे प्रसिद्ध हो गया।

अपने इष्टदेवकी मूर्तिपर तो निष्ठा रखनी चाहिये, पर अन्यान्य मूर्तियोंको भी अपने ही इष्टदेवके विभिन्न रूप समझना और सबमें श्रद्धाभाव रखना चाहिये। द्वेषभावका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये। नहीं तो इष्टसिद्धि हो जानेपर भी घण्टाकर्णके समान दुःखी जीवन व्यतीत करना होगा।

२४१—एक दिन गोपालका कोई संवाद न पा यशोदा माता-ने प्रेममयी श्रीराधिकाजीसे जाकर पूछा—'राधे! तुझे मेरे गोपाल-

की कुछ खबर है ?' राधा उस समय अपने भावमें थी, अतएव यशोदाजीकी बात न सुन सकी। पीछे जब ध्यान टूटा तो सामने यशोदाजीको देखकर राधाने पूछा—'आप क्यों आयी हैं ?' यशोदाने अपने आनेका कारण बतलाया। राधा बोली—'माँ ! तुम आँख मूँदकर ज्यों ही गोपालके रूपका ध्यान करोगी त्यों ही वह तुम्हें दिखलायी देंगे।' यशोदाजीके आँख मूँदते ही भावमयी राधिकाने उन्हें भावसे अभिभूत कर दिया। यशोदाजीने भावावेशमें आ श्रीगोपालका दर्शन किया। तब श्रीयशोदाजीने श्रीराधिकासे वरदान माँगा कि, 'माँ ! मुझे ऐसा वरदान दो जिससे मैं आँखें मूँदते ही गोपालको देख सकूँ।'

२४२–शिष्य 'गुरु-गुरु' कहकर नदी-पार हो गया। गुरुने यह देखकर सोचा—'वाह ! मेरे नाममें इतना बल है, इसे मैं पहले नहीं जानता था।' दूसरे दिन गुरु 'मैं-मैं' कहते हुए नदी पार करने गये। परन्तु दो-चार बार कहते ही अगाध जलमें चले गये और अपनेको सँभाल न सकनेके कारण डूब गये। विश्वास और अहङ्कारके ये ही परिणाम होते हैं।

२४३–समुद्रका जल पीकर जैसे बुद्धिमान् मनुष्य उसमें नमकके अस्तित्वको समझ जाते हैं, वैसे ही इस ब्रह्माण्डको देखकर ब्रह्माण्डपति प्रभुका अस्तित्व समझा जा सकता है।

२४४–स्वप्नावस्था तथा जाग्रदवस्थाके विषयमें परमहंस रामकृष्णदेव एक कहानी कहा करते थे। एक मनुष्य था। उसे कोई नौकरी नहीं मिलती थी, इससे उसकी स्त्री सर्वदा उसका तिरस्कार किया करती थी। एक दिन उसका लड़का रोगग्रस्त

होकर मर गया। घरके सभी लोग रो रहे थे। उसी समय वह कागज़-लत्ता पहन घरसे निकलकर चला गया। घरके सभी मनुष्य लड़केकी मृत्युके शोकसे कातर हो रहे थे, इसलिये किसीने उनके जानेपर ध्यान नहीं दिया। इसके बाद जब सबका दुःख कुछ कम हुआ तो उसका पता लगाने लगे और पता न पाकर घबड़ाने लगे। इतनेमें सबने देखा कि वह चपकन पहने आफिससे आ रहा है। उसकी स्त्री यह देख झुँझलाकर उससे बोली—'तुम कहाँ गये थे?' उसने उत्तर दिया—'क्यों, नौकरीकी खोजमें गया था!' स्त्रीने सुनकर कहा—'अजी, तुम कैसे आदमी मालूम होते हो? क्या तुम्हारे मनमें कुछ भी दया-माया नहीं है? तुम्हारा चाँद-सा मुखवाला लड़का मर गया, इसका तुम्हारे हृदयमें कुछ भी दुःख न हुआ!' वह हँसकर बोला—'देखो, एक दिन मैंने स्वप्नमें देखा कि मुझे सात पुत्र हुए हैं और मैं उन लोगोंको बहुत ही लाड़-प्यार करता हुआ आनन्द लूट रहा हूँ। उसी अवस्थामें मेरी नींद टूट गयी और मैं उन्हें फिर न देख सका। परन्तु उनके लिये मुझे कहाँ कुछ भी दुःख हुआ?'

२४५–जैसे किसीके घरमें रहनेपर उसका भाड़ा देना पड़ता है, वैसे ही इस शरीरमें रहनेपर इसका भी भाड़ा देना पड़ेगा। रोग, शोक, पीड़ा इस शरीररूपी घरका भाड़ा है।

२४६–पहले संसार करके पीछे भगवान्‌की प्राप्तिकी इच्छा करते हो; ऐसा न करके पहले भगवान्‌को लेकर पीछे संसार करनेकी इच्छा क्यों नहीं करते? इससे बहुत सुख पाओगे।

२४७–*प्रश्न*—एक मन कैसे होता है?

उत्तर—चालीस सेरका एक मन होता है। अर्थात् चालीस ओर बिखरी हुई चिन्ताराशिको एकत्रित करनेसे ही एक मन होता है।

२४८–प्रश्न—सात्त्विक ध्यान कैसे किया जाता है?

उत्तर—रातको मसहरीके अंदर बैठकर एक साधक ध्यान कर रहा है; बाहरके लोग समझते हैं कि मच्छरोंसे बचनेके लिये वह मसहरीके अंदर सोया है। सात्त्विक साधकमें बाहरी दिखौआ भाव तनिक भी नहीं रहता।

२४९–प्रश्न—ध्यान-सिद्ध किसे कहते हैं?

उत्तर—जो ध्यानमें बैठते ही भगवान्‌के भावमें निमग्न हो जाते हैं, उन्हींको ध्यान-सिद्ध कहते हैं। उन्हें तो मुक्ति मिलनी ही चाहिये।

२५०–जो मूर्ख वासनाके रहते गेरुआ वस्त्र धारण करता है, उसका यह लोक और परलोक दोनों नष्ट हो जाते हैं।

२५१–वीर पुरुष जैसे सिरपर भारी बोझा लिये हुए भी दूसरी ओर देख सकते हैं, वैसे ही वीर साधक इस संसारका बोझ सिरपर उठाकर भी भगवान्‌की ओर निहारते रह सकते हैं।

२५२–धर्माचरण बलात् नहीं कराया जा सकता। धर्म-पिपासा जाग्रत् होनेपर जीव स्वयं व्याकुल हो धर्मान्वेषण करता है और वैसे आचरणमें प्रवृत्त होता है। धर्म-साधन कर्त्तव्य है, यह बात उसको स्मरण नहीं करानी पड़ती।

२५३–विषयासक्ति जितनी ही घटेगी, ईश्वरके प्रति प्रेम भी उतना ही बढ़ता जायगा।

२५४–देहको चाहे जितना सुख-दुःख हो, भक्त उसका ख़याल नहीं करते; उनकी वृत्ति तो भक्तिके ऐश्वर्यमें लगी रहती है। वे उस ऐश्वर्यमें निरन्तर सराबोर रहते हैं। देखो, पाण्डवोंपर कितनी विपदा आयी, पर उनका ध्यान भगवान्‌की ओरसे नहीं हटा।

२५५–तत्त्वज्ञान प्राप्त होनेपर मनुष्यका पूर्व-स्वभाव बदल जाता है।

२५६–श्रीमती राधा जब सहस्र छेदवाला घड़ा लेकर पानी भर लायीं और एक बूँद भी जल नहीं गिरा, तब सभी यह कहकर उनकी प्रशंसा करने लगे कि 'ऐसी सती अब और न होगी।' इसपर श्रीमती राधाजीने कहा—'तुमलोग मेरी जय क्यों बोलते हो? कहो—श्रीकृष्णकी जय! श्रीकृष्णकी जय!!'

२५७–अहल्याने कहा था—'हे राम! यदि शूकर-योनिमें जन्म दो तो मुझे वह भी स्वीकार है। परन्तु तुम्हारे चरण-कमलोंमें मेरी श्रद्धा-भक्ति बनी रहे, मैं और कुछ भी नहीं चाहती।'

२५८–प्रश्न–माँ काली कितने भावोंसे लीला करती हैं?

उत्तर–वह अनेक भावोंसे लीला करती हैं। वही महाकाली हैं, वही नृत्यकाली, श्मशानकाली, रक्षाकाली और श्यामाकाली हैं। महाकाली और नृत्यकालीकी कथा तन्त्रमें है। जब सृष्टि नहीं हुई थी, जिस समय चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र कुछ भी नहीं थे, घोर अन्धकार था, उस समय निराकारा माँ महाकाली महाकालके साथ

विराज रही थीं। श्यामाकाली अनेक कोमल भावोंसे युक्त अभय वर देनेवाली हैं, गृहस्थोंके घरमें इन्हींकी पूजा होती है। जब महामारी, दुर्भिक्ष, भूकम्प, अतिवृष्टि तथा अनावृष्टि होती है, तब श्मशानकालीकी संहारमूर्त्ति शव, शिवा, डाकिनी, योगिनियोंके बीच श्मशानपर रहती है। वह कपोलोंपर रुधिरधारा, गलेमें मुण्डमाला, कमरमें मनुष्योंके हाथकी माला बाँधे रहती हैं।

२५९—स्वामीके जीते-जी जो स्त्री ब्रह्मचर्य धारण करती है, वह नारी नहीं है, वह तो साक्षात् भगवती है।

२६०—जिसने एफ० ए०, बी० ए० आदि जितने पास किये, उसके उतने ही पाश (बन्धन) बढ़ गये।

२६१—लक्ष्मणजीने एक बार श्रीरामचन्द्रजीसे पूछा—'हे प्रभु! यह कैसे आश्चर्यकी बात है कि इतने बड़े ज्ञानी वशिष्ठ मुनि भी पुत्रशोकसे अधीर हो रोने लगे?' श्रीरामजी बोले—'जिसको प्रकाशका ज्ञान है, उसको अन्धकारका भी ज्ञान रहता है। जिसको ज्ञान है उसको अज्ञान भी है। पर वशिष्ठ मुनि ज्ञान-अज्ञान, पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म, शुचि-अशुचिसे पार हो गये हैं।'

२६२—श्रीकृष्णकिशोरजी एक परम निष्ठावान् सदाचारी ब्राह्मण थे, वह वृन्दावन गये। एक दिन वहाँ घूमते-घूमते उनको बड़ी प्यास लगी। वह एक कुएँके निकट जा पहुँचे। वहाँ एक मनुष्य पानी भर रहा था। उससे उन्होंने कहा—'अरे! तू मुझे एक लोटा जल दे सकता है?' वह बोला—'ब्राह्मणदेवता, मैं अति नीच जाति मोची हूँ, कैसे पानी दूँ?' श्रीकृष्णकिशोरजीने कहा—'तू 'शिव, शिव' कहकर जल दे दे। भगवान्का नाम लेनेसे मनुष्यका तन-मन सब शुद्ध हो जाता है।'

२६३–प्रेम होना बहुत कठिन बात है। श्रीचैतन्यदेवको प्रेमकी प्राप्ति हुई थी। मनुष्य ईश्वरका प्रेम प्राप्तकर सब बाह्य वस्तुओंको भूल जाता है। जगत्‌का खयाल उसको नहीं रहता। यहाँतक कि सबसे प्रिय अपने शरीरको भी मनुष्य भूल जाता है। जब ऐसी अवस्था आये तब समझना चाहिये कि प्रेम प्राप्त हुआ है।

२६४–रुपये-पैसेका अहङ्कार नहीं करना चाहिये। यदि कहो कि, 'मैं धनी हूँ' तो तुमसे भी बड़े-बड़े धनी संसारमें भरे पड़े हैं। सन्ध्याके उपरान्त जब जुगनू उड़ते हैं तो वे समझते हैं कि हम ही इस जगत्‌को रोशनी देते हैं; पर ज्यों ही तारे उगते हैं उनका अभिमान चला जाता है। फिर तारे समझते हैं कि हम ही जगत्‌को रोशनी देते हैं, किन्तु पीछे चाँदके उगते ही वे सब शर्माकर मन्द पड़ जाते हैं। फिर चन्द्रमा समझते हैं कि मेरे प्रकाशसे ही जगत् प्रकाशित हो रहा है। देखते-ही-देखते अरुणोदय होता है और चन्द्रमा भी मलिन हो धीरे-धीरे अदृश्य हो जाते हैं। धनी लोग यदि इसपर विचार करें तो उनका धनका अभिमान दूर हो जाय।

२६५–ऊँट काँटे खाता है और खाना पसंद करता है, पर जितना ही खाता है, उतना ही काँटे उसके मुँहमें चुभकर उसे कष्ट देते हैं, परन्तु वह काँटे खाना नहीं छोड़ता, खाता ही जाता है। बद्ध जीवोंकी भी यही दशा है। वे इस संसारमें नाना प्रकारकी यातनाएँ सहते हैं, तो भी उसमें लगे ही रहते हैं। स्त्री मर जाती है तो फिर ब्याह करते हैं। पुत्रकी मृत्युपर दुःखसे बहुत ही व्याकुल हो जाते हैं, परन्तु पीछे सब भूलकर फिर उसी जंजालमें रत होते हैं।

२६६—बद्ध जीव यदि तीर्थमें जाता है तो भी वह ईश्वर-चिन्तनका अवसर नहीं पाता। केवल परिवारवालोंकी ही मोटरी ढोते-ढोते उसकी जान जाती है। भगवान्‌के मन्दिरमें भी जाकर वह केवल लड़केको ही प्रणाम कराने तथा चरणामृत पिलानेमें व्यस्त रहता है।

२६७—एक मनुष्य बोला—'प्रभु तो *'अवाङ्मनसगोचरम्'* हैं, उन्हें कोई कैसे जान सकता है?' श्रीपरमहंसदेवजी बोले—'वह इस मनके अगोचर हैं, परन्तु शुद्ध मनके गोचर हैं। इसी प्रकार इस बुद्धिके वह अगोचर हैं, पर शुद्ध बुद्धिके गोचर हैं।'

२६८—नौकापर चढ़ा हुआ मनुष्य सामने बाढ़ आते देखकर डरके मारे कातर हो भगवान्‌से प्रार्थना करता है—'हे दीनबन्धु! मेरी रक्षा करो, रक्षा करो।' किन्तु जब उसे पार कर जाता है तो वही मनुष्य 'जा साला' कहकर निश्चिन्त हो जाता है। यही दशा बद्ध जीवोंकी है। वे जब विपद्‌में पड़ते हैं तो कातर हो कितनी प्रार्थना करते हैं, किन्तु विपद् चली जानेपर तुरन्त सब भूल जाते हैं।

२६९—जयपुरके गोविन्दजीके पुजारी पहले ब्याह नहीं करते थे; तब उनके खूब तेजस्वी भाव भी थे। एक बार राजाने उनको बुला भेजा, परन्तु वह नहीं गये। उन्होंने उत्तर दिया, 'राजाको ही यहाँ आनेके लिये कहो।' इसके बाद राजाने प्रबन्ध करके उनका विवाह करा दिया। तब तो राजाको भेंट करनेके लिये उनको फिर बुलाना न पड़ा। वह स्वयं राजाके पास आशीर्वाद देने जाने लगे। देवताको चढ़ायी हुई माला पहुँचाने लगे।

उनको ऐसा करनेके लिये बाध्य होना पड़ा था। क्योंकि आज उन्हें घर बनानेकी जरूरत पड़ती तो कल पुत्रके अन्नप्राशनकी और तीसरे दिन लड़केके विद्यारम्भकी। इनके लिये तो पैसा चाहिये था, लाचार होकर वह दीन-भावसे राजाके यहाँ पहुँचते थे। प्रपञ्चमें मनुष्यका आत्मपतन हो ही जाता है।

२७०—घरके एक मनुष्यको कोई चाचा, कोई मामा, कोई मौसा कहकर पुकारता है; किन्तु वह मनुष्य समझता है कि सब मुझे ही पुकारते हैं। भगवान्‌को भी चाहे जिस नामसे पुकारो, वह समझते हैं कि उन्हींको पुकारा जाता है।

२७१—रावणवधके बाद रामचन्द्रको देखकर जब बूढ़ी निकषा भागने लगी तो लक्ष्मणजीने कहा—'महाराज! यह निकषा इतनी बूढ़ी हो गयी है और इसे इतना पुत्रशोक हुआ है, फिर भी यह प्राणभयसे भाग रही है। कैसा आश्चर्य है।' श्रीरामचन्द्रजीने निकषाको निकट बुला अभयदान देते हुए उसके भागनेका कारण पूछा। निकषा बोली—'राम! इतने दिन जीकर आपकी इतनी लीला देख सकी हूँ, तभी तो और अधिक जीनेकी लालसा हो रही है जिससे आपकी और लीला देख सकूँ। यही कारण है कि मैं प्राण बचानेकी चेष्टामें भाग रही हूँ।'

२७२—जब भीष्मपितामह शरीर त्याग करनेके लिये शरशय्यापर पड़े हुए थे, तब एक दिन उनकी आँखोंसे अश्रु बह निकले। यह देखकर अर्जुनने श्रीकृष्णसे पूछा—'हे भगवन्! कैसे आश्चर्यकी बात है कि पितामह भी, जो सत्यवादी, जितेन्द्रिय, ज्ञानी तथा अष्टवसुओंमेंसे एक वसु हैं, देह-त्यागके समय मायासे रो रहे हैं?'

श्रीकृष्णके पूछनेपर श्रीभीष्मपितामह बोले—'हे कृष्ण ! तुम अच्छी तरह जानते हो कि मैं क्यों रोता हूँ । मैं इसलिये रो रहा हूँ कि तुम स्वयं भगवान् जिन पाण्डवोंके सारथी हो, उनके भी दुःख और विपदाओंका अन्त नहीं है । तुम बड़े विलक्षण हो । तुम्हारा कार्य कुछ समझमें नहीं आता ।'

२७३–अहङ्कार करना व्यर्थ है । जीवन, यौवन कुछ भी यहाँ नहीं रहेगा, सब तीन दिनका सपना है । एक मतवालेने एक दुर्गाकी मूर्त्तिकी सजावटको देखकर कहा था—'माँ ! चाहे जितना सजो-सजाओ, तीन दिन बाद तुम्हें खींचकर सब गंगाजलमें फेंक देंगे ।'

२७४–मुन्नू खिलौना खरीदनेके लिये माँका आँचल पकड़कर पैसा माँगता है । माँ उस समय दूसरे लड़केके साथ बात करने लगती हैं । वह किसी प्रकार पैसा देना नहीं चाहतीं । कहती हैं—'तुम्हारे पिता मना कर गये हैं । चुप रहो, नहीं तो वह आवेंगे तो मैं कह दूँगी कि मुन्नू शरारत करता था ।' परन्तु जब मुन्नू किसी प्रकार नहीं मानता और रोना शुरू करता है तब माँ सब लड़कों-को छोड़कर पैसा निकालकर उसको दे ही देती हैं । माँसे रोकर भक्ति माँगोगे तो वह जरूर देंगी । इसमें जरा भी शक नहीं है ।

२७५–गंगाके किनारे जाकर गंगाजल स्पर्श कर कहते हो कि 'गंगाजीका दर्शन-स्पर्शन कर आये ।' परन्तु तुम्हें हरिद्वारसे लेकर गंगासागरतक समस्त गंगाका स्पर्श नहीं करना होता । तथा जिस प्रकार सागरके समीप जाकर थोड़े जलका स्पर्श किया जाय तो सागरका स्पर्श हो जाता है, उसी प्रकार अवतारके दर्शनसे भगवान्‌का दर्शन हो जाता है ।

२७६–किसी मनुष्यने अपने एक मित्रको एक पत्र लिखा कि पाँच सेर मिठाई और एक धोती भेज दो। वह पत्रको पढ़कर पाँच सेर मिठाई और एक धोतीका स्मरण कर उन्हें खरीदनेके लिये बाजार चला। पत्रको फेंक दिया, क्योंकि उसकी आवश्यकता अब नहीं रह गयी थी। शास्त्रादिका पाठ भी ऐसा ही होना चाहिये।

२७७–एक अन्धे मनुष्यने तपस्या करके भगवतीको सन्तुष्ट किया। भगवतीने सामने उपस्थित होकर कहा—'वर माँगो।' वह बोला—'माँ, यदि वर देना चाहती हो तो यह वर दो कि मैं नातीके साथ सोनेकी थालीमें देखकर भात खाऊँ।' अर्थात् उसने एक ही वरमें स्त्री, पुत्र, पौत्र, ऐश्वर्य, आँख सभी कुछ माँग लिया। इसीका नाम है पटवारीकी बुद्धि।

२७८–ज्ञानोन्माद होनेपर कर्त्तव्य फिर कर्त्तव्य नहीं रह जाता। उस अवस्थामें भगवान् उसका भार ले लेते हैं। जैसे जमींदार जब नाबालिग लड़का छोड़ मर जाता है तो सरकार उस नाबालिगका भार अपने ऊपर ले लेती है।

२७९–'ईश्वर हैं' इस बातका जिसको ठीक बोध हो गया, वह फिर सांसारिक मायामें नहीं रह सकता।

२८०–परमहंसदेव कहते थे कि बृहस्पतिवारके शेषमें कोई काम नहीं करना चाहिये।

२८१–पुस्तकें हजार पढ़ो, मुखसे हजार श्लोक कहो, पर व्याकुल होकर उसमें डुबकी लगाये बिना उसे पा न सकोगे।

२८२–जबतक 'मैं और तुम'—यह द्वैतज्ञान है तबतक माया है। द्वैतज्ञान नष्ट हो जाता है, केवल एक ज्ञान रह जाता है

वही ज्ञान ठीक है। अर्थात् तभी समझना चाहिये कि ब्रह्ममें स्थिति हुई है।

२८३—गाड़ीमें घोड़ेकी आँखोंपर जबतक दोनों ओरसे दो टोपनी नहीं दी जाती तबतक घोड़ा अग्रसर हो ठीक रास्ते नहीं चल सकता। उसी प्रकार पहले यदि वृत्तियाँ नहीं रोकी जायँगी तो मनरूपी अश्व ईश्वरकी ओर अग्रसर नहीं हो सकता।

२८४—शास्त्र कितना पढ़ोगे? केवल विचार करते रहनेसे क्या होगा? पहले ईश्वरको प्राप्त करनेकी चेष्टा करो। गुरु-वाक्यमें विश्वास करके कुछ कर्म करो। गुरु न हों तो भगवान्के पास व्याकुल प्राणसे प्रार्थना करो। वह कैसे हैं, यह उन्हींकी कृपासे मालूम हो जायगा।

२८५—जंगलमें बन्दर जाड़ेके दिनोंमें लाल फूल जमा करके उसके चारों ओर बैठकर आग तापते हैं। फूलके लाल रंगको वे अग्निका उत्ताप समझते हैं और उससे गर्म होनेकी आशा करते हैं, पर उनकी आशा पूर्ण नहीं होती। उसी प्रकार सांसारिक पुरुष भी धन-मान-विषयादि असार वस्तुओंका संग्रह कर सुखकी आशा करते हैं, परन्तु वे चीजें किसी प्रकार भी सुख नहीं दे सकतीं।

२८६—एक कीड़ा होता है जो अनेकों बच्चे उत्पन्न करता है। पर जब वह उन सबको आहार नहीं पहुँचा सकता तो अपना शरीर खानेके लिये उपस्थित करता है और बच्चे उसे खाने लगते हैं। इस प्रकार उस कीड़ेकी मृत्यु हो जाती है। सांसारिक मनुष्य भी इसी प्रकार अपने बाल-बच्चोंका लालन-पालन करते-करते अपने शरीरका रक्त दे देनेपर भी निस्तार नहीं पाते और नाना प्रकारकी यन्त्रणा भोगते हुए अन्तमें मारे जाते हैं।

२८७—एक मेंढकके पास उसके बिलमें एक रुपया था। एक हाथी उस बिलको लाँघकर चला गया। इसपर वह मेंढक बाहर निकलकर रंज प्रकट करने लगा और हाथीकी ओर ताककर जमीनपर लात मारते हुए कहने लगा—'इतनी शक्ति हो गयी कि मुझे लाँघकर चला जा रहा है!' रुपया होनेसे मनुष्यको ऐसा ही अहङ्कार होता है।

२८८—ब्रह्म-समाजके एक व्यक्तिको संकीर्तन करते समय चट हाथ उठाकर नाचते देख परमहंसदेवने कहा—'देखो, इसीको कीर्तनका नशा कहते हैं!'

२८९—शीशेमें मसाला लगा हुआ रहनेसे उसमें फोटो (चित्र) उठता है; वैसे ही जिसके मनमें ब्रह्मचर्यरूप मसाला लगा हुआ है उसमें ईश्वर चमकता है।

२९०—भगवान् तीन बार हँसता है। एक तो तब जब कोई राजा दूसरे राजापर उसका राज-पाट छीन लेनेके लिये चढ़ाई करता है। वह यही समझकर हँसता है कि देखो तो, किसका राज और कौन छीनता है? दूसरे ... हँसता है जब भाई-भाईमें हिस्से-बँटवारेका झगड़ा होता है। एक भाई रस्सीसे जमीन नापकर कहता है, यह एक हाथ तेरी और इतनी मेरी है। उस समय वह यह समझकर हँसता है कि, सारा संसार तो हमारा है, लेकिन देखो तो, ये किस तरह आपसमें बँटवारा कर रहे हैं। तीसरे उस समय हँसता है जब किसी बच्चेके प्राण रोगसे सङ्कटमें पड़ जाते हैं—माँ-बाप सब छाती पीट रोने लगते हैं, किन्तु वैद्य-डाक्टर कहते हैं—'कुछ डर नहीं, हम इसे चंगा कर देंगे।' तब

वह यह समझकर हँसता है कि, अगर मैं इसे मार डालूँ तो किसकी मजाल है कि इसकी रक्षा करे ?

२९१–जो हविष्य भोजन करता है, पर उसका मन ईश्वरमें नहीं लगा है, उसका यह हविष्य व्यर्थ है; और जो कदन्न भोजन करता है, पर उसका मन भगवान्‌में लगा है, उसके मनमें भक्ति है, उसके उस आहारको हविष्यान्न समझना चाहिये ।

२९२–लड़केका स्वभाव है वह बदनमें कीचड़ लपेटता है, किन्तु माता उसे उसी तरह रहने नहीं देती । देखते ही वह धो-धाकर साफ कर देती है । वैसे ही भगवान् जीवको पापमें लिपटा रहने नहीं देता । वह दयाकर झट उसका उद्धार कर देता है ।

२९३–शास्त्र पढ़कर मनुष्यका ईश्वरको समझाना और काशीका चित्र देखकर काशीनगरीको समझाना एक ही बात है ।

२९४–पहरेवाले सिपाहीके हाथमें जो लालटेन रहती है उसीकी रोशनीसे वह सबको देख लेता है । किन्तु अपनी इच्छासे जबतक वह लालटेनकी रोशनी अपने मुँहके पास न ले जाय तबतक उसे कोई नहीं देख सकता । वैसे ही भगवान् सबको देखता है; किन्तु वह अपनी इच्छासे जबतक किसीको दिखायी नहीं देता तबतक कोई उसको देख या पहचान नहीं सकता ।

२९५–पृथ्वीपर माता यथासमय सन्तानको बुलाकर खिलाती है । माँ आनन्दमयी भी यथासमय स्वर्गका अमृत पिलानेके लिये पुकार रही है । हे मानव ! आँखें खोलकर देख ।

२९६—साधकको ध्यानके समय बीच-बीचमें एक प्रकारकी (निश्चिन्त) निद्रा मालूम होती है; उसीका नाम योगनिद्रा है। उसी अवस्थामें अनेकों साधक भगवान्‌के रूपका दर्शन पाते हैं।

२९७—गुरुके मुखसे मन्त्रोपदेश प्राप्त कर उस मन्त्रके जप-द्वारा क्रमशः शुद्ध-चित्त हो जो सिद्धि-लाभ करते हैं उन्हें मन्त्र-सिद्ध कहते हैं।

२९८—वेदान्तवादी कहते हैं कि आत्मा निर्लिप्त है। सुख-दुःख, पाप-पुण्य ये सब आत्माका कुछ भी नहीं कर सकते। पर देहाभिमानी मनुष्योंको कष्ट दे सकते हैं। जैसे धुआं दीवालको मैला कर देता है परन्तु आकाशका कुछ नहीं कर सकता।

२९९—प्रश्न—माया और दयामें क्या अन्तर है ?

उत्तर—माँ-बाप, भाई-भगिनी, स्त्री-पुत्र इत्यादि आत्मीय जनोंके प्रति आसक्तिको ही माया कहते हैं और दयाका अर्थ है सर्व भूतोंको एक समान प्यार करना।

३००—पूर्व-दिशाकी ओर जितना ही चलोगे, पश्चिम दिशा उतनी ही दूर होती जायगी। इसी प्रकार धर्म-पथपर जितना ही अग्रसर होगे, संसार उतनी ही दूर पीछे छूटता जायगा।

३०१—कलियुगमें नारदीय भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ तथा सार वस्तु है।

श्रीमद्भगवद्गीता

गीता-शांकरभाष्य सरल हिन्दी-अनुवादसहित, सचित्र ... २॥)
पक्की जिल्द ... ... २॥।)

गीता-मूल, पदच्छेद, अन्वय और साधारण भाषाटीकासहित, सचित्र, सजिल्द ... ... १।)

गीता-गुजराती टीका (हिन्दी टीका १।) वालीकी तरह) सचित्र सजि० १।)

गीता-मराठी टीका (,, ,,) ,, ,, १।)

गीता-बंगला टीका (हिन्दी टीका ॥ﺭ) वालीकी तरह) ,, ॥।)

गीता-प्रायः सभी विषय १।) वालीके समान, मझली साइज, मूल्य ॥ﺭ) सजिल्द ... ... ॥।=)

गीता-श्लोक, साधारण भाषाटीकासहित, मोटा टाइप, सचित्र, मूल्य ॥) सजिल्द ... ... ॥ﺭ)

गीता-केवल मूल, मोटे अक्षरवाली, सचित्र, मूल्य ।-) सजिल्द ।ﺭ)

गीता-केवल भाषा, इसमें श्लोक नहीं हैं। अक्षर मोटे हैं, एक चित्र, मूल्य ।) सजिल्द ... ... ।=)

गीता-साधारण भाषाटीका, पाकेट-साइज, सभी विषय ॥) वालीके समान, मूल्य =)॥ सजिल्द ... ... ﺭ)॥

गीता-मूल ताबीजी साइज २×२॥ इञ्च सजिल्द ... =)

गीता-मूल, विष्णुसहस्रनामसहित, सचित्र, सजिल्द ... -)॥

गीता-७॥×१० इञ्च साइजके दो पन्नेमें सम्पूर्ण ... -)

गीता-दूसरा अध्याय अर्थसहित ... ...)।

गीता-सूची (Gita-List) अनुमान २००० गीताओंका परिचय मू० ॥)

पता—गीताप्रेस, गोरखपुर

नोट-इनके अतिरिक्त और भी धार्मिक अच्छी-अच्छी पुस्तकें तथा चित्र मिलते हैं। विशेष जानकारीके लिये दोनोंका बड़ा सूचीपत्र मुफ्त मँगवाइये।

भक्तोंके चरित्र

भागवतरत्न प्रह्लाद–८ चित्र, मू० १) सजिल्द	१।)
देवर्षि नारद–५ चित्र, मूल्य ।।।) सजिल्द	१)
श्रीतुकाराम-चरित्र–मूल्य	१≡)
सजिल्द ...	१।।)
श्रीज्ञानेश्वर-चरित्र–१ चित्र, मूल्य ...	।।।–)
श्रीएकनाथ-चरित्र, मू०	।।)
श्रीरामकृष्ण परमहंस–३ चित्र मूल्य ...	।≡)
श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली खण्ड १–६ चित्र, पृष्ठ ३६०, मूल्य ।।।=) सजिल्द	१=)
श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली खण्ड २–९ चित्र, पृष्ठ ४५०, मूल्य १=), सजिल्द	१।=)
श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली खण्ड ३–[illegible] चित्र ११, मूल्य १) सजिल्द	१।)
श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली खण्ड ४ पृष्ठ २२४, चित्र १४, मू०	।।=)
सजिल्द ...	।।।=)
श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली खण्ड ५ पृष्ठ २८०, चित्र १०, मूल्य	।।।)
सजिल्द ...	१)
भक्त बालक–५ चित्र, मू०	।–)
भक्त नारी–६ चित्र, मू०	।–)
भक्त पञ्चरत्न–५ चित्र, मू०	।–)
आदर्शभक्त–७ चित्र, मू०	।–)
भक्त-चन्द्रिका–७ चित्र, मू०	।–)
भक्त-सप्तरत्न–७ चित्र, मू०	।–)
भक्त-कुसुम–६ चित्र, मू०	।–)
प्रेमी भक्त–६ चित्र, मू०	।–)
यूरोपकी भक्त स्त्रियाँ–३ चित्र, मूल्य ...	।)
एक संतका अनुभव मू०	–)

पता–गीताप्रेस, गोरखपुर

कुछ आध्यात्मिक पुस्तकें

तत्त्व-चिन्तामणि (भाग १)-पृष्ठ ३४८, २ चित्र, मूल्य ॥=), सजिल्द ... ॥।-)

तत्त्व-चिन्तामणि (भाग १)-छोटे आकारका संस्करण, मूल्य ।-) सजिल्द ।=)

तत्त्व-चिन्तामणि (भाग २) पृ० ६३१, मू० ॥=) स० १=)

नैवेद्य-श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके चुने हुए ३४ आध्यात्मिक लेख-कविताओंका संग्रह, सचित्र, पृष्ठ २५०, मूल्य ॥) सजिल्द ॥≡)

तुलसीदल-श्रीपोद्दारजीके २७ सुन्दर-सुन्दर लेख-कविताओंका अमूल्य सचित्र संग्रह, मूल्य ॥) स० ॥≡)

परमार्थ-पत्रावली-श्रीगोयन्दकाजीके ५१ कल्याणकारी पत्रोंका सुन्दर सचित्र संग्रह, पृष्ठ १४४, मूल्य ।)

दिनचर्या-(सचित्र) लेखक-पं० श्रीभूपेन्द्रनाथ देवशर्मा, अति उत्तम ग्रन्थ, पृष्ठ २३०, मूल्य ... ॥)

ज्ञानयोग-सन्त श्रीभवानीशंकरजी महाराजकी एक छोटी-सी पुस्तक, पृष्ठ २३०, मूल्य ।)

मानव-धर्म-मनुष्यके १० धर्मोंका सरल विवेचन, सबके लिये बड़ा उपयोगी है, पृष्ठ ११२, मूल्य ≡)

साधन-पथ-सचित्र, पृष्ठ ७२, मूल्य =)॥

आनन्दकी लहरें-सचित्र, मूल्य ... -)॥

मनको वश करनेके उपाय-सचित्र, मूल्य ... -)।

ईश्वर-लेखक-श्रीमालवीयजी, मूल्य ... -)।

सप्त-महाव्रत-लेखक-महात्मा गान्धीजी ... -)

पता-गीताप्रेस, गोरखपुर

विशेष जानकारीके लिये बड़ा सूचीपत्र मुफ्त मँगवाइये।

Click Here For
More Books>>